धरतीपुत्र

अनिरुद्ध पाण्डेय

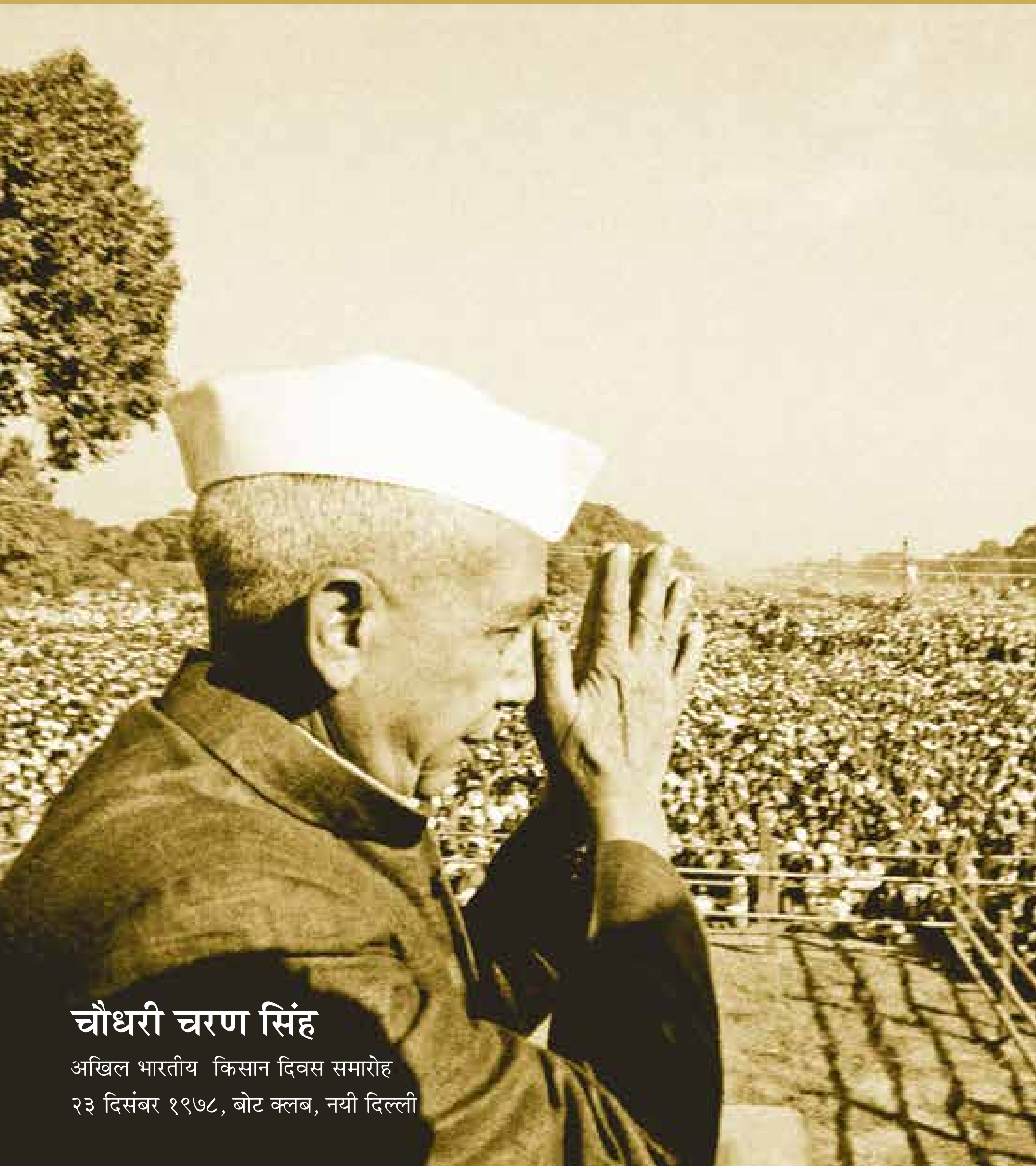

चौधरी चरण सिंह

अखिल भारतीय किसान दिवस समारोह

२३ दिसंबर १९७८, बोट क्लब, नयी दिल्ली

धरतीपुत्र

चौधरी चरण सिंह

अनिरुद्ध पाण्डेय

Charan Singh Archives
www.charansingh.org
info@charansingh.org

प्रकाशनाधिकार © चरण सिंह अभिलेखागार

प्रथम संस्करण १९८६, ऋतु प्रकाशन नौएडा

जुलाई २०२४
चरण सिंह अभिलेखागार द्वारा प्रकाशित
www.charansingh.com
info@charansingh.org

ISBN: 978-81-962625-9-4

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन को केवल पूर्व अनुमति के साथ
पुनः प्रस्तुत, वितरित या प्रसारित किया जा सकता है।
अनुमति के लिए कृपया लिखें info@charansingh.org

अक्षर तथा आवरण संयोजन राम दास लाल
सौरभ प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड, ग्रेटर नोएडा, भारत द्वारा मुद्रित।

मीर सिंह और नेत्र कौर। १९५०
चरण सिंह के माता–पिता

5 बच्चों में सबसे बड़े चरण सिंह का जन्म १९०२ में संयुक्त प्रान्त आगरा एवं अवध के नूरपुर गाँव, जिला बुलन्दशहर के एक गरीब बटाईदार परिवार में हुआ था। आधुनिक दृष्टि से अशिक्षित, मीर सिंह और नेत्र कौर एक मेहनती किसान समुदाय से थे जिन्हे अपने हाथों से खेती करने का गहन पीढ़ीगत ज्ञान था।

"[मैं]... एक साधारण किसान के घर में कच्ची मिट्टी की दीवारों पर टिकी हुई फूस की छत के नीचे पैदा हुआ था... जहां पीने के पानी और सिंचाई के लिए एक कच्चा कुआँ था।" चरण सिंह, १९८२

गरीबी में जन्मा यह शिशु आगे चलकर १९४७ की आजादी के बाद एक स्वदेशी सामाजिक, आर्थिक और विकासात्मक विश्वदृष्टिकोण की सबसे प्रमुख राजनीतिक आवाज बना। चरण सिंह के दृष्टिकोण की जड़ें भारत की संस्कृति से जीवन लेती हैं – स्व–काश्त किसानों के एकीकृत गाँव, भूमिहीन हस्तकरघा कारीगरों के लिए भरपूर व्यवसाय, और जाति, गरीबी, असमानता, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार से मुक्त नैतिक और उन्नत समाज।

निवेदन

यह पुस्तक १९८४ के अन्त तक प्रकाशित हो जाने वाली थी। कतिपय अपरिहार्य कारणों से इसके प्रकाशन में विलम्ब हो गया। इस बीच भारतीय राजनीति ने विस्फोटक मोड़ लिया। परिवर्तनों की ज़रूरत थी, जो अब अगले संस्करण में ही सम्भव हो सकेगा।

१५ फरवरी १९८६ – **लेखक**

अध्याय

निवेदन	v
आमुख	ix
अध्याय १: व्यक्तित्व और विचार	१
अध्याय २: मड़ैयों में प्रकाश	१७
अध्याय ३: होनहार बिरवान के	२४
अध्याय ४: कालेज की शिक्षा और विवाह	३२
अध्याय ५: समरांगण: राष्ट्रीय कांग्रेस में	४०
अध्याय ६: समरांगण: मेरठ में	५९
अध्याय ७: स्वतंत्रता के बाद उत्तर प्रदेश मंत्रिमंडल में	७६
अध्याय ८: उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री	९७
अध्याय ९: भादों की अमावस्या	११८
अध्याय १०: जनता पार्टी का जन्म	१२७
अध्याय ११: जनता पार्टी और सरकार का विघटन	१३४
अध्याय १२: आने वाला कल	१५९

परिशिष्ट

विविध	१६३
राजनीतिक भ्रष्टाचार	१६५
भारत के गृहमंत्री चौधरी चरण सिंह से एक साक्षात्कार	१६७
पंडित नेहरू और श्रीमती इंदिरा गाँधी से पत्रव्यवहार	१८८
लोकदल की राष्ट्रीय परिषद् में चौधरी चरण सिंह का अध्यक्षीय भाषण	२०६

आमुख

क्या अतुल धन, ऊंचा पद और जीवन काल में प्राप्त प्रसिद्धि व्यक्ति को उस कोटि का गौरव प्रदान करते हैं कि सर्वसाधारण के सामने आदर्श प्रस्तुत करने के लिए उसका जीवन चरित्र लिखा जाए? अथवा क्या ऐसे व्यक्ति में देश–काल की सीमाओं को अतिक्रमण करने वाली कोई ऐसी विशिष्टता होती है, जो उसके जीवन के सदियों बाद तक आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा की स्रोत बन जाती है?

कुछ लोग, विशेषकर चौधरी चरण सिंह के राजनैतिक समवयस्क, उनको उत्तर प्रदेश, हरियाणा तथा राजस्थान के जाट बहुल क्षेत्रों का नेता बता कर अपनी ईर्ष्याग्नि बुझाते हैं। इन लोगों के मतानुसार चौधरी चरण सिंह अपने राजनैतिक जीवन के प्रारम्भ से ही बहुत महत्त्वाकांक्षी रहे हैं और स्वसाधन के लिए उन्होंने सर्वमान्य सिद्धान्तों तथा आदर्शों को 'बलाये ताक' रखने में कोई हिचक कभी भी प्रकट नहीं की है। चौधरी चरण सिंह को निकट से जानने वालों का मत इसके ठीक विपरीत है। उनका कहना है कि चौधरी चरण सिंह हर महान मानव की तरह महत्त्वाकांक्षी होते हुए भी ऊंचे से ऊंचे पद को सेवा का माध्यम मानते हैं तथा भारत की बहुसंख्यक अतिशोषित मानवता के कल्याण तथा अभ्युत्थान की सच्ची ललक के कारण ही उन्होंने पदों की आकांक्षा की है। वे जाट बहुल क्षेत्रों के नहीं, अपितु भारत के सभी पिछड़े और शोषित वर्गों के पेशवा हैं तथा इन्हें मानवोचित जीवनस्तर दिलाने के महान पुण्यकर्म में रत रहे हैं। उनका जन्म एक अति साधारण किसान परिवार में हुआ। अपने परिवार के जीतोड़ परिश्रम में उन्होंने हाथ बंटाया था। किसानों के दैन्य को वे जानते थे। वे गांव की गलियों और खेतों में पले बढ़े। उन्हें भारत की इस सर्वशोषित अस्सी प्रतिशस मानवता के दुःख–दर्द का व्यक्तिगत अनुभव था। उनकी रगों में महान स्वतंत्रता सेनानियों का खून था। इसीलिए देश को अतिशीघ्र श्रीसम्पन्न और शक्तिशाली बनाने की उनकी ललक अत्यन्त उत्कट थी। उन्होंने जीवन का हर क्षण उसी परम पुनीत उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एकान्त निष्ठा से समर्पित किया। किसान वर्ग भारतीय प्रजातंत्र के विशाल बहुमत रही है। इनके अभ्युत्थान के बिना भारत के पुन–रोत्थान की कल्पना थोथी थी। चौधरी चरण सिंह इस तथ्य से दुःखी थे कि आजादी के सैंतीस वर्षों में भी इन सर्वहारा लोगों की दशा

में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया था, जिससे वे दुर्दान्त गरीबी का जघन्य जीवन व्यतीत करने को विवश रहे।

इसका मूल कारण वे मौजूदा राष्ट्रनायकों का गांवों से सर्वथा अपरिचित होना मानते थे। वे राष्ट्रनायक न कभी गांवों में रहे थे, न ही उनका गांवों से कोई लगाव था। साथ ही वे कर्णधार पश्चिम की चमक–दमक का बिना सोचे समझे अंधानुकरण करते हैं। पश्चिम की पूंजीपरक बड़े–बड़े उद्योगों की नीति भारत जैसे श्रमपरक कृषि प्रधान देश के लिए अनुपयुक्त है। जड़ से कट कर विकास सम्भव था ही नहीं। हमारे अभ्युत्थान की धुरी ही कृषि का सर्वांगीण विकास और घरेलू उद्योग–धंधों की वैज्ञानिक उन्नति। यही राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की निश्चित राय थी। यही चौधरी चरण सिंह का मत और लक्ष्य था। उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ से ही अनवरत संघर्षरत रहे। राष्ट्रीय कांग्रेस को उक्त लक्ष्य से विमुख जाते देखकर उन्होंने उससे अलग होकर भारतीय क्रान्ति दल की स्थापना की। कांग्रेस जैसे पुराने और व्यापक संगठन के विरोध में क्रान्ति दल की सफलता से स्थापना स्वयं में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही। इसी से कांग्रेस का विकल्प उभरा। यह चौधरी चरण सिंह की जन्मजात प्रतिभा, संकल्प की दृढ़ता और निष्ठा का पर्याय था। ऐसा बहुजन हिताय व्यक्ति उच्च सिद्धान्तों और आदर्शों से समझौता कर ही नहीं सकता था। न ही चौधरी साहब ने कभी ऐसा किया। इसीलिए समूचे भारत के, कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से उत्तर–पूर्वी सीमान्त प्रदेशों के किसान उन्हें आज भी अपना मसीहा मानते हैं। जनमानस के उक्त अगाध विश्वास के बल पर चौधरी चरण सिंह अपने राजनैतिक जीवन के किसी भी मोड़ पर किंचित भी नहीं झुके, न ही कभी स्वसाधन के लिए आदर्शों से समझौता किया।

चौधरी चरण सिंह के जीवन की रेखा एकदम सीधी रही है। उनके बौद्धिक चिन्तन के आभरण में वह कभी टेढ़े–मेढ़े भी दिखायी पड़े तो मूलतः वैसी नहीं। वह अपार अपार अभावग्रस्त जनसमूह की चेतना की कोंधती बिजली है, जो दिल्ली में उनके अठहत्तरवें जन्म दिन के अखिल भारतीय समागम को "न भूतो न भविष्यति" बना गयी। उसी समागम से उनके विरोधियों से अधिक सहयोगियों की स्पर्धा अशुभ रूप में भड़की। एक प्रकार से उसी की चिंगारी से जनता सरकार और पार्टी अन्ततः बिखरी। जो हो, महायुद्ध के एक जय–पराजय का असीमित महत्त्व कदापि नहीं होता। चौधरी चरण सिंह को स्वदेश की अभी बहुत सेवा करनी थी। वह भारत के प्राचीन तपस्वियों की परम्परा के हैं– 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छतं समाः।' उनके जीवन का हर क्षण सर्वहारा वर्गों

के अभ्युत्थान के चिन्तन और काम में बिता है। उनकी यह गांधीवादी बौद्धिकता—ज्ञान और संकल्परत तपस्वियों की कर्मठता—कर्म—भारत के बाहर दूसरे देशों के सर्व शोषित किसानों, मजदूरों और मानवता के लिए जाज्वल्यमान प्रकाश स्तम्भ बना। उसी के आलोक से देश का विराट् बहुमत शक्ति और श्री सम्पन्न होकर देश का गौरवध्वज प्राचीन काल की तरह विश्व भर में फहरायेगा। चौधरी चरण सिंह का जीवन चरित इसीलिए सर्वदेशीय तथा व्यापक महत्त्व का है।

मैंने सन् १९५१ के अन्त में मेरठ के सर्किट हाउस में दूर से उन्हें पहले पहल देखा था। वे उत्तर प्रदेश के सभासचिव के रूप में दौरे पर आये थे। मैं प्रशासनिक सेवा के प्रशिक्षण काल में सदर तहसील में कुछ महीने बिताकर सरधना तहसील का हाकिम परगना नियुक्त हुआ था। सरधना के एक प्रगतिशील खेतिहर काजी नजमुद्दीन जी से मेरा अच्छा परिचय हो गया था। वे पुराने कांग्रेसी थे। वे चौधरी साहब की भूरिभूरि प्रशंसा किया करते थे। वैसे उनकी सर्वत्र प्रशंसा थी, लेकिन उनकी व्यक्तिगत नैतिकता की काजी जी द्वारा उन्मुक्त प्रशंसा ने ही मुझे उनकी ओर आकर्षित किया। विधान सभा में जमींदारी उन्मूलन विधेयक पर दिए गये उनके भाषण भी गम्भीर अध्ययन के परिचायक थे। मेरठ का वह साधारण राजनीतिज्ञ किसानों के शोषण और अंग्रेजों की भूमि व्यवस्था के अन्यायपूर्ण पहलुओं का इतना गम्भीर समीक्षक था, जितना कोई अति मेधावी विशेषज्ञ ही हो सकता था। इसी अचरज भरे उद्‌गार से मैं उन्हें देखने सर्किट हाउस चला गया था। वहां कांग्रेस जनों की भीड़ में लम्बे, छरहरे, गोरे वर्ण के चौधरी चरण सिंह खादी के धोती—कुर्ता और गांधी टोपी में सहज ही एक ग्रामीण कार्यकर्त्ता से दिखे। उनमें कहीं कोई बनावट नहीं थी, न पद का दर्प। चेहरे पर सोच की चमक जरूर प्रकट थी, जिसकी गहराई से उनकी पलकें अर्द्ध—निमीलित थीं। करीब से देखने पर आंखों में तराश की एक भंगिमा तब भी दिखाई पड़ती थी। उसी से वे व्यक्ति को देखने भर से सही आंक लेते हैं। उनका योगी सा तपा शरीर और वर्ण तथा चिन्तन से दीप्तिमान चेहरा उनके व्यक्तित्व के प्रमुख आकर्षण थे। उनकी सूक्ष्म विनोदप्रियता और हल्की हँसी उनके अन्तर की पवित्र स्निग्धता की द्योतक थी। मैंने अपने किशोर वय में डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद के पास बैठकर उनकी अविस्मरणीय सादगी को देखा था। मुझे ठीक—ठीक याद है कि श्याम वर्ण के डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद धोती बण्डी में शुद्ध देहाती किसान लगते थे। उनका मेरे मन पर आश्चर्यकारी प्रभाव पड़ा था। ठीक वैसा ही प्रभाव चौधरी चरण सिंह का पड़ा। मन में एक अज्ञात भाव भी उठा था, जिसकी भाषा छः सात वर्षों बाद जब मैं मेरठ में अतिरिक्त जिलाधिकारी

के पद पर दुबारा गया, तब प्रकट हुई कि किसान–सा दिखने वाला वह धरतीपुत्र गांवों में बसने वाली भारत की विशाल सर्वशोषित मानवता के असह्य दुःख की जीवन्त भाषा बनेगा – क्रांति का अग्रदूत, महात्मा गांधी के सूत्रों का विश्लेषण कर उसको अमली जामा पहनाने वाला। भारत को उसकी तब भी बड़ी जरूरत थी और हमारी आर्थिक कुनीतियों के कारण आज वह पहले से अधिक कितनी बढ़ गयी है।

प्रशासन की ऊंची सीढ़ियों पर मुझे जिम्मेदार व्यक्तियों से सुनने को मिला कि चौधरी चरण सिंह कान के कच्चे हैं। यह निर्मूल बात नहीं थी। ईमानदार आदमी वैसा हो जाता है। आजादी का एक दशक बीतते–बीतते शासकीय कर्मचारियों के विरुद्ध शिकायतों की बाढ़ आने लगी थी। कर्मचारी दासताकाल की परिपाटियों में पले थे। स्वतंत्रता से जनता की आकांक्षाएं स्वाभाविक ही बहुत बढ़ी चढ़ी थीं। राजनीति भी स्वतंत्रता संघर्ष के दिनों की त्याग तपस्या छोड़ कर घोर स्वार्थपरक और चांदी बटोरने की होती जा रही थी। अवसरवादिता की प्रेरणा से शासकीय कर्मचारियों ने भी इस घुड़दौड़ में दांव लगाये। नेताओं को इसमें अपनी ढाल मिल गयी। अपनी सुरक्षा के लिए वे हर वर्ग के कर्मचारियों के विरुद्ध सही से सैकड़ों गुना अधिक झूठी शिकायतें कराने लगे। साधारण राजनीतिज्ञ स्थानीय कर्मचारियों पर अपना रोब गालिब करने के लिए इसे 'फुलझड़ी छोड़ना' बताया करते थे। चौधरी चरण सिंह भारत की पुरातन नैतिकता के कट्टर पोषक थे। आजादी के पहले से वे सार्वजनिक जीवन के भ्रष्टाचार से जूझते आ रहे थे। उनका निश्चित मत है कि भारत जैसे गरीब देश में जहां सरकारी कर्मचारियों का वेतनमान साधारण जनसमाज की आय से अपेक्षाकृत बेहतर है, कर्मचारी वर्ग में भ्रष्टाचार अक्षम्य है। पूंजीवादी परम्परा में भ्रष्टाचार को कोई पूरा रोक नहीं सकता, उसे अनुशासित जरूर किया जा सकता है। इसलिए सरकारी तथा सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं को कठोर नैतिकता का आदर्श निभाने के वे पक्ष में थे। सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध प्राप्त शिकायतों पर वे बहुत ध्यान देते थे। दासता काल के कर्मचारियों में चारित्रिक अनैतिकता भी कम नहीं थी। चौधरी साहब हर अनैतिकता के उतने ही बड़े दुश्मन थे, जितने पक्षपात, घूस, बेईमानी, कुनबापरस्ती और अनुचित मुनाफाखोरी आदि के। इसके विरुद्ध युद्धस्तरीय अभियान चलाकर उन्होंने अल्पकाल में ही अनुकरणीय दिशा–निर्देश का काम किया। लेकिन मैं अकाट्य रूप से कह सकता हूँ कि उनका ईमानदार विवेक झूठ सच की सही जांच करके ही किसी के पक्ष–विपक्ष में निर्णय करता था। इसीलिए बड़ी कड़ाई के बाद भी सजा कम लोगों को मिली। उनकी जांच से अपराधी बच नहीं पाते थे।

भ्रष्टाचारी उनके नाम से कांपते थे। यह स्वच्छ प्रशासन में उनकी दृढ़ता और कट्टर आस्था का फल है, आपातकाल में जैसा नाटक व्यक्तिगत स्पर्धा के कारण किया गया, वैसा उन्होंने कभी नहीं होने दिया। आपातकाल के सताये हुए प्रायः शत–प्रतिशत शासकीय कर्मचारी अदालतों में विजयी रहे। सरकार की प्रतिष्ठा और धन का आपातकाल की धींगामस्ती से बड़ा नुकसान हुआ। यह चौधरी चरण सिंह का अनुकरण करके ही किया गया था। लेकिन चौधरी चरण सिंह सा पारदर्शी विवेक कहां था? न्याय की तराजू में कभी ढील नहीं आने पायी। इसीलिए समूचे देश पर उनकी भ्रष्टाचार निवारण की अमिट छाप पड़ी। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण भी था। स्वयं बेदाग रह कर ही दूसरों की अनैतिकता रोकी जा सकती है। इस कसौटी पर भारत भर में कोई वर्तमान राजनीतिक उन जैसा खरा नहीं उतर पाया है।

चौधरी चरण सिंह मूलतः एक चिन्तनशील प्राणी तथा विचारक थे। उनका विद्यार्थी जीवन वैदिक संस्कृति और धर्म के अध्ययन पर पनपा। वे प्राचीन भारतीय संस्कृति में अगाध विश्वास रखते थे। उनका बाद का जीवन आजादी के संघर्ष की और आजादी के बाद से सक्रिय राजनीति में बीता। उनका जीवन अगर स्वतंत्र भारत में पला बढ़ा होता तो शायद वे एक महान सामाजिक दार्शनिक हुए होते। राजनीति में भी गांधीवादी होने के नाते उन्होंने व्यक्ति और समाज की आर्थिक मुक्ति पर ध्यान दिया। उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए शासकीय पदों का माध्यम बहुत जरूरी था। अर्वाचीन शासन का रूप भी बदला हुआ था। शासनतंत्र राजकर्मचारियों की कर्मठता और दक्षता पर आधारित है। आज राष्ट्रपति या प्रधान अथवा मुख्यमन्त्री को युद्ध क्षेत्र में जाकर सैन्य संचालन नहीं करना पड़ता है। न ही किसी उपद्रव में स्वयं भाग लेकर उसका निराकरण करना पड़ता है। उसे जनता की अभिलाषाओं–आकांक्षाओं के अनुरूप रण का या किसी भी सार्वजनिक काम का दिशा–निर्देश करना पड़ता है। लेकिन चौधरी चरण सिंह ने प्राचीन और अर्वाचीन के समन्वय का उदाहरण प्रस्तुत किया। उत्तर प्रदेश में गृह मन्त्री के रूप में उनका प्रायः पहला काम भिण्ड से मिले इटावा और आगरा जिलों में यमुना के बीहड़ खादर में जाकर उस भू–भाग को देखना था, जहां से खतरनाक डकैतों का कार्यक्रम उभरता था। किसी दूसरे राजनेता ने इतने जोखिम का काम करने में ऐसी कर्मठता नहीं दिखायी। कुछ लोग इसीलिए उनके संदर्भ में महामन्त्री चाणक्य का नाम लेते हैं, इस संदर्भ से उनकी विलक्षण कर्मठता, नीति–निपुणता और दूरदर्शिता की प्रवृत्ति अमान्य नहीं की जा सकती। लेकिन इस उल्लेख का ध्येय अगर उनकी राजनीति को कुटिल बताना

है, तो वह नितान्त मिथ्या है। उनमें कुछ भी ओछा नहीं। उनके पैंतरे और दांव सच्चे तथा खरे रहे हैं। आंख में धूल झोंककर उन्होंने किसी को कभी नहीं पछाड़ा। बड़ों से बड़ों ने उन्हें धोखा जरूर दिया। इसीलिए एकांत में कभी–कभी उनका चिन्तक मन दुरूखी स्वर में मुखर हो उठता है– "मैं मौजूदा राजनीति के काबिल नहीं था। स्वतंत्रता की रणभेरी ने मुझे पुकार लिया।" उनका मन स्वातंर्त्योत्तर राजनीति की कुटिलता का ध्यान कर अक्सर भर आता था। ऐसे समय वे उत्साह से उत्साहपूर्ण बात करते हुए भी अचानक चुप हो जाते थे।

क्या हर महान पुरुष के सपनों का अन्त दुःखान्त होता है? मैंने अपने जीवन में महात्मा गांधी, नेता जी सुभाष चन्द्र बोस, पंडित जवाहर लाल नेहरू तथा लोकनायक जयप्रकाश नारायण जैसे महामानवों के उत्कर्ष को देखा है। कवि गुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर और संत विनोबा भावे के औदार्य को भी समझा–बुझा है। उनमें किसका सपना सच हो पाया? क्या हर महामानव के लक्ष्य अप्राप्य होते हैं और क्या लक्ष्य–भेद के उनके प्रयत्न क्षोभपूर्ण विषमताओं से भरे रहते हैं, जिससे उनके हृदय में असंतोष की ज्वाला धधकती रहती है? क्या उनकी सांसें उसी आंच से जल–बुझती हैं। ऐसे मनुष्यों के जीवन की सही समीक्षा क्या सम्भव है? फिर भी अपनी बौद्धिक आस्थाओं और उनको पाने के अनवरत अध्यवसाय के कारण वे महान पथनिर्माता बने। वे आगामी कल के लिए अपने विचार और चिन्तन समय की रेती पर छोड़ गये। चौधरी चरण सिंह के भी सपने कहां पूरे हुए? वे सर्वशोषित मानवता तथा भारत की प्राचीन नैतिकता के लिए जीवन भर संघर्षरत रहे। संन्यास के प्रथम चरण में भी वे कर्मरत रहे। उन्होंने महात्मा गांधी के दरिद्रनारायण की समिधा को जगाया। यह प्राचीन भारत की परम्परा की पुकार है, जिससे अलग इस सर्वहारा देश के पुनरुत्थान का दूसरा रास्ता नहीं। इस सर्वशोषित मानवता – भारत के किसानों, मजदूरों, दूसरे उत्पादक श्रमिकों की युग–युग की पीड़ा चौधरी चरण सिंह के रूप में ज्वाला बन कर फूटी। वह परम शुभ ज्वाला पीड़ित मानवता के गौरवपूर्ण उत्थान के लिए देशकाल की परिधि पार कर मानव मात्र के तमिस्त्र को मिटाने का सदा संदेश देती रहेगी।

किसी भी व्यक्ति, विशेषकर महान व्यक्ति के जीवन के तीन रूप होते हैं। पहला वह जिसमें वह सबके सामने आता है और जैसा सब उसे जानते हैं। दूसरा वह जिसे उसके आत्मीय और निकट सम्बन्धी जानते हैं। तीसरा रूप उस व्यक्ति के निजी विचारों, भावनाओं और सपनों का होता है। साधारणतया निजी पत्रों, डायरी आदि से इन भावनाओं की मनोवैज्ञानिक जानकारी हो पाती है। उसी से उसकी बौद्धिकता की परत

दर परत देखी जा सकती है। चौधरी साहब ने कोई डायरी रखी नहीं। उनके निजी पत्रों का कोई संकलन उपलब्ध नहीं। उनके सार्वजनिक कार्यकलाप की फाइलें जरूर उनके पास सफाई से सुरक्षित राखी थी। उन फाइलों को सांगोपांग पढ़ना बरसों का काम है। मैंने यथासम्भव सम्बन्धित फाइलों का उपयोग किया है। मेरा सबसे बड़ा सौभाग्य चौधरी साहब से इस जीवनी के विभिन्न पहलुओं पर बातचीत कर तथ्यातथ्य को जांच लेना रहा है। यह सौभाग्य उनके विस्तृत जीवनीकार को, जो देर सबेर अवश्य आएगा, मिले या नहीं। इसके लिए मैं उनका तथा माता जी श्रीमती गायत्री देवी का अत्यन्त अनुगृहीत हूं।

एक महान धरती पुत्र का यह जीवन चरित्र भारतवर्ष के जन–जन को आग्रह–पूर्वक समर्पित है।

२ अक्तूबर १९८४ **–अनिरुद्ध पाण्डेय**

अध्याय १

व्यक्तित्व और विचार

चौधरी चरण सिंह का नाम समूचे हिन्दुस्तान के ग्रामवासियों में एक अभिनव जागरूकता की सनसनी अनायास ही पैदा कर देता है। एक ग्रामीण कवि ने इसी लिए उन्हें क्रान्ति की ज्वाला बताया है। सदियों के सर्वशोषित किसान–मजदूरों को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की दिव्यवाणी से एक नया मनोबल मिला था, जब स्वतंत्रता से कुछ काल पहले उन्होंने यह कहा कि इस देश का राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री मजदूर और किसान हो। महात्मा गांधी का उद्देश्य बिल्कुल साफ था कि भारत के ६ लाख गांवों में बसने वाले किसान और मजदूर इस देश की सर्वाधिक जनशक्ति हैं और उन्हीं के सुखी और समृद्ध होने पर भारत शक्तिशाली देश बन सकता है। उनका अभीष्ट था कि उन्हीं के बीच में उपजा राष्ट्रनायक ही उनके दुःखों को सही–सही समझ सकेगा और अपने अनुभवजन्य भावनाओं से उनके दुःखों को शीघ्रातिशीघ्र दूर करने का प्रयत्न करेगा। गांधी जी असाधारण प्रतिभा सम्पन्न महामानव थे। एक सामन्ती परिवार में वे पैदा हुए थे, विलायत जा कर उन्होंने बैरिस्टेरी की परीक्षा पास की थी। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने बड़े–बड़े भारतीय व्यावसायिक संस्थानों के मुकदमों से अपनी वकालत शुरू की थी। किन्तु इंग्लैण्ड, दक्षिण अफ्रीका और हिन्दुस्तान में अपने देशवासियों, विशेषकर ग्रामवासियों की दशा देखकर वे निश्चय ही करुणा से अभिभूत हो गये होंगे। 'बहुजन हिताय' महामानव का मेरुदंड है। गांधी जी देश की बहुमत आबादी दरिद्रनारायण के प्रतीक बन गये। किसानों की तरह वे झोंपड़ियों में आश्रम बना कर रहने लगे। ६ पैसे (तब का) वह एक वक्त के सादे भोजन पर व्यय करते थे। अपने हाथ से सूत कात कर अपने पहनने का कपड़ा बनाते थे और अपना छोटा–बड़ा सारा काम स्वयं ही करते थे। उनके आश्रमवासी सहयोगी भी इसी अनुशासन से रहते थे। रेल का सफर भी बापू तीसरे दर्जे में, जिसमें मुसाफिर भेड़–बकरी की तरह कसे रहते थे, करते थे। बापू विलासिता के हर सुख–सुविधा और प्रदर्शन से दूर रहते थे। गांव के गरीब की सादगी, सच्चाई और स्वार्थ रहित उच्च मान्यताओं तथा मूल्यों नैतिकता का उन्होंने आदर्श चरितार्थ किया। उनके जीवनयापन के तरीके से स्तब्ध होकर भारत ने ही नहीं,

सारे विश्व ने उन्हें महात्मा पुकारा। यह ऋषियों का जीवन था, भारत में अनादि काल से चली आ रही ग्राम–परक संस्कृति की परम्परा थी। जड़ से कट कर कोई पनप नहीं सकता। राष्ट्रपिता ने जड़ की पवित्रता से स्वतंत्रता संघर्ष के आन्दोलनों को सजाया और उसी परम्परा में कृषि तथा कुटीर और घरेलू उद्योगों द्वारा आर्थिक विकास पर अत्यधिक बल दिया। यह नहीं कि वे इग्लैण्ड या यूरोप की औद्योगिक प्रगति की उपलब्धियों से अपरिचित थे। लेकिन उसमें सन्निहित विस्फोटक तत्त्वों को वह प्रथम विश्व युद्ध में देख चुके थे और उसके अशुभ पक्ष – हिंसा और विनाश के वह कदापि समर्थक नहीं हो सकते थे। उन्होंने अहिंसा के विश्व कल्याणकारी दर्शन को अपनाया। इस दर्शन में साध्य की तरह साधन भी परम पवित्र होना जरूरी था।

स्वतंत्रता संघर्ष रत बापू के प्रथम पंक्ति के सहयोगियों ने उनके आदर्शों को अधिकाधिक अपनाने की हर कोशिश की। लेकिन स्वतंत्रता के बाद जल्दी ही बापू दिवंगत हो जाने पर इक्के–दुक्के ही उन आदर्शों पर अडिग रह सके। उनमें हमारे पहले राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद और बारदोली के महासेनानी सरदार वल्लभ भाई पटेल का नाम सर्वोपरि है। हमारे पहले प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ठोस गांधीवादी कभी नहीं थे। विश्व की तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के वे सजग दर्शक थे और इस विषय में वे महात्मा गांधी के पूरक माने जाते थे। शायद इसीलिये बापू ने उन्हें प्रधानमंत्री मनोनीत किया। पंडित नेहरू अपनी वंशानुगति और इंग्लैण्ड की शिक्षा–दीक्षा के कारण पश्चिम के औद्योगिक विकासों से बेहतर प्रभावित थे। रूस का औद्योगिक विकास आधुनिकतम था और विज्ञान तथा टेकनोलाजी के प्रयोग में यूरोपीय देशों से कहीं आगे था। पण्डित जी पर उसका असर जादू की तरह पड़ा। उन्होंने भारत के पंचायती प्रजातंत्र में रूसी समाजवाद का सपना संजोया। पंचायती और साम्यवादी प्रणालियां परस्पर विरोधी हैं। एक का आधार नैतिकता है, दूसरे का शुद्ध भौतिकता। एक नीचे से क्रमशः ऊपर को बढ़ता है, दूसरा ऊपर से छन कर नीचे आता है। पंडित नेहरू गांव में पैदा नहीं हुए थे, गांव में पले–बढ़े नहीं थे। उन्होंने भारत की ग्राम्यपरक संरचना को त्याग कर रूस की पांच साला योजनाओं का अनुकरण किया और भारी औद्योगीकरण द्वारा हिन्दुस्तान को जल्दी से जल्दी समुन्नत करना चाहा। इससे सिंचाई, विद्युत उत्पादन, सामरिक महत्व के यंत्रों तथा मूलगत मशीनों को बनाने में देश ने अपेक्षाकृत उन्नति भी की। यह जरूरी भी माना जाएगा। लेकिन हिन्दुस्तान की दुर्दान्त गरीबी और उससे उत्पन्न विकट समस्याओं का इससे निदान नहीं मिलता। हमारे देश की समस्याएं

थीं– भीषण गरीबी, बेरोजगारी या अर्द्ध–बेरोजगारी तथा जन–जन में घोर आर्थिक विषमता। साथ ही सदियों की गुलामी से अथवा भाग्यवाद में काहिलों की तरह विश्वास करने के कारण कड़ी मेहनत न करने का हमारा राष्ट्रीय चरित्र बन गया था। इस परिवेश में हमें मनुष्य की न्यूनतम आवश्यकता – खाना, जुटाने के लिए काम चाहिये था। हमारी अपार जनसंख्या में वह श्रम–परक उद्योगों से ही प्राप्त किया जा सकता था। पूंजीपरक आधुनिकतम बड़े उद्योगों को बटन दबा कर चलाया जाता है। बटन दबाने की तकनीक से चलने वाले उद्योगों की संख्या में वृद्धि से लाखों करोड़ों हाथों को रोजगार कहां मिलता? अतः गरीबी मिटाने के लिए पूंजीपरक आधुनिकतम भारी उद्योग निरर्थक थे। हमारे पास पूंजी भी सीमित थी। भौतिक सुख–सुविधा और वैभव प्रदर्शन के उत्पाद एक वर्ग विशेष को ही लाभ पहुंचा सकते थे। हमारी वास्तविक समस्याएं उनसे कदापि हल नहीं होतीं। उल्टे हमारी संस्कृति और सभ्यता की नींव – नैतिकता – बलिदान हो गयी। आज जो देश में सर्वत्र राष्ट्रीय चरित्र का ह्रास दिखायी पड़ रहा है, उसके लिये वही नीति मूलतया जिम्मेदार है। चौधरी चरण सिंह का यही प्रतिपाद्य था।

हमारी उन्नति के सीधे रास्ते थे कृषि की २५ फीसदी/एकड़ उपज बढ़ाना और उस एकड़ पर श्रम करने वालों की संख्या को न्यूनतम रखना। ऐसा घरेलू और कुटीर उद्योगों के सम्यक् विकास से ही सम्भव हो पाता। अमेरिका दुनिया का सबसे बड़ा धनी देश इसलिए है कि वहां की कृषि में सौ में से पांच व्यक्ति लगे हैं। शेष दूसरे धंधों और रोजगार में हैं। इसलिए चौधरी चरण सिंह का कहना है कि अगर परिवार में चार भाई हैं, तो एक ही कृषि में लगे। शेष तीन भाई दूसरे धंधों में उद्यम करें और अपनी जीविका कमायें तथा परिवार की आमदनी बढ़ायें। यही नहीं, अगर पिता स्वस्थ और मेहनत करने लायक हो तो चारों पुत्र कृषि का काम उनके लिए छोड़ दें। यह तभी सम्भव है, जब चारों या तीन पुत्रों को घरेलू उद्योग–धंधों से जीविका मिले। महात्मा गांधी के सूत्र घरेलू उद्योग–धंधों का यही भाष्य है। इस अनुभवगम्य राय के विपरीत पंडित जवाहरलाल नेहरू स्नातक युवकों को यह सीख दिया करते थे कि पढ़–लिख कर खेती में लगो गे तो इससे न कृषि की उपज बढ़ती, न ही कृष्योत्तर कुटीर उद्योगों का विकास होता। उद्योगों का विकास कृषि से बची श्रमशक्ति पर निर्भर है। पंडित जवाहरलाल नेहरू अपनी साम्यवाद लाने की उड़ान में कृषि के इस मूल सिद्धान्त को भूल गये। चौधरी चरण सिंह ने इस सिद्धान्त को दूसरी तरह भी स्पष्ट किया है। उनके मतानुसार हमारी प्रगति टेलीविजन सेटों, टेलीफोन, इस्पात के आधुनिक उपकरणों, कारों

आदि से नहीं प्रत्युत देश में निम्नतम व्यक्ति के लिए खाना, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि से आंकी जायेगी। भारत की तीन चौथाई आबादी की यही समस्या है। अतः कृषि और उसके पूरक घरेलू उद्योग–धंधों द्वारा देश की आर्थिक समृद्धि पर राष्ट्रपिता की तरह चौधरी चरण सिंह का सर्वाधिक जोर रहा।

यह निर्विवाद है कि क्रय शक्ति बढ़ने पर ही गांव के किसानों और मजदूरों का जीवन स्तर ऊंचा उठाया जा सकेगा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पहले भारत के किसानों की प्रधानतया कुटीर उद्योगों के कारण ऐसी ही उन्नत दशा थी। स्वरोजगार से वह सुखी थे। विदेशी अंग्रेजी शासन ने उनका अभूतपूर्व शोषण किया। अंग्रेजों ने स्वरोजगार को बेरहमी से समाप्त किया। इस तरह किसान बेहद गरीब हो गये। आजादी के सैंतीस वर्ष बाद भी हमारी औद्योगिक कुनीति के कारण वह गरीबी मिटी नहीं, बल्कि और वीभत्स हो गयी। मुद्रास्फीति और नगरों को सजा कर उसे ढांपने की कोशिश की गयी। हंस की खाल ओढ़ कर गीदड़ कदापि हंस नहीं बन सकता।

रूसी योजनाओं से उधार ली हुई यह धारणा कि कृषि और उद्योग एक दूसरे के पूरक हैं, गलत साबित हुई है। कृषि प्रधान देश में जहां सर्वसाधारण का बहुमत गरीबी रेखा से नीचे या उसके आसपास हो, औद्योगिक उत्पादन उतना उपादेय नहीं, जितना अधिक लोगों द्वारा उत्पादन। नेहरू की भारी उद्योगों की नीति का चौधरी चरण सिंह ने यही विकल्प प्रस्तुत किया था। नेहरू ने इस विकल्प की उपादेयता को अन्ततः महसूस भी किया। नवम्बर सन् १९६३ में संसद में अपने भाषण में उन्होंने स्वीकार किया कि "मैं अधिकाधिक महात्मा गांधी के बारे में सोचने लगा हूं। ... मैं पूरी तरह से आधुनिक मशीन का प्रशंसक हूं और बेहतरीन मशीन व बेहतरीन तकनीक चाहता हूं लेकिन हमारे देश में हालत यह है कि हम आधुनिक युग में चाहे जितना बढ़ जाएं, उसका बहुत दिनों तक हमारे लोगों की बहुत बड़ी संख्या पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। उन्हें उत्पादन में भागीदार बनाने के लिए कोई और उपाय करना होगा, चाहे उत्पादन यंत्र आधुनिक तकनीक के मुकाबले में बहुत कुशल न हो।"

यह स्वीकारोक्ति उनके जीवन के अन्तिम दिनों में आयी। उसके छः माह बाद ही वह दिवंगत हो गये।

नेहरू के बाद सन् १९६५ के पाकिस्तान आक्रमण के समय 'जय जवान, जय किसान' का परम शुभ नारा उठा। वह अत्यन्त अल्पकालीन साबित हुआ। उसके बाद फिर वही नेहरू की उधार – चिन्तन वाली औद्योगिक नीति चली, जिससे हमारी गरीबी बढ़ती ही गयी। विश्व बैंक

के आंकड़ों के अनुसार आज भारत बांग्लादेश और इथोपिया को छोड़ कर दुनिया का सबसे गरीब देश है। भारत सरकार के आंकड़ों के अनुसार भी लगभग पचास प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने को मजबूर थी। यह दुर्दशा आजादी के सैंतीस वर्ष बाद थी जब कि इसी अवधि में चीन ही नहीं, द्वितीय विश्व युद्ध से तबाह असाम्यवादी देश जापान, जर्मनी, फ्रांस, कोरिया आदि दुबारा उन्नति के शिखर को छू रहे हैं।

चौधरी चरण सिंह ने अपनी विकल्प की आर्थिक नीति को गांधीवादी परिवेश में बहुत सच्चाई से प्रस्तुत किया। उसका सही अनुकरण करके ही देश गरीबी से त्राण पा सकता और आबादी के अस्सी प्रतिशत लोगों को खुशहाल कर शक्तिशाली बन सकता था। इससे देश में आर्थिक विषमता से उत्पन्न असंतोष और वर्ग संघर्ष की भावना समाप्त नहीं तो बहुत कम हो जाती। शक्तिशाली वर्ग, धन्ना सेठों और प्रभता के मद से चूर राजनेताओं के लिए यह जरूर असह्य साबित होगा शायद इसीलिए देश के मौजूदा सत्ताधारी कर्णधार, जो देशहित नहीं अपना व्यक्तिगत स्वार्थ सर्वोपरि रखते हैं, चौधरी साहब की अर्थनीति पर कई तरह से आक्रमण करते हैं।

सत्ताधारियों के पक्षधर एक अर्थशास्त्री ने यह दलील दी कि पूंजी संग्रह विज्ञान तथा टेकनोलाजी के उचित प्रयोग पर निर्भर है। उन्होंने कहा कि श्रम – प्रधान तकनीक इतनी बचत नहीं पैदा कर सकती कि राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि और जीवन स्तर उठाने के लिए आवश्यक पूंजी–संग्रह में सहायक हो सके। चौधरी चरण सिंह का मत था कि भारत की तत्कालीन दैन्य दशा में कुल राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि करने के बजाय देश को रोजगार में वृद्धि की दिशा में ले जाना चाहिये। इससे राष्ट्रीय आय में अपने आप वृद्धि होगी। यह निर्विवाद था कि आम जनता की क्रयशक्ति में वृद्धि के बिना औद्योगिक उत्पादनों की वृद्धि सम्भव ही नहीं। श्रम प्रधान उद्योग में श्रमिक ही सबसे बड़ा हिस्सा प्राप्त करता था जैसे पूंजी प्रधान ईकाई में पूंजीपति। जरूरत पूंजीपतियों की संख्या बढ़ाने की नहीं, स्वरोजगार से अधिकाधिक लोगों की गरीबी दूर करने की थी। सैंतीस वर्षों के प्रयोग में देश को अनुभव हो गया था कि पूंजीपरक औद्योगिक नीति देश के लिए अशुभ ही नहीं घातक भी थी। वह असंतोष, अराजकता और हिंसा की कारक थी।

साम्यवादी आलोचना यह थी कि चौधरी चरण सिंह की नीति से किसान और खेतिहर मजदूर शक्तिशाली हो जाते और देश में वर्ग संघर्ष का सूत्रपात होता। देश की आबादी के अस्सी प्रतिशत जनसमूह के

शक्तिशाली हो जाने से वर्ग संघर्ष कैसे उत्पन्न होता, यह समझ में आने वाली बात नहीं थी। उसी तरह यह तर्क कि छोटे और कुटीर उद्योगों की नीति बीसवीं सदी में अठारहवीं सदी को लाने का प्रयास थी, नितान्त बेमानी थी। वह पश्चिमी और रूसी अर्थव्यस्था और धारणाओं को बिना समझे–बुझे देश पर आरोपित करने का तथाकथित प्रगतिशील अर्थशात्रियों का बेसुरा अलाप था। भारत की अधोगति का हल न पूंजीवादी व्यवस्था में था, न साम्यवादी में। दोनों की प्रकृति हमारे अनुकूल नहीं थी। इसका समन्वित रूप गांधीवादी विचारधारा ही इस देश के करोड़ों लोगों को बेहतर जिन्दगी देकर देश को गतिमान बना सकती थी। चौधरी चरण सिंह के आर्थिक दर्शन का यही परिप्रेक्ष्य था। एक जगह उन्होंने कहा कि "यदि देश को बचाना है तो नेहरूपंथी मार्ग को गांधीवादी रास्ते पर लाना होगा"।

यह नहीं कि वे बड़े उद्योगों के महत्त्व को बिलकुल नकारते थे। उनका प्रति–पाद्य था कि इस दुर्दान्त गरीबी के देश में सबको रोजगार देना था, जो कृषि पर लोगों का भार कम कर कुटीर उद्योगों में लगाने से ही सम्भव होता। बड़े उद्योगों की जरूरत सामरिक महत्त्व के उपकरणों के लिए, बिजली के उत्पादन तथा दूसरी मूलगत मशीनों को बनाने के लिए जरूरी थी। इसलिए वे यह समझौता चाहते थे कि बड़े उद्योग उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करें, जो लघु उद्योगों की क्षमता के बिल्कुल बाहर हों और लघु उद्योग भी उन वस्तुओं का उत्पादन सख्ती से न करें, जो घरेलू उद्योग–धन्धों से बनाये जा सकते हों। गांव के किसानों, दस्तकारों और शिल्पकारों के लिए यह सोच कितनी कल्याणकारी थी? अर्थशास्त्र की दृष्टि से इसमें कहीं कुछ भी असंगत नहीं था। हमारी व्यापक बेरोजगारी का हल भी यही होती।

भारत के लक्ष लक्ष शोषित, किसान, मजदूर और गरीबों की समुन्नति के लिए चौधरी चरण सिंह की ललक जितनी तीव्र थी, उतनी ही प्रभावकारी उनकी नीतियां थी। उनकी रगों में पहली राज्य क्रांति के अमर स्वतंत्रता सेनानी का खून प्रवाहमान था। वे हिम्मत हारने वाले व्यक्ति नहीं थे, प्रत्युत परम साहसिक और निर्भीक थे। गांधीवादी आर्थिक विचारधारा और नीतियों के प्रसार के लिए वे तत्कालीन परिस्थितियों में राजतंत्र का माध्यम जरूरी मानते थे। उनका लक्ष्य जल्दी से जल्दी शोषण को समाप्त कर देश को शक्तिशाली और प्राचीन काल की तरह दुनिया का शिरमौर बनाना था। उत्तर प्रदेश में इसी ललक से उन्होंने जमीन्दारी उन्मूलन और भूमि सुधारों के कानून को वह रूप दिया कि आभिजात्य वर्ग ही नहीं, तथाकथित परम प्रगतिशील साम्यवादी विचारक भी उनके कृतित्व

को आंखें फाड़ कर देखते रह गये। "जिसकी करनी, उसकी भरनी" यह था, भूमि सुधारों का उनका मूलमंत्र। धनी किसानों के खेतों को बटाई या मालगुजारी पर लेने वाले प्रायः शत–प्रतिशत भूमिहीन किसान हरिजन थे –गांवों के सर्वाधिक शोषित खेतिहर मजदूर। चौधरी चरण सिंह ने उन्हें कानूनन उनकी जोत की भूमि का सीरदार स्वामी बना दिया। लाख हाथ पांव पटक कर भी आभिजात्य वर्ग उन शिकमी कास्तकारों को उत्तर प्रदेश में बेदखल नहीं कर सका। यह उनके सोच और लक्ष्य की क्रांतिकारी उपलब्धि थी, जिसका भारत में ही नहीं, संसार में कम शानी था। देश के सर्वाधिक पीड़ित हरिजन समाज के लिए चौधरी चरण सिंह इस तरह वरदान बन गये।

सीरदारी के विषय में ही नहीं, सारे जमींदारी उन्मूलन विधेयक और उसे प्रभावी करने को चकबन्दी कानून, हदबन्दी तथा भूमि संरक्षण सुधारों में चौधरी चरण सिंह के किसान का कर्मठ बेटा होने का व्यक्तित्व बिखर गया। उनकी जुझारू प्रकृति को इन क्रांतिकारी प्रयोगों के लिए अपने शासक दल के आभिजात्य वर्ग का, साथ ही तथाकथित समाजवादी कहे जाने वाले वर्गों का, कितना विरोध सहना पड़ा, उनसे कितना मोर्चा लेना पड़ा, यह स्वयं में एक शोध का विषय बन गया। उसका आनुपातिक विवरण संबंधित प्रकरणों में दिया गया है। यहां केवल हम अमेरिकन कृषि विशेषज्ञा डब्लू० ए० लैड जिन्सकी की, जिन्होंने दुनिया के कितने उन्नत देशों में कृषि सलाहकार के रूप में काम किया है, योजना आयोग को भेजी गई एक रिपोर्ट का उल्लेख करना उचित हैं। 'भूमि व्यवस्था का कृषि उत्पादन पर प्रभाव' विषय पर रिपोर्ट देते हुए उन्होंने लिखा कि "वास्तव में, केवल उत्तर प्रदेश में एक बहुत सोचा–समझा व व्यापक कानून पास किया गया है और उसे असरदार ढंग से लागू किया गया है। वहां दसियों लाख कास्तकारों को मिलकियत दी गयी और उन लाखों कास्तकारों को जो बेदखल कर दिए गये थे, उनके अधिकार वापस दिये गये।" उन्होंने दूसरी जगह यह भी लिखा है कि "भारत में सिर्फ उत्तर प्रदेश में ऐसे कानून बने, जिन पर साथ–साथ अमल हुआ और महत्त्वपूर्ण कामयाबियां मिलीं।" यह चौधरी चरण सिंह के गम्भीर चिन्तन, अथाह देशभक्ति और दृढ़ तथा अजेय इच्छा का ज्वलंत उदाहरण था। उद्योगों या उत्पादन के साधनों का विकेन्द्रीकरण करना भी उसी चिन्तन का परिणाम था, जिससे न पूंजी न ही उत्पादन के साधन लोगों के हाथ में केन्द्रित हुए। इससे असमानता पर भारी अंकुश लगे। चीन में माओत्से–तुंग ने अन्ततः रूसी पद्धति को त्याग कर कृषि को ही प्राथमिकता नहीं दी, अपितु बड़ी–बड़ी मशीनीकृत योजनाओं और उद्योगों की अपेक्षा मानव श्रम और विकेन्द्रित

श्रम – प्रधान उद्योगों पर अधिक भरोसा किया। धरतीपुत्र चौधरी चरण सिंह की गांधीवादी 'बहुजन हिताय' विचारधारा का यही स्वरूप था, जिससे जन–जन की आर्थिक समृद्धि, समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता, व्यक्ति और समष्टि को गौरवपूर्ण बना सकती था।

एक बात और– रूसी आयोजना में बड़े–बड़े राजकीय या सहकारी कृषि फार्मों पर बहुत जोर दिया गया था। उसकी नकल कर सन् १९५७ की नागपुर कांग्रेस में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भारत में भी सहकारी खेती का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। तब जवाहरलाल जी देश पर छाये हुए थे और उनके विरोध में बोलने का किसी साधारण राजनैतिक पदाधिकारी, को चाहे वह ऊंचा से ऊंचा क्यों न हो, साहस ही नहीं पड़ता था। उस प्रस्ताव का विरोध किया असाधारण प्रतिभा सम्पन्न चौधरी चरण सिंह ने। लोग उनके अदम्य साहस पर चकित हो मुग्ध हो गये। उनके तर्क इतने सटीक और ग्राह्य थे कि नेहरू की उपस्थिति में ही तालियों की गड़गड़ाहट से कांग्रेस का विशाल पंडाल कई बार गूंज उठता। नेहरू का प्रस्ताव फेल होता ही नहीं। वह भारी बहुमत से पारित हुआ। लेकिन सहकारी खेती का प्रस्ताव उसी दिन वहीं दफन हो गया। उसे कभी लागू करने की कोशिश भी नहीं हुई। यह थी एक झलक चौधरी चरण सिंह के चिन्तक रूप, तर्क शैली और उनके अदम्य साहस तथा अनुभव की। अनुभव यह कि किसान को धरती प्राणों सी प्यारी होती है। वह अपनत्व के मोह में उसकी मिट्टी तैयार करता है, उसमें खाद डालता है और अपने कठोर श्रम से उससे अधिक से अधिक पैदावार करता है। धरती उसकी माता है। सहकारिता में भूमि का स्वामित्व खो कर जब रूस और चीन ने असफलता का मुंह देखा, तब भारत की क्या बिसात?

सेवा सहकारी संस्थाओं को चौधरी चरण सिंह ने छोटे–छोटे व्यक्तिगत कृषि फार्मों तथा कुटीर उद्योगों और लघु उद्योगों के समुचित विकास और उनके द्वारा उत्पादन के लिए आवश्यक माना। यह इस सूखे देश की पुरानी परम्परा भी है, जहां तालाब, कुए, जलाशय सहकारिता से सबके उपयोग के लिए बनाये जाते थे।

चौधरी चरण सिंह के आर्थिक चिन्तन पर ही जनता पार्टी की आर्थिक नीति बनी जो उनकी पुस्तक 'भारत की अर्थनीति' (गांधीवादी रूपरेखा) में संक्षिप्त, किंतु संश्लिष्ट रूप में प्राप्य है। उसमें पूंजीपतियों की ही तरह राज्य के हाथ में भी संपत्ति के केन्द्रीयकरण का विरोध किया गया है, क्योंकि उससे स्वतंत्रता पर बन्धन लग जाते हैं और अनुचित असमानताएं भी आ जाती हैं जिससे सामाजिक और आर्थिक तनाव पैदा होते हैं। जरूरी भारी उद्योगों के बारे में भी चौधरी साहब के निर्देशन में जनता

पार्टी ने गांधी जी की न्यासी (ट्रस्टीशिप) योजना को स्वीकार किया, जिसके अन्तर्गत यह प्रतिपादन था कि उद्योगपतियों को अपने धारणों का संचालन उनके पास रखने दिया जायेगा और उनकी योग्यताओं को सम्पत्ति की वृद्धि के लिए इस्तेमाल करने दिया जायेगा, लेकिन अपने लिए नहीं, बल्कि राष्ट्र के लिए और इसीलिए बिना (दूसरों का) शोषण किये। राज्य उनकी सेवा के अनुरूप उनका कमीशन तय करता था। इससे प्रबन्धकों के लिए प्रेरणा स्रोत भी खुला रहा और श्रमिकों, उपभोक्ताओं, कच्चा माल पैदा करने वालों के साथ ही सारे समाज के हित भी सुरक्षित रहे। चौधरी चरण सिंह का यह यथार्थ गांधीवादी दर्शन संत विनोबा के बाद सबसे बड़ा गांधीवादी चिन्तन था। यह सर्वोदय क्षेत्र के दादा धर्माधिकारी से कहीं ठोस धरातल के थे।

दरिद्रनारायण की भावधारा में अभिभूति होने से ही चौधरी चरण सिंह को वह प्रशासनिक दक्षता भी प्राप्त हुई जो अपने अनुशासन, दूरदर्शिता और कर्तव्य–परायणता के लिए अत्यन्त ही विशिष्ट मानी गयी थी। मन्त्री के रूप में उत्तर प्रदेश और भारत सरकार में उन्होंने जो कुछ भी छुआ उसे सोना कर दिया। यद्यपि उनकी मूलगत प्रवृत्तियां कृषि और आर्थिक विकास से युक्त थीं, तथापि दिनोंदिन बढ़ रही सामाजिक कुरीतियों और अराजकता को मिटाने के लिए कानून की प्रतिष्ठा के काम में वे भावनात्मक वेग से उल्लसित हो जाते थे। कानून का पालन सभ्यता का माप दंड है। शासन के दण्ड का नियंत्रण भी कानून पालन के लिए आवश्यक है। इस दिशा में उत्तर प्रदेश तथा केन्द्र के गृह मन्त्री के रूप में उन्होंने अविस्मरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। उनके एक सहृदय आलोचक ने लिखा कि मूल रूप से सरल और संकोची प्रकृति के होने के कारण वे शान्ति व्यवस्था जैसे विभागों में बहुत तेज तर्राक हो जाते थे। यह अनुदार विश्लेषण था। वे अन्याय, अत्याचार, निरंकुशता, भ्रष्टाचार आदि असामाजिक व्यवहारों के कट्टर विरोधी थे। इनकी गंध पाकर उनका खून खौल उठता था। वे जन–जन की समानता, स्वतंत्रता और सम–मर्यादा के कायल थे। वे जाट कुल के गौरव थे। यद्यपि जाति प्रथा में उन्हें विश्वास नहीं। जाटों का जातीय गुण है कि वह किसी दूसरे का चाहे वह कितना भी शक्ति सम्पन्न क्यों न हो, दाब कदापि नहीं सह सकता। ऊंच–नीच के अपने अमर्यादित समाज में अपराध स्थिति आजादी के सैंतीस वर्षों बाद भी उतनी ही भयंकर थी, जितनी गरीबी। इसलिए उनका पौरुष अपराध निवारण के कामों में प्रस्फुटित हो उठता था। वे नैतिकता के साथ–साथ अनुशासन पसन्द करते थे। यह भय से कम और व्यक्ति के निजी विकास से अधिक सम्भव होता है। इसी अनुप्रेरणा से उन्होंने अपने बच्चों के लिए

'शिष्टाचार' नामक पुस्तक लिखी। सार्वजनिक जीवन में भी वे अमर्यादित व्यवहार नहीं सह पाते थे।

चौधरी चरण सिंह ने गृहमन्त्री के रूप में ऐसे काम किए, जो लौह पुरुष सरदार पटेल का अनायास ही स्मरण कराते हैं। जनता सरकार में केन्द्रीय गृहमन्त्री के रूप में आपातकाल की ज्यादतियों और अत्याचारों के खिलाफ उनके द्वारा स्थापित जांच आयोग उनकी दूरदर्शिता के परिचायक थे। सभ्य समाज में कानून की नजर में बड़े से बड़े और छोटे सब बराबर होते हैं। ऐसा उन्होंने कर दिखाया था। जनता सरकार अपनी पूरी अवधि के पहले न टूटती, तो आपातकाल के अत्याचारों के उत्तरदायी उसी तरह यातनाएं भुगतते, जैसी उन्होंने निरपराध लोगों को जेलों में सड़ा कर दी थी। आपातकाल की मानसिकता भी भारत से हमेशा के लिए भाग गयी होती। यह जहांगीरी न्याय जनता सरकार के टूट जाने से सम्भव नहीं हुआ। देश तब भी एकतंत्र और वंशतंत्र का शिकार रहा। लेकिन आपातकाल के बाद अगर चौधरी चरण सिंह जैसा दूरदर्शी और कर्तव्य–परायण गृहमन्त्री न मिला होता, तो न जानें देश की आज क्या दशा होती? जो उन्होंने किया वह क्या कम हृदय विदारक था?

केन्द्रीय गृहमन्त्री के रूप में उनके द्वारा स्थापित परिगणित जाति आयोग, पिछड़ी जाति आयोग, अल्पसंख्यक आयोग ने यह सिद्ध कर दिया कि देश को एकसूत्र में पिरोने तथा राष्ट्रीय एकता के लिए उनका दृष्टिकोण अत्यन्त दूरदर्शी था। आज संकीर्ण मनोवृत्ति के कर्णधारों द्वारा सारे देश में जो जातिगत, भाषागत, धर्मगत द्वेष और तनाव जानबूझ कर फैलाया जा रहा है, वह सब कभी का मिट गया होता। मौजूदा कर्णधारों को अपना वोट बैंक बनाए रखने के लिए इन तनावों को बरकरार रखना जरूरी है। ऐसा औरंगजेब की कट्टर नीति की तरह कितना घातक था, वे समझ नहीं पाते। मजबूत राष्ट्रीय एकता के लिए एक भाषा, एक भूषा और आर्थिक समानता उतनी ही जरूरी है, जितनी धर्म निरपेक्षता। आज के सत्ता के कर्णधारों के लिए धर्म–निरपेक्षता उतनी जरूरी नहीं, जितना अल्पमत और बहुमत का तनाव। धर्म–निरपेक्षता घर के अन्दर पूजा पद्धति की शासन द्वारा सुरक्षा होती है। घर से बाहर सब देश के सामाजिक और राजनैतिक श्रेणियों के सदस्य हैं, शुद्ध हिन्दुस्तानी हैं। इस तरह सच्ची धर्मनिरपेक्षता में धर्म और पूजा स्थल के बाहर न कोई अल्पमत है, न बहुमत। लेकिन स्वार्थी कर्णधार दो राष्ट्र के सिद्धान्त का नया रूप मिश्रित संस्कृति और दो राज–भाषाओं को देश पर थोप कर उसकी एकता की जड़ खोद रहे थे और अकारण साम्प्रदायिकता को बनाये रखना चाहते थे।

चौधरी चरण सिंह अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ से ही भ्रष्टाचार

के कट्टर विरोधी रहे। पूंजीवादी परम्परा में मुनाफाखोरी और भ्रष्टाचार समूल मिटाया नहीं जा सकता–यह वे समझते थे, लेकिन उसे नियंत्रित कर कम जरूर किया जा सकता थे। आजादी के बाद हर श्रेणी के हिन्दुस्तानी नागरिक देश का उत्कर्ष देखना चाहते थे। वे भ्रष्टाचार में कदापि लिप्त नहीं होते, अगर सत्ताधारी कांग्रेसी जन–प्रतिनिधि और उनके कर्णधार शुरू से ही इस ओर समुचित ध्यान देते। वे क्यों भ्रष्ट हुए, देश कैसे नैतिकता से दूर हट गया, यह एक विस्तृत शोध का विषय है। यह किन्तु सच है कि स्वतंत्रता के आते ही स्वतंत्रता के संघर्ष में अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने वाले सेनानी अपने कोठे भरने में जी–जान से जुट गये। सैकड़ों की संख्या में हर राज्य में ऐसे भी लोग स्वतंत्रता सेनानी बन गये, जिन्होंने आजादी के संघर्ष में भाग ही नहीं लिया था। कांग्रेसी सरकारों ने भी पेंशन, अनुदान आदि देकर इस प्रवृत्ति को बढ़ने दिया। द्वितीय विश्व युद्ध में विदेशी शासकों की मदद करने वाली व्यापारिक संस्थाओं और व्यापारियों में चांदी की घुड़दौड़ मची ही थी। नयी सरकार उनके जाल में आसानी से फंस गयी, क्योंकि बढ़ती कीमतों और अनैतिकता के कारण चुनाव बहुत खर्चीले पड़ने लगे। इस तरह चंदा दलगत राजनीति का एक आवश्यक अंग बन गया। सत्ताधारी पार्टी को चंदे की कमी कहां होती? बस क्या था? पूंजीवालों और सत्ताधारियों का चोली–दामन एक बनने लगा। यह मौजूदा भ्रष्टाचार की शुरुआत थी, जो देश भर में सर्वव्यापी बन गया। कोई इससे नहीं छूटा। छोटे सरकारी कर्मचारी गांधी जी की तसवीर दिखा कर फतवा देते "देखो गांधी जी के हाथ को, एक दो नहीं, पांच गिनो।" नेहरू की अयथार्थ आर्थिक नीतियों के कारण महंगाई भी अजगर सांप की तरह मुंह फाड़कर बढ़ी। इस प्रकार भ्रष्टाचार जीवन का तरीका बन गया।

चौधरी चरण सिंह ने अपने जीवन में "सादा रहना और ऊंचा विचार" को कड़ाई से अपनाया। भारत की प्राचीन परम्परा में अर्थ की गुलामी निकृष्टतम मानी जाती थी। महामन्त्री चाणक्य का यह उद्घोष था कि देश का प्रधान सभासद झोंपड़ियों का रहने वाला हो, सेवा में समपति व्यक्तित्व हो और ऐसा हो कि अगर सुबह का भोजन उसके घर में हो तो शाम का जुगाड़ करना पड़े। चौधरी चरण सिंह का निजी जीवन प्रायः इसी आधार पर निरूपित रहा। सार्वजनिक जीवन में भी पूंजीपतियों से उन्होंने सतर्कतापूर्वक लम्बी दूरी बनाये रखी। गरीब किसानों और मजदूरों से एक–एक, दो–दो रुपये चन्दे के अलावा उन्होंने किसी पूंजीपति को चंदा देने के लिए भी अपने पास नहीं फटकने दिया। इस विषय में वे महात्मा से भी अधिक कट्टर रहे। सरकारी कर्मचारियों का भ्रष्टाचार वे

अक्षम्य मानते थे, क्योंकि सरकारी कर्मचारी का देशभक्ति के एवज में जीवन–यापन के लिए वेतन सुरक्षित होता है। उनका वेतनमान भी इस गरीब देश में साधारण नागरिकों की तुलना में कम नहीं। अतः उनके लिए सेवा के काम में बेईमानी और भ्रष्टाचार अपनाना भारी पाप था। चौधरी साहब ने सरकारी कर्मचारियों के खिलाफ युद्ध स्तर पर भ्रष्टाचार विरोधी अभियान चलाया। लेकिन न्याय की तराजू में अपनी अटूट आस्था के कारण उन्होंने किसी एक को भी अकारण नहीं सताया। आपातकाल में केवल आतंक जमाने के लिए योग्य तथा निष्पक्ष कर्मचारियों को शासकों ने तबाह किया। उसका न कोई प्रभाव पड़ सकता था, न पड़ा। चौधरी चरण सिंह के अभियान से मगर सारे देश में खलबली मच गयी। राज कर्मचारी ही नहीं, उनके भ्रष्टाचार के पोषक उच्च पदस्थ राजनीतिज्ञ भी तेज हवा में पीपल के पत्ते की तरह थरथर कांपने लगे थे। यह समूचे देश के लिए नयी दिशा का चौधरी साहब द्वारा निर्देश था।

चौधरी चरण सिंह गुजरात प्रदेश को अपना गुरुपीठ मानते थे। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द वहीं के थे। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा था कि "अपना बुरा शासन भी अच्छा है, पराया अच्छे से अच्छा शासन भी बुरा है।" महर्षि ने अस्पृश्यता निवारण, मद्यनिषेध, दहेज उन्मूलन, बाल–विवाह–निषेध, विधवा–विवाह आदि कितने समाज सुधारों के महत् कार्यों के साथ–साथ एक भाषा, एक भूषा और एक भोजन का आन्दोलन चलाकर देश की अखंड भारतीयता की नींव को मजबूत बनाने का श्रीगणेश किया था। लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी पर उनका प्रभाव प्रत्यक्ष पड़ा। चौधरी चरण सिंह का सार्वजनिक कार्यकलाप सक्रिय रूप में आर्य समाज से ही प्रारम्भ हुआ था। वहीं से अनुप्रेरित वह महात्मा गांधी के स्वतंत्रता संघर्ष में कूदे। महात्मा जी भी गुजराती थे। गुजरात के ही बारदोली के किसानों के महासेनानी सरदार पटेल थे। महर्षि दयानन्द से प्रेरणा, महात्मा गांधी से विचार और सरदार पटेल से कर्मयोग लेकर चौधरी चरण सिंह का व्यक्तित्व अनायास ही खिल उठा। उनकी आध्यात्मिक आस्था इसीलिए उतनी ही प्रबल है जितनी राजनैतिक चेतना और ठोस यथार्थ की कर्मठता। स्वामी विवेकानन्द ने भी उन्हें कम अनुप्रेरित नहीं किया। स्वामी विवेकानन्द के कर्मयोग में स्वदेश की स्वतंत्रता का आह्वान कम नहीं। इस तरह उनके राजनीति प्रधान व्यक्तित्व में ज्ञान, भक्ति और कर्म मार्गों का अद्भुत सामंजस्य था। शायद इसीलिए उस समय की कुटिल राजनीति से वे अक्सर ऊब जाते थे। किसानों, मजदूरों, हरिजनों और दूसरे शोषित और पिछड़े लोगों के अभ्युत्थान के लिए वे कीचड़ में

कमल जैसे थे। वे मूल रूप से गम्भीर गांधीवादी चिन्तक के साथ–साथ अध्यात्मवादी थे। भारत की राजनीति में आज जो झूठ, फरेब, और स्वांग चल पड़ा है, उसे वे नितान्त निन्दनीय मानते थे। साध्य और साधन की पवित्रता के विश्वास की तरह वे बाहर–भीतर एक थे, और गांवों की अस्सी प्रतिशत जनता जनार्दन तथा शहरी पिछड़े वर्गों के लिए पूर्णतया समर्पित थे। 'सर्वे भवन्तु सुखिनरू' भारतीय अध्यात्म का मूल है।

ज्ञान, भक्ति और कर्म के सम्मिश्रण से उत्पन्न उनके स्वभाव के विरोधाभास को भी समझना आसान नहीं। माता जी गायत्री देवी ने एक भेंट में बताया कि कई बार वे गुस्सा भी करते थे, लेकिन शान्त होते ही उस पर सच्चा पश्चाताप भी करते थे। परिवार वालों ही की तरह अपने निकट के मिलने वालों से भी वे अगाध स्नेह रखते थे। अपनी सरलता में वह सबका विश्वास कर लेते थे। उन्होंने श्रीमती इन्दिरा गांधी पर विश्वास कर लिया था। और जब विश्वास करने वाला धोखा देते है, तब भी उससे कीना नहीं मानते। धोखा देने से धोखा खाना, वे बेहतर समझते थे। उनकी सबसे छोटी अमेरिका प्रवासिनी पुत्री ने अपने एक संस्मरण में लिखा कि कई बार उनके पास ऐसा लगता था कि वे उतने महान नहीं जितना कल्पना से निकट के लोगों ने उन्हें बना दिया था और कई बार उनके पास बैठ कर यह आभास होता था कि वे सब एक मन्दिर में बैठे हैं। वास्तव में चौधरी साहब का व्यक्तित्व मन्दिर से कम नहीं, जहां अच्छे–बुरे, धर्मात्मा पापी सब विश्वासपूर्वक उनका संवेदन पा जाते थे।

सार्वजनिक लोगों में उनकी जितनी प्रशंसा थी, उतनी ही कटु आलोचना भी थी, यद्यपि यह सर्वविदित रहा कि उनका विरोध ईर्ष्यावश था। उनकी सच्चाई, सेवा की लगन, उनके सोच और चिन्तन तथा उनकी कर्मठता से चिढ़ कर बड़े से बड़े लोगों ने उनके खिलाफ क्या–क्या प्रचार नहीं किया। महानता हमेशा ईर्ष्या की कारक रही है। उनकी स्पष्टवादिता और साफ सूझ–बूझ तथा अद्भुत दूरदर्शिता से ऊँचे से ऊँचे वृत्त के राजनीतिज्ञ उनसे सहज ही चिढ़ जाते थे। इस जीवनवृत्त में इसके कितने उदाहरण उल्लिखित हैं। सबसे ओछी बात जो सत्ताधारियों ने उनके बारे में प्रचारित की थी, वह यह कि वे जातिवादी थे। इस जीवनी के परिच्छेदों में आया कि जब वे शिक्षा समाप्त कर किसी समुचित जीवन–यापन के प्रकार को ढूंढ़ रहे थे, तब उन्होंने बड़ौत के जाट स्कूल की द्वितीय प्रधानाध्यापकी और लखावटी के स्नातकोत्तर डिग्री कालेज के प्रिन्सिपल के पद को इसलिए स्वीकार नहीं किया कि उन दिनों ये दोनों शिक्षा संस्थान 'जाट' शब्द से जुड़े थे। जाट क्षत्रिय होते है। चौधरी साहब के अनुयायी पिछड़े वर्गों की जातियां थी। फिर भी निकृष्ट लोग जो गले

तक जातिवाद में डूबे थे, उनके खिलाफ जातिवादी होने का झूठा प्रचार करते रहे। पाठक यह जीवनी समाप्त कर स्वयं अनुभव करेंगे कि चौधरी चरण सिंह जाति–पांति, ऊँच–नीच, गरीब–अमीर की भावना से ऊपर शुद्ध वेद–विहित श्रेष्ठ आर्य थे। जाति–पांति ने ही इस देश का नाश किया। उसको मिटाने के लिए चौधरी चरण सिंह ने कानूनी कदम उठाये, जो इस जीवन–वृत्त में अंकित हैं। उनका यह देश भर में अग्रणी काम रहा है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने उनको मुख्य मंत्री पद के लालच में कांग्रेस को छोड़ने की बात प्रधान मंत्री के रूप में कई बार उठायी। यह इतना झूठा प्रचार था कि उस पर कोई भी टिप्पणी अपमानजनक होगी। उसी थोथे प्रचार के वश दूसरे सत्ताधारी भी गला फाड़–फाड़ कर यह कहते थे कि चौधरी चरण सिंह घोर महत्त्वाकांक्षी थे।

चौधरी साहब के सभी कटु आलोचक और आजकल के उनके सहयोगी श्री लालकृष्ण आडवाणी ने प्रकारान्तर से अपनी पुस्तक में उनके बारे में यह व्यक्त करने की कोशिश की कि महत्त्वाकांक्षा हीन भावना से उत्पन्न होती है और सारे पापों की जड़ है। हीन का उनका अर्थ अभाव हो तो उसके आपूर्ति की लालसा समझी जा सकती है। हीन भावना अगर निराशा पैदा करने वाली है, जैसी वह साधारणतया होती है, तो वह तीव्र असंतोष और अपकर्ष – कारक ही हो सकती है । महत्त्वाकांक्षा का आधार उद्दान्त विश्वास और लक्ष्य शुभ होता है। चौधरी साहब ने कभी यह छिपाया नहीं कि वे महत्त्वाकांक्षी थे। महत्त्वाकांक्षा के बिना अध्यवसाय का आधार कहां मिलता? उनका यह भी विश्वास था कि राजतंत्र के माध्यम से वह इस देश को शीघ्राति–शीघ्र महान बना सकते थे। यह उनकी देश के प्रति एकान्त समर्पण की भावना थी। इन भावनाओं को ईर्ष्यालु लोगों ने दर्प कहा। यह दर्प नहीं, प्रत्युत उस अगाध विश्वास की लगन थी, जिसके अन्तर्गत भारतीय राष्ट्र के अस्सी प्रतिशत निवासियों को चौधरी चरण सिंह ने नयी आशा का सम्बल दिया था, नयी जागरूकता दी है। विश्वास लक्ष्य के पथ का आलोक है। दर्प उसके विपरीत झूठे नारों से जनता की आंखों में धूल झोंकने की कोशिश है। चौधरी चरण सिंह जैसा अपरिग्रह व्रती तपस्वी किसी को भी धोखा दे ही नहीं सकता था। वह कर्म करते रहे फलाफल की चिन्ता से ऊपर उठ कर, वेद–विहित श्रेष्ठ आर्यों की ललक से उनकी मानवीयता का जिक्र न करना उनके व्यक्तित्व के एक महान आधार–भूत पहलू को अनदेखा करना होगा। उनके दादा का नाम बादाम सिंह था। वही राजा नाहर सिंह को फांसी हो जाने के बाद सदल–बल वल्लभगढ़ से भटौना आये थे। वहीं से परिवार की सैनिक परम्परा में किसानी शुरू हुई। वैसे जाट कमर में तलवार बांध

कर हमेशा से खेतों में हल चलाते आये हैं। बादाम सिंह जी के शील, स्वभाव, गुणों के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त नहीं है लेकिन उनके यशस्वी पुत्र और चौधरी साहब के पिता मुखिया मीर सिंह की कर्मठता, न्याय परायणता और पर दुःख – कातरता मेरठ के क्षेत्र में आज भी मशहूर है। चौधरी चरण सिंह में पिता से प्राप्त वंशगत गुण और माता से प्राप्त स्वच्छता और तरतीब सम्पूर्ण रूप में विद्यमान थे। वे धनी नहीं, लेकिन अभावों में लोगों की, विशेष कर राजनैतिक पीड़ितों की यथाशक्ति मदद करते थे। कितने क्रान्तिकारी, आपातकाल के सताये परिवारों के लोग, विद्यार्थी प्रतिदिन उनसे मदद मांगने आते थे। वे भरसक किसी को निराश नहीं करते। जहां वे भरपूर मदद नहीं कर पाते, वहां अपनी विवशता पर चुप हो जाते थे। संक्षेप में उनकी विनोदप्रियता, सरलता, कोमलता तथा प्रत्येक जीवधारी के प्रति संवेदनशीलता को देख कर किसी को यह सन्देह भी नहीं था कि उनकी कठोरता के आभरण में एक महान स्नेहशीलता व्याप्त थी। उनके ये गुण उनके पितामह के नाम को चरितार्थ करते हैं। वे ठीक बादाम है– बाहर से कठोर और भीतर से कोमल। भारतीय जनता पार्टी के श्री राम जेठमलानी उनका यह रूप समझ नहीं पाये, जब उन्होंने कहा कि वे बच्चों की तरह सरल थे और कभी–कभी छोटी सी बात से उनकी आंखें भर आती थी। यह अनुपमेय महानता ही तो थी। चौधरी चरण सिंह बच्चों को प्यार करते थें। रात्रि अवकाश का अपना समय वे बच्चों में बिताते थे। यही उनका मनोरंजन था। वे ताश का साधारण खेल खेलते थे, शतरंज नहीं।

मैंने इस जीवन–वृत्त की कथा को कहने में उन्हें बहुत निकट से देखा। उत्तर प्रदेश की प्रशासनिक सेवा में उनके मन्त्रिमंडल – काल में मैंने राजकीय सेवा भी की। उस रूप में भी उनको देखने, समझने, उनका आक्रोश सहने का मुझे अवसर मिला। मैं यह विश्वास से कह सकता हूं कि उस किसान जैसा दिखने वाले महामानव की समता का स्वातंत्र्योत्तर भारत में लोकनायक जयप्रकाश नारायण के बाद कोई दूसरा नहीं। उस तपस्वी के पचपन वर्ष के सार्वजनिक जीवन में किसी बात पर कोई उंगली न उठी थी। विरोधियों की ईर्ष्या भी जल–भुन कर राख हो गई और बेदाग मसीहा भारत के शोषित संतप्त लोगों के विचार–बोध में उनकी क्रान्ति की जागरूकता बन कर लहराता रहा।

चौधरी चरण सिंह बापू से कभी मिले नहीं। उनका दर्शन करते रहे, उनका साहित्य पढ़ते रहे और उस पर मनन करते रहे। फिर भी सूत्रों के रचयिता बापू से उन सूत्रों का भाष्यकार कहीं अधिक बोधगम्य साबित हुआ। इस तरह वेद और उपनिषद् दोनों समान महत्त्व के बन गये।

किसान का बेटा हर हालत में किसान ही रहा। जब वह प्रधानमंत्री बना, उसके कारण देश भर के किसानों को यह लगा कि उनका अपना कोई सगा संबंधी भारत के सिंहासन पर बैठा है। जो उन्हीं की तरह रहता है, उन्हीं की तरह खाता–पीता है। उन्हीं की बात रातदिन सोचता है। उसमें कहीं कोई बनावट नहीं, नफासत के नाम पर हाथ में केवल नाइजेरियन बेंत की एक. सुन्दर छड़ी है, जिसको देखने भर से ही आततायी भय से कांप जाते हैं।

वह मेरठ की धरती की उपज हैं। वह धरती महाभारत युद्ध से १८५७ की राज्य क्रान्ति क्या सन् ४२ के 'भारत छोडो' आन्दोलन तक देशभक्तों के खून से सींची जाती रही है। उसी की पवित्र माटी से बना है चौधरी चरण सिंह का पंचभूत, जिसमें किसानों, मजदूरों के सर्वोदय की अनंत लालसा दहकती थी। हमारे पश्चिमी हावभाव के नक्काल कर्णधारों ने नगरों की दिखावटी शान शौकत के लिए गांवों की उपेक्षा की, यह देश के बहुमत का घोर अपमान था। उस अपमान के प्रतिकार की ज्वाला में उभरे चौधरी चरण सिंह, जो सागर से गहरे थे और हिमालय से ऊँचे। उसे भारत के लक्ष–लक्ष किसान–मजदूरों तथा शोषितों का पुनीत लक्ष्य प्राप्त करना था। वह उसे बिना प्राप्त किये जाता नहीं।

हर महामानव की तरह चौधरी चरण सिंह "अकेला" था। अपने सिद्धान्तों और आदर्शों के पथ पर बिना दायें–बायें देखे वे निरन्तर आगे बढ़ते रहे। संन्यास का प्रथम चरण पूरा होने वाला था लेकिन उनका चलना पूर्व गति से जारी रहा। हिन्दुओं ने औसत आयु सौ वर्ष मानी है। उसे वह पूरा करते, यह जन–जन की आकांक्षा ही, क्योंकि उसी से भारत का स्वर्णिम भविष्य निखरता।

अध्याय २

मड़ैयों में प्रकाश

चौधरी चरण सिंह का जन्म २३ दिसम्बर सन् १९०२ ई० को मेरठ की हापुड़ तहसील के नूरपुर गांव की मड़ैयों के बीच एक छप्पर के घर में हुआ। सूरज की किरणें फूट रहीं थीं, दिशाओं के अंधेरों में प्रकाश भरता जा रहा था जब माता ने उन्हें जन्म दिया। मड़ैयों के जाट परिवार में खुशी के ढोल बज उठे, थालियां झनझना उठीं, कुनबे का कुनबा प्रातःकालीन पक्षियों की तरह खुशी का समवेत कलरव कर उठा। बालक का जन्म मड़ैयों के सौभाग्य का सूचक था।

उन मड़ैयों के निर्माण के पीछे दारुण दुःख और दुर्दिन के साथ–साथ एक गौरव–पूर्ण इतिहास की स्मृति जुड़ी थी। मुगल सम्राट औरंगजेब के शासनकाल में उसकी कट्टर धर्मान्धता से हिन्दू ही नहीं, बहुत से सद्यः दीक्षित मुसलमान भी बहुत पीड़ित और सशंकित रहे। औरंगजेब इतना असहिष्णु और अदूरदर्शी था कि सन् १६६६ में उसने मथुरा के अपने फौजदार अब्दुल नबी खां द्वारा श्री कृष्ण जन्म–स्थान के मंदिर की जगह पर मस्जिद बनवा दी। हिन्दू बहुत क्षुब्ध हुए। धार्मिक मदान्धता में उसे किसी की परवाह नहीं थी। उसने सुप्रसिद्ध हिन्दू मन्दिरों की मूर्तियों को तोड़ा। धर्म के नाम पर हिन्दुओं पर जजिया आदि करों को लगाया तथा अनेक प्रकार से उनको उत्पीड़ित कर उनके धर्म–परिवर्तन की निरन्तर कोशिश की। आगरा–मथुरा क्षेत्र के जाट किसान औरंगजेब के खिलाफ सिख गुरुओं की तरह उठ खड़े हुए। आगरा के पास तिलपत का ऐसा ही एक जाट सरदार गोकुल राम या गोकुला था। वह सिनसिनी गांव का मूल निवासी था। उसने जाट, गूजर और अहीर किसानों को संगठित कर मुगल खजाने में माल–गुजारी न जमा करने का आन्दोलन छेड़ा। इससे मुगलों का क्रोध करना स्वाभाविक था। उन्होंने उस अदना सरदार को कुचल डालना चाहा। यह आसान नहीं साबित हुआ। उल्टे गोकुला का प्रभाव बढ़ता गया। नवम्बर 1669 में गोकुला का सर काटने के लिए स्वयं औरंगजेब सेना समेत दिल्ली से मथुरा आया। गोकुला ने भी जाट, अहीर व गूजरों को इकट्ठा कर तिलपत पर कड़ा मुकाबला किया। शाही फौजों के पास तोपें और राकेट थे। गोकुला परास्त हो गया। उसे बन्दी

बना कर आगरा जेल भेजा गया। आगरा में उसे इस्लाम धर्म स्वीकार करने को कहा गया। इस प्रस्ताव को गोकुला ने दृढ़ता से अस्वीकार कर दिया। तब आगरा की कोतवाली के सामने उसको तथा उसके प्रमुख सहायकों को कत्ल कर बोटी–बोटी करा दिया गया। परन्तु शहीद होकर गोकुला मुगलों के लिए अधिक खतरनाक साबित हुआ। सिनसिनी के जाटों ने नया सरदार चुना, जिनमें राजाराम बड़ा प्रतापी निकला उसने सौगढ़िया के जाटों के सहयोग से आगरा क्षेत्र में मुगलों के नाक में दम कर दिया। उसने आगरा पर आक्रमण कर सिकन्दरा में अकबर की कब्र को उधेड़ा। उसका यह कृत्य क्षम्य नहीं माना जा सकता। लेकिन तब के देशकाल में उसका उद्देश्य गोकुला की पाशविक हत्या का बदला चुकाना था, अकबर की कब्र का अपमान करना नहीं। राजाराम भी लड़ते–लड़ते मारा गया। उसकी परम्परा में चूड़ामणि सरदार बना जो मुगल शासन के लिए भय और आतंक का उतना ही भारी कारण बना, जितना महाराष्ट्र में शिवाजी महाराज।

सन् १७०७ ई० में औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में राज–सिंहासन के लिए परम्परागत युद्ध छिड़ा। अन्त में शाह आलम बहादुर शाह गद्दी पर बैठा। उसने चूड़ामणि की शक्ति और सत्ता को स्वीकार कर उसे दिल्ली से चम्बल तक के प्रदेश का "शाह–ए–राह" नियुक्त किया। "शाह–ए–राह" आम रास्तों और चम्बल के पार जाने के लिए कर लेने का अधिकारी था। इससे चूड़ामणि की शक्ति बढ़ी। शीघ्र वह एक स्वतन्त्र राजा की तरह मुगल दरबार से व्यवहार करने लगा। चूड़ामणि के भाई का लड़का बदन सिंह था, जिसका चूड़ामणि से गहरा मतभेद हुआ और इतना बढ़ा कि जयपुर के जयसिंह ने जब चूड़ामणि के एक मजबूत किले, थून, पर आक्रमण किया, तब बदन सिंह जयसिंह की ओर से चूड़ामणि के विरुद्ध लड़ा। जयसिंह विजयी हुआ।

चूड़ामणि को इसका घोर दुःख हुआ। उसने आत्महत्या कर ली। सिनसिनी और सौगढ़िया जाटों ने चूड़ामणि की जगह बदन सिंह को सरदार चुना। बदन सिंह के जीवनकाल में ही उसके लड़के सूरजमल ने भरतपुर में स्वतन्त्र जाट राज्य स्थापित क्रिया तथा पिता के मरने के बाद महाराजा की पदवी ग्रहण की। उसकी विलक्षण बुद्धि,/दूरदर्शिता और पराक्रम के कारण भरतपुर हिन्दुस्तान का अजेय कीर्ति स्तम्भ बना। दिल्ली के विजेता फिरंगी जनरल लेक (संम) को भरतपुर में मुंह की खानी पड़ी। अंग्रेज इतिहासकारों ने उस पराजय का उल्लेख प्रकारान्तर से ही किया है। महाराज सूरजमल ने भरतपुर के जाट राज्य का विस्तार उत्तर में मेरठ–मुजफ्फरनगर, पश्चिम में रिवाड़ी तथा मेवात, और पूरब

में मैनपुरी – इटावा तक किया। पानीपत की तीसरी लड़ाई का नतीजा और हिन्दुस्तान का इतिहास दूसरा हुआ होता अगर मराठे उसकी सही सलाह को मान गये होते। उसकी श्रेष्ठ रणनीति और राजनैतिक सूझबूझ के कारण इतिहासकारों ने उसे जाटों का प्लेटो (Plato) बताया।

दिल्ली – मथुरा–आगरा क्षेत्र में जाटों के संघर्ष के इन्हीं दिनों में गोपाल सिंह तेवथिया फरीदाबाद के निकट सिंही गांव में आकर बसे। सिही में ही महाकवि सूरदास पैदा हुए थे। जिस साल गोपाल सिंह सिंही आये, उसी साल औरंगजेब की मृत्यु हुई। मुगल सत्ता के खिलाफ गोपाल सिंह ने भी अपने पौरुष और पराक्रम से उस इलाके में अपना आधिपत्य जमा लिया। बिखरते मुगल शासन ने उसका लोहा मानकर उसे फी रुपया एक आना कमीशन दर पर फरीदाबाद परगने की मालगुजारी वसूलने का काम सौंपा। उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र चरण दास पर यह जिम्मेदारी आयी। चरण दास साधु आदमी थे। दान–दक्षिणा, पूजा–पाठ में अधिक समय बिताते थे। वह समय से खजाने में मालगुजारी जमा नहीं कर सके और बन्दी बना लिए गये। चरण दास के पुत्र बलराम सिंह को पिता को छुड़ाने की एक तरकीब सूझी। उन्होंने थैलियों में ताम्बे के सिक्के भर कर ऊपरी तहों में सोने के सिक्के बिछा दिये और उन्हें खजाने में जमा करा दिया। जब तक उन थैलियों का सही भेद प्रकट हो वे पिता के साथ भरतपुर महाराजा सूरजमल की शरण में पहुंच गये। महाराज सूरजमल का शौर्य और प्रताप इतना बढ़ा–चढ़ा था कि मुगल दरबार के हर ऊंचे पदाधिकारी उन्हें अपने पक्ष में रखने की निरंतर कोशिश करते थे। अतः महाराजा सूरजमल ने मुगलों से बलराम सिंह को उनके परिवार का पद ही नहीं वापिस कराया, बल्कि उन्हें पांच गांवों की जागीर भी दिला दी। बलराम सिंह ने उथल–पुथल के उस जमाने में फरीदाबाद और पलवल के नवाबों को हरा कर दो सौ गांवों पर अधिकार कर लिया और अपने को महाराजा घोषित कर दिया। गुड़गांवा के बल्लभगढ़ में उन्होंने अपना किला बनाया। भरतपुर राज्य से संबंध अटूट रखने के लिए वहां के प्रमुख दरबारी, होडल के मुखिया की सुन्दरी कन्या से उन्होंने विवाह कर लिया।

बलराम सिंह के असाधारण साहस की एक रोमांचकारी किंवदन्ती क्षेत्र की ग्राम–गाथाओं में अब तक प्रचलित है। मुगल वजीर नजीबुद्दौला ने सन् १७६३ में शाहदरा के पास महाराजा सूरजमल की धोखे से हत्या करा दी। तब भरतपुर की महारानी के आग्रह पर उन्होंने नजीबुद्दौला से बदला चुकाने के लिए दिल्ली पर आक्रमण किया। नजीब हारते–भागते लालकिले में जा छिपा। बलराम सिंह सेना समेत लालकिले में आ डटे। लालकिले का दरवाजा लोहे की बड़ी नुकीली कीलों से जड़ा था। हाथियों

ने उस पर प्रहार करने के लिए आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। बलराम सिंह तब कीलों को ढक कर सामने खड़े हो गये और अपने सहायक जवाहर सिंह को उन्होंने हुक्म दिया –"हाथियों को आगे बढ़ाओ।" जवाहर सिंह परिणाम की कल्पना कर भय से सुन्न हो गया। बलराम सिंह ने तब गर्ज कर कहा – "जवाहर सिंह, कायर मत बनो। युद्ध के मैदान में जीना मरना कोई महत्त्व नहीं रखता।" जवाहर सिंह को हाथियों को हांकना पड़ा। दरवाजा टूटा और लाल किले पर बलराम सिंह की फौजों का कब्जा हो गया। नजीबुद्दौला और उसके सैकडों सैनिक मारे गये। इस तरह बलराम सिंह ने महाराजा सूरजमल की हत्या का बदला चुका लिया।

उन्हीं बलराम सिंह के वंशज नाहर सिंह थे। बल्लभगढ़ राज्य की कीर्ति पताका उनके समय में खूब लहराई। वे बड़े शौर्य के महान देशभक्त थे और पश्चिमी प्रदेशों के सन् १८५७ की राज्य क्रांति के अग्रदूतों में से एक थे। सन् १८५६ में गढ़ मुक्तेश्वर के कार्तिकी मेले में उन्होंने एक गुप्त बैठक बुलायी थी, जिसमें तांत्या टोपे, रिवाड़ी के राजा किशन गोपाल, मंगल पाण्डे और महाराजा ग्वालियर समेत अनेक देशभक्तों ने भाग लिया। कुछ ही दिनों बाद मेरठ छावनी में आज की पंजाब रेजिमेन्ट के पास स्थित शिव मन्दिर में, इन लोगों की दूसरी बैठक जुटी। जनश्रुति है कि उत्तर भारत की छावनियों में राजा नाहर सिंह ने ही उन रहस्यपूर्ण चपातियों का वितरण कराया था, जिसमें विद्रोह की तारीख और समय उल्लिखित थे। दुर्भाग्य से विद्रोह की तिथि और समय का ठीक–ठीक पालन नहीं हुआ। मंगल पाण्डे ने २९ मार्च सन् १८५७ को बैरकपुर छावनी में अपने कमांडर पर गोली दाग दी। आठ अप्रैल को वे फांसी पर लटका दिये गये। १० मई को मेरठ छावनी में विद्रोह की ज्वाला भड़की। उसके साथ ही अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुर शाह जफर के नाम पर दिल्ली के चारों ओर क्रान्ति की लपटें उठने लगीं। राजा नाहर सिंह ने गाजियाबाद के निकट हिन्डन के किनारे ब्रिटिश सेना को करारी मात दी। उनके अपराजेय शौर्य से अंग्रेजों ने उनके खिलाफ कुछ नीचतापूर्ण जाल बिछाया। उन्हें सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए बहादुर शाह जफर के नाम से एक जाली चिट्ठी भेजकर दिल्ली बुलाया गया। चिट्ठी पर विश्वास कर वे दिल्ली के लिए चल पड़े। निजामुद्दीन के निकट अंग्रेजों की सेना ने घात लगा कर उनको घेर लिया। राजा नाहर सिंह पर धोखाधड़ी तब प्रकट हुई। वे लड़ते–लड़ते व्यूह को तोड़ कर आगे बढ़े। दिल्ली दरवाजे के पास युद्ध में वे घायल हो गये। अंग्रेजों ने उन्हें ३ सितम्बर सन् १८५७ को बन्दी बना लिया। सैनिक अदालत में मुकदमे की कार्यवाही की खानापूर्ति कर उन्हें चांदनी चौक में फांसी पर लटका

दिया गया। उसी दिन दिल्ली कोतवाली के सामने अंग्रेजों ने, केवल आतंक फैलाने के लिए, सैकड़ों निरपराध देशभक्तों को सरेआम फांसी पर लटकाया। बहादुर शाह जफर किले से भागकर हुमायूं के मकबरे में जा छिपे थे। उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। अंग्रेजों ने उनके दो राजकुमारों का कत्ल किया और उन्हें देश निकाला देकर रंगून (बर्मा) की जेल में कैद कर दिया। राज्य क्रांति असफल हो गयी।

अंग्रेजों ने राजा नाहर सिंह के बल्लभगढ़ और तेवथिया परिवार पर अमानुषिक अत्याचार किया। बल्लभगढ़ में आज भी उसकी लोमहर्षक कहानियां सुनी जा सकती हैं। उन बर्बर अत्याचारों से बचने के लिए असहाय देशभक्त बल्लभगढ़ छोड़कर भागे। महारानी और राजकुमारियों को जंगल में भटकना पड़ा। तेवथिया परिवार बहुत बड़ा था। वे सभी दूर–दूर के गांवों में चले गये। इन्हीं में चौधरी चरण सिंह के पूर्वज थे।

चौधरी चरण सिंह के पितामह बादाम सिंह बुलन्दशहर जिले के भटौना गांव में आये। भटौना में शरणार्थियों की बड़ी भीड़ थी। धीरे–धीरे ये शरणार्थी वहां से पास–पड़ोस के ११७ गांवों में फैल गये। वे लोग आज भी भटौनिया कहलाते हैं। चौधरी बादाम सिंह हापुड़ तहसील के सियामी गांव में आये। उनकी पांच सन्ताने थीं। सबसे बड़े पुत्र का नाम चौधरी लखपत सिंह था और सबसे छोटे का चौधरी मीर सिंह। उन्नीसवीं सदी के अन्त में यह परिवार जीविका की तलाश में सियामी से नूरपुर गांव में आया। तब चौधरी मीर सिंह की उम्र अठारह साल थी। यहां कुचेसर राज्य की थोड़ी सी जमीन बटाई पर खेती करने के लिए मिल गयी। सिंचाई के लिए कुआं खोदा गया। बंजर जमीन में मड़ैयां छायीं गयीं, जिनमें चरण सिंह का जन्म हुआ। अपने स्वदेश प्रेम के गौरवपूर्ण अतीत की गरिमा में परिवार के बालक के जन्म पर खुशी से फूल उठना स्वाभाविक था।

जाट लोग इतिहास के आदिकाल से ही परम साहसिक और मेहनती रहे हैं। तेवथिया गोत्र के भटौनियों के बारे में तो यह मशहूर है कि जहां उन्हें बैलगाड़ी खड़ी करने भर को जमीन मिल जाय, वहीं वे खेती उपजा लेते हैं। जाट कभी हूण वंश से मिश्रित भले हो गये हों, मूल रूप से वे आर्य हैं। महाभारत युद्ध में उनकी कई उप–जातियों (गोत्रों) के भाग लेने का विवरण मिलता है। अधिकांश विद्वानों के मतानुसार वे वैदिक आर्यों के निकटतम प्रतिरूप हैं। वैदिक संस्कृति कृषि पर आधारित होने के कारण पाशुपतेय भी कहलाती है। जाट उतने ही कुशल कृषक रहे हैं जितने पौरुष वाले योद्धा। वे कमर में तलवार बांध कर खेती करते आये हैं। ये परम साहसिक लोग आज भी संसार के जिस अंचल की धरती को छू देते हैं, वही सोना उगलने लगती है। जाट सैनिकों की अद्‌भुत वीरता

के रोंगटे खड़े करने वाले बेमिसाल कारनामे कहीं भी सुने जा सकते हैं। पंजाबी जाटों के सिख राज्य के बारे में कौन नहीं जानता कि वह बड़ी प्रतिकूल परिस्थितियों में सतलज से अफगानिस्तान तक सपाट फैल गया था। सतलज के पूरब तक दिल्ली – आगरा क्षेत्र में भरतपुर के जाट राज्य का विवरण ऊपर आ ही चुका है।

जाटों का एक और स्वाभाविक गुण है– पंचायत का अगाध हो या प्रेम उनके गांव अपने में पूरे गणतंत्र होते थे। यह वेद–कालीन परम्परा थी। देश के राजा से मात्र मालगुजारी अदा करने का इन गांवों का सम्बन्ध रहता था। गांव के पांच बड़े–बूढ़े पंच–परमेश्वर के हाथ में गांव की हर समस्या को तौल कर निपटाने की तराजू होती थी। पंचायत का सरदार वंशगत नहीं, बल्कि योग्यता से निर्धारित होता था। जाटों का यह नैसर्गिक गुण आज भी अलक्षित नहीं।

चौधरी चरण सिंह के पिता चौधरी मीर सिंह में उपर्युक्त सभी गुण जन्मजात थे। नूरपुर की थोड़ी सी भूमि में कड़ी मेहनत और लगन से खेती अच्छी होने लगी। लेकिन भूमि बटाई की थी और बहुत कम थी। अतः परिवार के बढ़ने के साथ खेती योग्य भूमि की मांग भी बढ़ी। अन्य तेवथिया अथवा भटौनियों के साथ नयी जमीन ली गयी मेरठ नगर के बड़े जमींदार पत्थर वालों से, तहसील मेरठ के जानी खुर्द गांव में। पत्थर वालों के परिवार में ही सर सीताराम पैदा हुए थे, जो अपने संस्कृत के अगाध ज्ञान के कारण पंडित सीताराम कहलाते थे। जमीन परिवार के अगुआ के नाम खरीदी जाती थी। ईमानदारी से हर सदस्य को उसका हिस्सा मिल जाता था, कहीं न कपट न कोताही। जानी खुर्द की नयी जमीन चौधरी चरण सिंह के पिता के हिस्से में आयी। चौधरी साहब जब छः महीने के थे तब उनके पिता जानी खुर्द आ गये। वहां भी खेतों के बंजर में छप्पर पड़े, मड़ैयां बनीं। छप्परों के इस समूह का नाम तेवथिया परिवारों के तत्कालीन बुजुर्ग के नाम पर रखा गया भूपगढ़ी। आज भी वही नाम प्रचलित है।

चौधरी मीर सिंह पढ़े–लिखे नहीं थे किन्तु बड़ी प्रखर बुद्धि के थे। उनका सहज ज्ञान इतना अच्छा था कि पास–पड़ोस के गांवों के लोग अपने खेतों के ही नहीं, पारिवारिक झगड़े आदि के संबन्ध में बहुधा उन्हीं से मशविरा लेते थे। उनकी स्मरण शक्ति भी बड़ी तेज थी। वे मिनटों में बड़े–बड़े जोड़–घटाना लगा लेते थे और उंगलियों के पोरों से ही खेतों का रकबा और नम्बर तक सही–सही बता देते थे। उनके आसपास के लोग उनकी सहज बुद्धि का लोहा मानते थे। उनके न्यायप्रिय होने के कारण गांव वालों का उन पर बड़ा विश्वास था। उनके प्रभाव से गांव

का कोई ही मुकदमा अदालत जाता। जिला प्रशासन ने उन्हें मुखिया और लम्बरदार करार दे दिया। सभी लोग उन्हें आदर और सम्मान से मुखिया कहने व मानने लगे। जन समूह पर उनका यह असाधारण प्रभाव उनकी उम्र के अन्तिम समय तक रहा। वे ८० वर्ष की उम्र पाकर १९६० में दिवंगत हुए।

चौधरी चरण सिंह की माता बुलन्दशहर के चितसोना अलीपुर गांव की थीं। उनका नाम नेत्र कौर था। सब उन्हें आदरपूर्वक नेतो कहा करते थे। संयोग देखिये कि वे एक महान नेता की मां बनीं। वे साधारण किसान की पत्नी थीं। मगर थीं अत्यन्त संवेदनशील, सहिष्णु और धर्म–परायण। उन्हें स्वच्छता बहुत प्रिय थी। घर में, बाहर, किसी चीज वस्तु का बेतरतीब होना उन्हें बुरा लगता था। चौधरी चरण सिंह के व्यक्तित्व में समाये ये गुण उन्हें माता से मिले। उनकी याददाश्त, कुशाग्रता, दृढ़ता और प्रशासन की श्लाघ्य दक्षता उन्हें पिता से प्राप्त हुए। माता का सन् 1957 में पचहत्तर वर्ष की उम्र में स्वर्गवास हुआ।

चौधरी चरण सिंह के परिवार के काफिले की खेती के लिए गांव की यात्रा अभी पूरी नहीं हुई थी। भूपगढ़ी में परिवार के पास लगभग साढ़े दस एकड़ जमीन थी। अधिक जमीन की जरूरत पड़ी। गाजियाबाद तहसील के भदौला गांव में पत्थर वालों से ही जमीन खरीदी गयी। पारिवारिक बंटवारे में जानी खुर्द की जमीन चौधरी मीर सिंह को मिली। दूर के एक खानदानी से भूमि का तबादला कर वे भी १९२३ में भदौला आ गये।

अध्याय ३

होनहार बिरवान के

चौधरी चरण सिंह ने आंखें नूरपुर में खोलीं। लेकिन छः महीने की उम्र में ही वे मां–बाप के संग जानी खुर्द पहुंच गये। उनका शैशव जानी खुर्द के पास के भूपगढ़ी की मिट्टी में ही पला बढ़ा। यहीं की कीचड़ धूल में वे खेले। यहीं के खेतों की हरीतिमा और सरसों तथा फलों–फूलों की बासन्ती आभा से उनके नयन नाचे, यहीं की वायु ने उन्हें पाल–पोस कर शिशु से बालक बनाया। यहीं मां ने वृन्दावन के श्री कृष्ण महाभारत–युद्ध के वीरों और जाट सरदारों की उन्हें लोरियां सुनायी। यहीं तेवथिया वंश के अंग्रेजों के विरुद्ध सन् १८५७ की राज्य क्रान्ति में सर्वस्व समर्पण कर बलिदान हो जाने की कहानियां सुनायीं। उन वीर गाथाओं से शिशु चरण सिंह का मन कितना उल्लसित हुआ होगा। जानी खुर्द अथवा भुपगढ़ी के आसपास के खेतों, बागों, जलाशयों में धरती के लालों के करिश्मों को शिशु चरण सिंह ने देखा होगा। इन लालों का लोहा मानकर धरती सोना उगलती है। शिशु चरण सिंह के मन पर इसका अज्ञात रूप में प्रभाव पड़ा होगा। कोई अजब नहीं कि बाद में वह खेतों और किसानों की पेचीदा से पेचीदा गुत्थियों को बड़ी सुगमता से निपटा सका। वैसा देश भर में किसी दूसरे ने नहीं किया।

सात साल की उम्र में चरण सिंह को जानी गांव की प्रारम्भिक पाठशाला में भर्ती कराया गया। पढ़ने में वह तेज था, बहुत तेज। गणित में उसकी कुशाग्रता असाधारण थी। मास्टर के मुंह से सवाल पूरा नहीं हुआ कि बालक चरण सिंह के मुंह से सही जवाब निकल आया – बिना स्लेट पेंसिल के, बिना जोड़ घटाना लगाये। स्कूल के अध्यापक पण्डित हरवंश लाल ने होनहार बिरवान को बड़े स्नेह और यतन से संवारा सजाया। एक बार संगी साथियों के साथ स्कूल आते समय बीच के बाग जामुन खाने के लिए रुकने से स्कूल पहुंचने में देर हो गयी। पण्डित हरवंश लाल को खबर लगी। वे वहां आ पहुंचे। कुछ बच्चे पेड़ पर, कुछ नीचे थे। चरण सिंह भी नीचे था। पण्डित हरवंश लाल सबको स्कूल लाये। देरी करने के लिए सजा मिली। चरण सिंह को भी एक बेंत लगा। बेंत मार कर चरण सिंह से अधिक दुःखी पण्डित हरवंश लाल हुए। चरण सिंह ने फिर कभी

अनुशासन में भूल चूक नहीं की। 'ब' कक्षा पास करने के बाद ही जब सब–डिप्टी इन्सपेक्टर ने स्कूल का निरीक्षण किया तब चरण सिंह की तेज बुद्धि से प्रभावित होकर उससे दो महीने बाद पड़ोस के सिवाल गांव के प्राइमरी स्कूल में जाकर अगली कक्षा का भी इम्तहान देने को कहा। पण्डित हरवंश लाल फूले नहीं समाये। बालक चरण सिंह को उन्होंने सिवाल के स्कूल में जाकर अगली कक्षा का पाठ्यक्रम समझने–देखने को कहा।

सिवाल भूपगढ़ी से दो–ढाई मील दूर था। बीच में गंग नहर पड़ती थी। रास्ता ऊबड़–खाबड़, टेढ़ा–मेढ़ा, ऊंचे–नीचे डगरों से गुजरता था। नौ–दस वर्ष का बालक घोड़े पर सवार होकर अकेले आता जाता था। वही काफिले का शौर्य, अदम्य साहस और निर्भीकता। राहगीर उसे क्षण –पल को देखते रह जाते थे। सिवाल में दो–तीन महीने बाद उसने अगली कक्षा का इम्तहान पास कर लिया। सिवाल के स्कूल अध्यापक और विद्यार्थी बालक की विलक्षण प्रतिभा पर दंग रह गये।

इम्तहान में एक घटना भी घटी। जिसका चरण सिंह पर अनायास ही जीवन भर के लिए प्रभाव पड़ा। पास–पड़ोस का एक मुसलमान बालक भी सिवाल में उसी कक्षा का इम्तहान दे रहा था। उसने चरण सिंह से अनुरोध किया कि परीक्षा देते समय वह अपनी स्लेट ऐसी आड़ी रखे कि वह आसानी से नकल कर सके। चरण सिंह ने नकल करायी। मुसलमान बालक ने चरण सिंह को एक छोटा कुतुबनुमा (कम्पस) भेंट किया। घर पर पिता ने कम्पस के बारे में पूछा। चरण सिंह ने नकल कराने की बात बतायी। पिता ने पूरी बात सुनकर कहा कि ऐसा करना गलत हुआ। गलत काम कभी नहीं करना चाहिए और न ही इसके बदले किसी हालत में कोई उपहार लेना चाहिए। चरण सिंह के मन में पिता की सीख जीवन भर के लिए बैठ गयी।

भुपगढ़ी के बड़े–बूढ़ों ने अगली कक्षा का इम्तहान पास कर लेने के लिए चरण सिंह को बहुत आशीर्वाद दिया। बड़े–बूढ़ों का आशीर्वाद फलता है, फला भी। भूपगढ़ी से जानी खुर्द के स्कूल के लिए सबेरे, दोपहर और शाम को पैदल आना–जाना पड़ता था। जानी खुर्द भूपगढ़ी से दो–तीन फरलांग ही है। दूसरे लड़कों का संग भी रहता था। मगर बालक चरण सिंह सबसे कुछ अलग–थलग पाया जाता था। वह जैसे किन्हीं अनजान भावों में खोया रहता हो। उसकी भाव–प्रवण आंखों की पलकें अनदेखे सपनों के बोझ से अर्धनिमीलित रहती थीं। तब भी उनकी गरिमा वही है। उसका मन खेतों की हरियाली और सोने सी उगी फसलों के संग हिलोरे लेता रहता था। मन खेतों की हरीतिमा से

आज भी भरा है। वह सीधा–साधा और सरल स्वभाव का तो था ही। मां से मिली बचपन की यह शुचिता और अन्तर्मुखी प्रवृत्ति, पिता से प्राप्त कुशाग्र बुद्धि और परदुःख कातरता आज उसके व्यक्तित्व के मूल आकर्षण हैं। जब वह अस्सी की आयु पार कर चुके थे, तब भी उनके बचपन की रूप–गरिमा उनके स्वरूप में साफ झलकती थे। अन्याय के विरुद्ध भी बालक की आस्था घर में ही जागी। घर में माता–पिता के बीच खटपट होती ही रहती है। पिता चौधरी मीर सिंह कामकाजी और व्यस्त आदमी थे। वह लोगों से प्रायः घिरे रहते थे। बे आवेश में कभी–कभी झल्ला जाते थे, पत्नी को भी डांट–डपट देते थे। चरण सिंह को यह बहुत बुरा लगता था। सेवा के जीवन में शान्ति के संग तनाव भी कम नहीं होता। फिर दम भर की मां बाप की खटपट में वह कर भी क्या सकता था? लेकिन पिता के अन्याय को वह समझता था, उससे दुःखी होता था। बाद में चौधरी चरण सिंह को जीवन भर अन्याय और अत्याचार से लड़ना पड़ा। वह लड़ा भी निराली शान से। उसने कभी धीरज नहीं खोया, कभी लड़ने वाले शख्स से मन में कीना नहीं रखा, कभी विरोधी को नीचे घसीट कर स्वयं ऊपर जाने की कोशिश नहीं की। उसके व्यक्तित्व में अनवरत संघर्ष की छाप दृढ़ता और अथक निष्ठा के रूप में उभरी है। चौधरी चरण सिंह ने एक बार भरे मन से कहा था, "मुझे जीवन भर अन्याय के खिलाफ लड़ना पड़ा, अपनों से भी। मेरे मस्तिष्क की तरह मेरा शरीर भी उतना ही सख्त है कि मैं तमाम कष्ट सह सका।"

उसकी इच्छा–शक्ति बचपन से ही दृढ़ थी। एक बार संगी साथियों के संग उसने जानी खुर्द में तब बहुत प्रचलित एक 'लालटेन' सिगरेट खरीदी। खेतिहर परिवारों में विशेषकर जाटों में, हुक्के का चलन जोरों से था यद्यपि पिता चौधरी मीर सिंह हुक्का छूते नहीं थे। उस बारे में भी परिवार वर्ग में एक किस्सा प्रचलित है। वह यह है कि एक बार चौधरी मीर सिंह को उनके पिता ने हुक्का भर लाने को कहा। वे जल्दी में कोयलों और सींक पात की आग से चिलम भर लाये। चिलम कन्डे की आग से जगती है। पिता ने आग देखकर गुस्से से एक चपत लगा दिया। चौधरी मीर सिंह ने उसके बाद कभी हुक्का या चिलम छुआ तक नहीं। बालक चरण सिंह ने भी 'लालटेन' सिगरेट को जला कर एक दो कश लिया। उसका सिर चकराया और वह जोरों से खांसने लगा। सिगरेट उसने खीझ कर फेंक दी। उस दिन के बाद उसने फिर कभी सिगरेट नहीं छुई, न ही किसी दूसरे प्रकार का धूम्रपान किया।

मांसाहार के बारे में भी ऐसा ही हुआ। परिवार निरामिष था। दूर के

रिश्ते के एक चाचा मांस खाते थे। उनके कहने पर बालक चरण सिंह ने चाचा के संग एक बार मांस खाया। वह अरुचिकर भी नहीं लगा। उन्हीं दिनों चलते–फिरते उसने एक आर्यसमाजी भजन सुन लिया। उस भजन का भावार्थ था कि मांस पेट को कब्रिस्तान बना देता है। भाव मन में जम गया। चरण सिंह ने फिर कभी मांस नहीं खाया।

अपने पिता को हमेशा लोगों से घिरे रहते देख कर बचपन से ही बालक चरण सिंह के मन में लोगों के बीच रहने की उत्कट इच्छा जागी। उसके सार्वजनिक जीवन में लोग सदा उसे घेरे रहते थे। तब भी जब वे इक्यासी वर्ष के थे, उनके घर पर मुलाकातियों का तांता लगा रहता था। हिन्दुस्तान के हर राज्य के हर श्रेणी के लोग उनसे अपनी समस्याओं को लेकर मिलने आते थे। कभी–कभी वे जरूर कहते थे कि लोगों से भेंट करता–करता मैं थक जाता हूं। बालक के मन में एक दूसरी जिज्ञासा ने भी उन्हीं दिनों असमंजस पैदा किया। वह समझ नहीं पाता था कि आदमी मरता क्यों है? उसे बताया गया कि वह सृष्टि का क्रम है। तब उसके मन में आया कि वह मर कर भी अमर बने। महत जन समय की रेती पर अपने चरण चिन्ह छोड़ जाते हैं। चौधरी चरण सिंह का सारा ही जीवन देश के बहुसंख्यक गरीबों, पीड़ितों और शोषितों के लिए समर्पित रहा है, बहुजन हिताय रहा। इतिहास और देश काल क्या कभी उनको भूल पायेगा?

जानी खुर्द की प्राइमरी स्कूल का आखिरी साल आ पहुंचा। बालक चरण सिंह ने अव्वल अंकों से परीक्षा पास की। वह जन्मजात सादगी और ऊंचे विचार के साथ पिता से अन्याय और अत्याचार के प्रतिकार की दृढ़ता, अद्भुत याददाश्त के साथ–साथ माता से स्वच्छता और अनुशासन की क्षमता तथा सम्वेदनशील और सहिष्णु हृदय लेकर आगे पढ़ने के लिए मेरठ आया। परिवार अभी अभावग्रस्त ही था। गांवों में तब पढ़ाई पर इतना जोर भी नहीं था। लेकिन पिता ही नहीं, ताऊ लखपति सिंह भी ऐसे होनहार बालक की पढ़ाई रोकना नहीं चाहते थे। उन्होंने उसके आगे पढ़ने का बानक बनाया।

तब राजकीय स्कूलों की पढ़ाई और अनुशासन मशहूर थे। चरण सिंह जिला राजकीय स्कूल में दाखिले के लिए मेरठ आया। बोर्डिंग का खर्च चलाने की क्षमता अभिभावकों में थी नहीं। इसलिए बालक के पढ़ने व रहने का इन्तजाम मेरठ में 'मॉरल ट्रेनिंग स्कूल' नामक एक प्राइवेट संस्थान में किया गया। इसी को शुभ संयोग कहते हैं। बालक चरण सिंह को विद्या अर्जन ही नहीं करना था, उससे कहीं बढ़ कर विवेक, नैतिकता और चरित्र को ऊंचा करना था। मॉरल ट्रेनिंग स्कूल का यही उद्देश्य था।

मेरठ शहर में बुढ़ाना दरवाजे से तहसील को जो सड़क जाती है, उस पर बायीं ओर के पहले मकान के ऊपर के तल्ले पर यह संस्था स्थापित थी। एक सुयोग्य तथा अनुभवी अध्यापक, मास्टर शादी राम, उसे चलाते थे। वह भी गुड़गांवा जिले के रहने वाले थे। जहां से चौधरी चरण सिंह के पूर्वज, १८५७ की राज्य क्रान्ति के बाद उजड़ कर मेरठ आये थे। इस संस्थान में सादगी, नैतिकता, श्रम तथा ऊंचे विचारों का वातावरण था। बालक चरण सिंह में इन सद्‌गुणों के अंकुर जम ही चुके थे। 'मॉरल स्कूल' के आदर्श वातावरण में उसका किशोर मन खिल उठा। अनुकूल वातावरण से उसकी प्रतिभा तेजी से पनपी। वह बड़ों का स्नेह – भाजन बना और सहपाठियों का आदर्श। एक थे पंडित हरनाम सिंह, कोर्ट ऑफ वार्डस, मुरादाबाद में मैनेजर। जब मेरठ आते थे, तब मास्टर शादी राम वाले मकान में ठहरते थे। वह मकान भी कोर्ट ऑफ वार्डस के इन्तजाम में था। पंडित हरनाम सिंह कुछ ज्योतिष, व हस्तरेखा का ज्ञान रखते थे। बालक चरण सिंह की अद्‌भुत क्षमता से वे भी प्रभावित हुए। उन्होंने उसका हाथ देखकर कहा – "बेटा, तू राजा होगा।" मास्टर शादी राम गद्‌गद्‌ हो उठे। बालक तेज और सुशील तो था ही, वह बड़े–बूढ़ों की सेवा टहल भी कर दिया करता था। मास्टर शादी राम के ताऊ की आंखों की ज्योति मंद थी। बालक उन्हें खाना खिलाता था। उनकी चिलम भी नियम पूर्वक भर दिया करता था। बूढ़े ताऊ की अवस्था अस्सी साल से ऊपर की थी। उन्होंने और मास्टर शादीराम ने चरण सिंह को शत् शत् आशीर्वाद दिया कि वह ऊंचाई के शिखर पर पहुंचे – बृथा न होहि देव ऋषि वाणी !

'मॉरल ट्रेनिंग स्कूल' में एक साल पढ़ने के बाद सन् १९१४ में राजकीय हाई स्कूल की छठवीं कक्षा में उसका दाखिला हुआ। वहां भी चरण सिंह खूब चमका। वह कक्षा के अव्वल विद्यार्थियों में गिना जाने लगा। उसे हमेशा प्रथम श्रेणी के अंक मिलते थे। सभी अध्यापक उससे बहुत प्रसन्न रहते थे। सबको उससे बड़ी आशाएं थीं। बालक चरण सिंह अब किशोर हो रहा था। आठवीं के बाद नवीं कक्षा में उसने विज्ञान का वैकल्पिक विषय लिया। उन दिनों अच्छे विद्यार्थियों में से गिने–चुने ही विज्ञान विषय में प्रवेश पाते थे। विज्ञान की पढ़ाई कठिन थी। इसलिए चरण सिंह पढ़ाई में अपना सारा समय लगाने के लिए नवीं कक्षा में राजकीय स्कूल के छात्रावास में आ गया। अभिभावकों ने खर्च जुटाया। पढ़ने के साथ–साथ बालक चरण सिंह खेल–कूद में भी पीछे नहीं रहता था हाकी में वह जिला स्कूल की दूसरी टीम में चुन लिया गया। वह विज्ञान का विद्यार्थी था, लेकिन साहित्यिक और आर्थिक विषयों में उसकी

बड़ी दिलचस्पी थी, उसकी अंग्रेजी बहुत अच्छी थी। अंग्रेजी में लिखे साहित्यिक और आर्थिक विषयों के लेखों की अध्यापक बड़ी सराहना करते थे। मेरठ के सुप्रसिद्ध वकील श्री शंकर दयाल माथुर चरण सिंह के स्कूल की कक्षाओं में सहपाठी थे। बातचीत के प्रसंग में उन्होंने कहा था कि स्कूल के दिनों में भी चरण सिंह अत्यन्त सादा, किन्तु गम्भीर विचारों में खोया हुआ विद्यार्थी लगता था। वह साधारण किसानों के लड़कों की तरह गुमसुम सा रहता था, फिर भी उसमें ऐसा आकर्षण था कि सभी उससे मेलजोल बढ़ाना चाहते थे। वह जल्दी किसी का मित्र बन नहीं पाता था। वह अपने में ही मग्न रहता था – एकांत सेवी था।

मेरठ दिल्ली जितना ही प्राचीन नगर है। दिल्ली के पास भी हैं। महाभारत काल का हस्तिनापुर यहीं था। राजा परीक्षित का गढ़ भी यही था। जैन तीर्थकरों के प्राचीन मन्दिर भी हस्तिनापुर के पास हैं। गंगा पर देश–प्रसिद्ध गढ़मुक्तेश्वर का तीर्थ भी इसी जिले में पड़ता है। उसी गढ़ के कार्तिकी मेले में सन् १८५६ में राजा नाहर सिंह ने क्रान्ति के सेनानियों की गुप्त बैठक बुलायी थी। मेरठ पौराणिक मयराष्ट्र का। भाग था। मुसलमान शासन में भी दिल्ली और मेरठ का घनिष्ठ सम्बन्ध था। यहीं की बोली से अमीर खुसरो की हिन्दी विकसित हुई, जिसे आज खड़ी बोली या हिन्दी कहते हैं। उर्दू इसी हिन्दी की एक शैली है। विदेशी मुसलमान शासकों का मेरठवासी कमर कसकर विरोध भी करते रहे। लेकिन जब विदेशी शासक यहीं के हो गये, स्वदेशी बन गये, तब से यहां की मौलिक संस्कृति पर शासकों के साथ आयी विदेशी संस्कृति का भी प्रभाव पड़ा। वह आज भी उस क्षेत्र के गांव–गांव में हिन्दू–मुसलमानों के बीच देखी जा सकती है। ब्रिटिश सत्ता की जड़ उखाड़ने के लिए सन् १८५७ की राज्य क्रान्ति की लपटें यहीं से भड़कीं। आज भी मेरठ से दिल्ली जाने वाली पुरानी सड़क पर चलने में इतिहास के विद्यार्थियों को ऐसा लगता है कि हिन्दू–मुसलमान फौजियों की टोलियां बड़े जोश और सरगर्मी से भुगल सम्राट बहादुर शाह जफर को स्वतंत्र कराने के लिए दिल्ली की ओर बढ़ रही हैं। उनके पदचापों की प्रतिध्वनि मौन स्वरों में आज भी साफ–साफ सुनी जा सकती है। हिन्डन के पुल के पास का वह मैदान अभी सुरक्षित हैं, जहां मेरठ के फौजियों की दिल्ली की अंग्रेजी फौजों से पहली मुठभेड़ हुई थी। अंग्रेजों ने वहां बाद में स्मारक बनाया। वह मैदान अब पुराना पड़ता जा रहा है। मगर वह आज भी हिन्दू–मुसलमानों के एकजुट होकर अंग्रेजों को मार भगाने के प्रयत्नों का सन्देश देता है। मेरठ की ही सरधना की बेगम समरू थी, जिसने दिल्ली के विजेता जनरल लेक के छक्के छुड़ा दिये थे। सन् सत्तावन की क्रान्ति में विजय पाकर

अंग्रेजों ने इस क्षेत्र को सामरिक महत्त्व का मानते हुए यहां अंग्रेजी फौजों की बड़ी छावनी बसायी। कालक्रम से उनकी हिन्दुस्तानी फौजों की भर्ती और सिखलाई भी यहां होने लगी। यहां के जाट, गूजर, राजपूत, भारी संख्या में फौज में भर्ती हुए। चौधरी साहब के निकट के दो सगे ताऊ सन् १८९९–१९०२ के दक्षिण अफ्रीका के 'बोअर' युद्ध में लड़े थे। उनके भाई भी फौज में थे। बाद में फौज छोड़कर कांग्रेस में आये। कांग्रेस में मेरठ अंचल के ग्रामीण क्षेत्रों में उन्होंने नुमाया कायम किया। बेगम समरू के सम्पर्क के कुछ फ्रांसीसी परिवार मेरठ में बस गये थे। जमींदारियां भी खरीद ली थीं। मेरठ की, दिल्ली से छोटा होते हुए भी, सर्वदेशीय संस्कृति रही है। उस मेरठ ने अंग्रेजों की फौजों के विरुद्ध युद्ध के साथ–साथ कांग्रेस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। हिन्दुस्तान में कहीं भी देश की आजादी के लिए जो कुछ होता, उसकी लहर वहां जरूर फैलती। चौधरी साहब ने एक बार जब वे उत्तर प्रदेश कांग्रेसी शासन में मन्त्री थे, अपने दौरे में मंगल पाण्डे (1857 के विद्रोही सेनानी) की यादगार में निर्मित मंगल पाण्डेय बाजार को दिखाते हुए कहा था कि मेरठ ने आजादी की हर लड़ाई में पथ–प्रदर्शन किया। मैंने विनोद भाव से कहा था– "हां सर, लेकिन हमेशा पूरब के किसी आदमी को इसके लिए आना पड़ा।" अमर सेनानी मंगल पाण्डे गाजीपुर जिले में तब शामिल बलिया अंचल के रहने वाले थे। चौधरी साहब परिहास पर विनोद भाव से चुप रह गये थे।

किशोर चरण सिंह पर मेरठ की संस्कृति तथा वहां के जन आन्दोलनों का असर पड़ना स्वाभाविक था। बंग–भंग के आन्दोलन में स्वदेशी वस्त्रों की मेरठ में भी सरगर्मी रही। सन् १९१४ में पहला विश्वयुद्ध छिड़ गया। हिन्दुस्तान का जनमानस तब भी ब्रिटिश हुकूमत का विरोधी था। लार्ड मिन्टो की हिन्दू–मुसलमानों की पृथकतावादी नीति से सब चिढ़े थे। हिन्दू मुसलमानों में सदा के लिए चौड़ी खाई खोदने की वह प्रभावकारी नीति थी। हिन्दुस्तान में स्वायत्ता की मांग भी बढ़ने लगी थी। तिलक महाराज ने होम रूल लीग स्थापित किया था, जिसकी बाद में श्रीमती एनी बेसेन्ट अध्यक्ष बनीं। होम रूल का आन्दोलन शिक्षित वर्गों में तेजी से फैल रहा था महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत आ चुके थे। १९१७ में रूस की राज्य क्रान्ति ने विश्व की साम्राज्यशाही ताकतों को चकित कर दिया था। हिन्दुस्तान में भी ब्रिटेन के विरुद्ध क्रान्तिकारी आन्दोलन ने जोर पकड़ा, मजदूरों ने बम्बई में बड़ी व्यापक हड़ताल की। देश की यह पहली बड़ी हड़ताल थी। अंग्रेजी साम्राज्य घबराया। रूस की राज्य क्रांति के एक सप्ताह के भीतर ही उसने मान्टेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधारों की घोषणा कर दी। सुधारों की घोषणा जनमत को भ्रमित करने के लिए थी। इसमें कतिपय

महत्त्वहीन विभागों को नाममात्र के लिए हिन्दुस्तानियों को दिया गया था। उसके साथ–साथ ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों ने हिन्दुस्तान में स्वतन्त्रता की सरगर्मी को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए रौलट ऐक्ट लागू किया। महात्मा जी तब तक ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत ही भारतीय स्वायत्तता का सपना पाल रहे थे। उन्होंने क्षुब्ध होकर ऐक्ट के विरोध में आम हड़ताल का आह्वान किया। हड़ताल देश रही। अंग्रेजी सरकार औरंगजेब की नीति पर चल रही थी। पर चांदनी चौक, दिल्ली में गोलियों की अमानुषिक वर्षा की। हुए। उनके खून के कतरे चिनगारी बन समूचे देश में फैले। दिल्ली काण्ड के हफ्ते भर बाद ही जलियांवाला बाग, अमृतसर, में डायर ने चारों ओर का निकलने का रास्ता बन्द कर शान्त सभा की निहत्थी भीड़ पर मशीनगन की गोलियां बरसायीं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार दस मिनट की गोलाबारी में ३७९ लोग मरे, और १२०० बुरी तरह घायल हुए। वास्तव में मरने वालों और घायलों की संख्या कहीं अधिक थी। उनमें निरीह औरतें, बच्चे और बूढ़े सभी थे। देश अंग्रेजों के बर्बर जुल्म से कांप उठा। इन काण्डों का किशोर चरण सिंह के मन पर भी भारी असर पड़ा।

जिन दिनों उपरोक्त गोली काण्ड हुए, उन्ही दिनों हाई स्कूल की परीक्षा चल रही थी। चरण सिंह ने परीक्षा दी, उसमें विशेष योग्यता से वह उत्तीर्ण भी हुआ, लेकिन देश की गुलामी पर उसका कलेजा जल–जल दहने लगा। उसने राष्ट्रीय साहित्य पढ़ना शुरू किया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत–भारती' को उसने उन्हीं दिनों पढ़ा। 'भारत–भारती' का उसके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय नेताओं, लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी के कार्यकलापों और आदर्शों से वह अखबारों द्वारा परिचित रहता ही था। लोकमान्य तिलक के "स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" से वह बेहद प्रभावित था। जो अंग्रेजी कम्पनी व्यापार करने आयी थी हमारी फूट का फायदा उठा अपनी धोखाधड़ी से यहां की शासक बन बैठी। एक कम्पनी ने हमें गुलाम बना लिया। इससे अंग्रेज शासन के खिलाफ चरण सिंह का रग–रग अंगार बनने लगा। देश काल की इन्ही परिस्थितियों में स्वदेश प्रेम की नई तंरगे और तराने लिए वह गांव लौटा। स्कूल के दुबारा कभी न लौट कर आने वाले दिन छूटे। अब आगे की दिशा की ओर दृष्टि थी। रास्ता साफ दिखलाई पड़ रहा था, परन्तु बायें–दायें झाड़–झंकार भी दिखाई पड़ रहे थे।

अध्याय ४

कालेज की शिक्षा और विवाह

अभिभावकों ने ऐसे प्रतिभाशाली विद्यार्थी को आगे पढ़ाने का निर्णय लिया। आगे कहां पढ़ाया जाय, यह सवाल उठा। मेरठ में भी कालेज था। उन दिनों उत्तर प्रदेश में आगरा और इलाहाबाद के कालेजों की पढ़ाई की अच्छी ख्याति थी। दोनों जगह अंग्रेज प्रिन्सिपल और सुयोग्य अंग्रेज अध्यापक थे। आगरा घर से करीब था। इसलिए युवक चरण सिंह आगरा आया। वहां सन् १९१९ में आगरा कालेज में एफ० एस–सी० (विज्ञान) के पहले साल में नाम लिखाया।

आगरा कालेज के छात्रावास में भी उसने दाखिला लिया। आर्थिक स्थिति अच्छी थी नहीं। हिम्मते मर्दा मददे खुदा। पिता और ताऊ ने खर्च का बीड़ा उठाया। साथ ही मदद की मेरठ के एक उदार महानुभाव ने। चौधरी चरण सिंह उनके उल्लेख से आज भी गर्व से भर आते हैं। वह थे मेरठ के सुविख्यात समाजसेवक स्वर्गीय डाक्टर भूपाल सिंह। वह श्रेष्ठ कोटि के डाक्टर थे। उनकी डाक्टरी खूब चलती थी। वह प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देते थे। कितनों की मदद करते थे। उन्होंने कालेज की पढ़ाई के लिए युवक चरण सिंह को १० रुपये महीना वजीफा देना स्वीकार किया। वजीफे की साल भर की रकम उन्होंने एक मुश्त अग्रिम दे दी। आगरा कालेज और उसके छात्रावास का खर्च साधारण नहीं था। लेकिन जहां गरीबी ही जीवन का प्रकार बनने वाली थी, वहां मुट्ठी संभाल कर काम चल ही जाता। युवक चरण सिंह को अपनी गरीबी पर कभी लाज नहीं लगी। देश के असंख्य बच्चे तब भी और आज भी जब काले धन की चारों ओर भरमार है, भीषण गरीबी की चपेट में झुलस रहे हैं। चरण सिंह में साहस था, परिस्थितियों से जूझने की क्षमता थी। उनका सिद्धान्त था कि गरीब देशवासियों के बीच अमीरों का जीवन बिताना चोरों की वृत्ति है। यह उद्देश्य उसकी मन की आंखों में तब भी साफ था। उसे उसी लक्ष्य की ओर बढ़ना था।

वह विज्ञान का विद्यार्थी था। विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए सामान्य अंग्रेजी ही कोर्स में शामिल थी। अंग्रेजी साहित्य, विशेषकर अंग्रेजी कविता से, चरण सिंह को बहुत प्रेम था। गोल्डस्मिथ आदि की कविताओं के कुछ

छन्द उन्हें बाद तक भी कंठस्थ रहे जिनको वह आह्लाद से सुना सकते थे। ऐसी कविताएं उन्हें तब भी और आज भी अनुप्रेरित करती थी। चरण सिंह स्वयं उजड़े वंश वृक्ष के थे, गांवों की दुर्दान्त गरीबी में पले बढ़े थे, उजड़े लोगों से उनका वास्ता था। वह गरीबी विषयक साहित्य का प्रेमी बना। यहीं उसने इटली के जोसेफ मैजिनी और विश्वविख्यात दूसरे क्रान्तिकारियों तथा समाज सुधारकों का जीवन चरित्र पढ़ा। फ्रांसीसी और रूसी साहित्य से अनुप्रेरित अंग्रेजी साहित्य में ऐसी बहुत किताबें थीं। यहीं से उसके आर्थिक तथा राजनीतिक चिन्तन की प्रेरणा शुरू होती है। कालेज के पुस्तकालय में वह उनमें रमा रहता था। अंग्रेजी के अध्यापक उसके अंग्रेजी लेखों की सराहना करते थे। अंग्रेजी में उसे अव्वल अंक मिलते थे।

एफ० एस–सी० पास करते ही वह गांधी की चपेट में आ पड़ा। महात्मा जी ने सन् १९२१ के खिलाफत तथा असहयोग आन्दोलन में अंग्रेजी पद्धति के स्कूल–कालेजों के बहिष्कार का आह्वान किया। चरण सिंह उस आह्वान पर कालेज की पढ़ाई छोड़ने को तैयार हो गया। परन्तु भविष्यद्रष्टा सहृद् डाक्टर भूपाल सिंह ने उसे कालेज नहीं छोड़ने दिया। मेरठ के प्रभावशाली कांग्रेसी पंडित प्यारे लाल शर्मा, जो बाद में उत्तर प्रदेश के शिक्षा मंत्री हुए, डाक्टर भूपाल सिंह के धनिष्ठ मित्र थे। उन्होंने भी समझाया कि पढ़–लिख कर और योग्य बन कर ही सार्थक देशसेवा की जा सकती है। परिवार के बुर्जुगों ने भी पढ़ाई न छोड़ने के लिए जोर दिया। उसकी अन्तर्प्रवृत्ति ने भी प्रेरणा दी। पढ़ाई नहीं छूटी। बी०एससी० पढ़ने के लिए युवक चरण सिंह आगरा कालेज लौट आया। देश के लिए, हमारे प्रदेश के लिए, डाक्टर भूपाल सिंह और पंडित प्यारे लाल शर्मा ने कितना बड़ा काम किया। डाक्टर भूपाल सिंह ने बी० एससी० में दस रुपये का वजीफा बीस रुपये महीना कर दिया।

बी० एससी० के दूसरे साल में चरण सिंह ने रुड़की के इंजीनियरिंग कालेज में प्रवेश पाने का इम्तहान दिया। तीस लड़के चुने जाने थे। वह परीक्षा में उन्तीसवें नम्बर पर आया। ड्राइंग में पचास प्रतिशत अंक पाना जरूरी था। ड्राइंग की उसने खास तैयारी नहीं की थी। अतः उसके स्थान पर चालीसवें नम्बर वाला विद्यार्थी गया। जीवन की इस पहली असफलता से, साधारण ही सही, युवक चरण सिंह की अर्न्तमुखी प्रवृत्ति तथा मनन – शक्ति को और अधिक बल मिला। उसकी हर विषय की छोटी से छोटी बात की अवहेलना न कर उसके तह तक सांगोपांग पहुंचने की प्रवृत्ति बनी। चौधरी चरण सिंह आज भी जिस विषय पर लिखते या बोलते हैं, उसका गहराई से पूरा–पूरा विश्लेषण करते हैं, कोई भी, छोटा से छोटा

पहलू छूटता नहीं। तद्विषयक आंकड़े उनकी उंगलियों पर सही–सही उभर आते हैं। जड़ की उन जैसी पकड़ देश के इने–गिने बौद्धिक विशेषज्ञों में भी कम होती है। उनकी यह शुभ प्रभावकारी प्रवृत्ति विद्यार्थी जीवन में ही उभरी। वह अध्ययनशील था, मनन करता था और तद्विषयक विचारों में खोया रहता था।

आगरा का ऐतिहासिक नगर उस पर प्रभाव न डालता यह तो सम्भव ही नहीं था। ताजमहल – धरती के शुभ सरोवर में सफेद कमल सा खिले, प्रेम की इस अमर निशानी को देख कर उसका मन जाने किन–किन कल्पनाओं से भर आया होगा। उसने फतेहपुर सीकरी को देखा होगा। जहां हिन्दू–मुस्लिम एकता का कीर्तिस्तम्भ, महारानी जोधा बाई का महल और पूजा गृह, आज भी हिन्दू–मुस्लिम एकता का मौन जयघोष करता है। डोले में लाकर भी अकबर ने जोधा बाई का धर्म अक्षुण्ण रखा। भरतपुर के महाराजा सूरजमल और उनके पूर्ववर्ती सरदारों, राजाओं के शौर्य की क्रीड़ास्थली को देखकर उसका जातीय पौरुष उफन आया होगा। अपने गोत्र के पुरुषों के वल्लभगढ़ किले की सरगर्मियां भी उसे बेहद याद आयी होंगी। राजा नाहर सिंह के उत्सर्ग को तो वह कभी भी अपनी आंखों से ओझल नहीं कर पाया होगा। आगरा की शिल्पकारी व घरेलू उद्योग–धन्धे अपनी मिसाल आप हैं। तरुण चरण सिंह के मन पर अंग्रेजों के आने के पहले की हिन्दुस्तान की ऐतिहासिक शिल्पकारी की याद आयी होगी, जिसकी सारी दुनिया में कहीं बराबरी नहीं थी और जिसे अंग्रेजों की कम्पनी ने पहले यूरोप के बाजारों में निर्यात कर धन कमाया और फिर शक्ति बढ़ जाने पर अपने स्वार्थ के लिए विनष्ट कर दिया। चरण सिंह ने गांवों की बेरोजगारी और गरीबी दूर करने के लिए कृषि उत्पादन बढ़ाने के साथ–साथ घरेलू उद्योग धन्धों को भी बढ़ावा देने की नीति का अपने जीवन भर प्रतिपादन किया है। यही महात्मा जी चाहते थे। उसे अपनी इस नीति के लिए जीवन भर संघर्ष करना पड़ा है। उस संघर्ष में उसे व्यक्तिगत रूप में नुकसान भी कम नहीं उठाना पड़ा। थक कर भी वह अपराजेय सा आज भी उन सिद्धान्तों का डंका पीट रहा है। उसकी नयी पुस्तक 'भारत की भयावह आर्थिक स्थिति – उसके कारण और निदान' इसका प्रमाण है। सैंतीस सालों में जो गरीबी अति आधुनिकतम पूंजीपरक उद्योगों से दूर नहीं हो पायी, वह कृषि उत्पादन की बढ़ोत्तरी और श्रमपरक लघु तथा घरेलू उद्योगों से जल्दी से जल्दी दूर हो सकती है– यही उसकी पुस्तक का प्रतिपाद्य है। उसका हिन्दू–मुस्लिम एकता का अनवरत प्रयत्न मेरठ के कारण ही नहीं माना जाएगा, आगरा की संस्कृति का भी उसमें बड़ा हाथ है।

आगरा कालेज के अन्तिम वर्षों में उसने संयुक्त प्रदेश की काउन्सिल

के चुनावों की सरगर्मी को देखा होगा। मांन्टेगू चेम्सफोर्ड सुधारों ने वोटरों का क्षेत्र विस्तृत कर दिया था। लेकिन तब बड़े जमींदार और सामन्तों का ही बोलबाला था। इससे एक कुशल और कर्मठ किसान के बेटे की जो प्रतिक्रिया हुई होगी उसे अनुमान ही किया जा सकता है।

स्वदेश के लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने की धुन में उसने बी०एससी० के बाद एम०एससी० में इतिहास पढ़ा। पढ़ना वह चाहता था अर्थशास्त्र। लखनऊ विश्वविद्यालय में तब अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान डॉ० राधा कमल मुखर्जी अर्थशास्त्र के विभागाध्यक्ष थे। वह एम० ए० में प्रवेश लेने के लिए लखनऊ गया। वहां लखनऊ के स्नातकों को ही जगह मिलनी मुश्किल थी। अतः चौधरी चरण सिंह को आगरा लौटना पड़ा। उसने एम० ए० में इतिहास का विषय ही लिया। इतिहास से उसके पूर्वज जुड़े थे, उसे स्वयं इतिहास बनाना था, इसलिए इतिहास का अध्ययन उसके लिए जरूरी था।

राष्ट्रीय प्रेम से भी उसका ह्रदय लबालब भरा था। वह कालेज में महात्मा गांधी के 'यंग इण्डिया' का नियमित पाठक था। 'यंग इण्डिया' में उन्हीं दिनों गांधी जी ने छुआछूत मिटाने पर एक विचारोत्तेजक अग्रलेख निकाला। कालेज के विद्यार्थियों में उस लेख पर घोर विवाद हुआ। एक विद्यार्थी ने चरण सिंह से चुनौती के स्वर में भंगी का छुआ खाने को कहा। चरण सिंह ने भंगी से खाना बनवा कर उसे बड़े प्रेम से खाया। इसके लिए कई दिनों तक छात्रावास की रसोई के बर्तन में उसे खाना नहीं परसा गया, लेकिन साथी विद्यार्थी उसका लोहा मान गये।

एम० ए० के साथ–साथ उसने कानून भी पढ़ना शुरू किया। कानून के पहले वर्ष की परीक्षा के कुछ दिन पहले, उसके ताऊ लखपत सिंह जी की दिसम्बर सन् १९२३ में मृत्यु हो जाने के कारण वह परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर सका। इसलिए उसने एम० ए० के अन्तिम वर्ष के साथ कानून के प्रथम वर्ष की परीक्षा पास की।

एम० ए० के बाद वह मेरठ कालेज में कानून की पढ़ाई पूरी करने आया। कानून की परीक्षा उसने अव्वल श्रेणी में पास की। इस बार मेरठ में वह स्काउट आश्रम, नामक संस्था में रहा। पंडित तेजराम शर्मा उस आश्रम के सुपरिन्टेंडेन्ट थे। वह विद्यार्थियों से मित्रभाव का व्यवहार करते थे और उन्हें हमेशा सत्यपथ पर अडिग रह कर देश सेवा की प्रेरणा देते थे। स्काउट आश्रम से अंग्रेजी में एक पत्रिका निकलती थी। उसमें युवक चरण सिंह ने देश की तत्कालीन समस्याओं तथा स्वास्थ्य पर कई निबन्ध लिखे। उस पत्रिका की पुरानी प्रतियां बहुत कोशिश पर भी नहीं मिलीं। चौधरी चरण सिंह जी के जीवन के वे प्रारम्भिक लेख अप्राप्त से हैं। वे

अगर मिल जायें तो चौधरी साहब की सार्वजनिक वृत्तियों के विकास की अनमोल कड़ी साबित होंगे।

मेरठ में कांग्रेस का संगठन सन् १९२०–२१ के पहले से ही हो चुका था। यद्यपि अभी वह शहरों के बुद्धिजीवियों तथा किसानों के युवकों तक ही सीमित था। सन् १८५७ की क्रान्ति से मेरठ क्रान्तिकारी आन्दोलन का केन्द्र बन गया था। पण्डित गौरी शंकर मेरठ षड्यंत्र केस में पकड़े गये थे। श्री विष्णु शरण जी दुबलिश को काकोरी केस में कालापानी की सजा हुई थी। सन् १९२० में पहले–पहल महात्मा गांधी मेरठ आये जिससे वहां राष्ट्रीय विचार धारा वाले व्यक्तियों के लिए लोक सेवा का वाता–वरण भी बन चुका था। काशी विद्यापीठ के सुप्रसिद्ध शास्त्रियों – सर्वश्री अलगू राय, हरिहर नाथ, राजा राम में से अग्रज श्री अलगू राय शास्त्री ने वहां 'कुमार आश्रम' स्थापित किया था। शेर–ए–पंजाब लाला लाजपत राय द्वारा स्थापित अखिल भारतीय लोक सेवा मंडल में प्रशिक्षण प्राप्त कर इन शास्त्रियों ने देश सेवा का ठोस रचनात्मक कदम उठाया था। कुमार आश्रम में हरिजन उत्थान तथा खादी के प्रचार का कार्य जोरशोर से चलाया जाता था। स्वर्गीय श्री लाल बहादुर शास्त्री भी बाद में इस आश्रम में काम करने आये। युवक चरण सिंह की बौद्धिकता का इन सबसे गहरा मंथन हुआ। उसका कुमार आश्रम से सम्बन्ध स्थापित हुआ। उसकी कार्य प्रणाली का उसने अध्ययन किया और उसके प्रचार–प्रसार में योगदान किया।

लाला लाजपत राय ने उत्तर पश्चिम भारत में आर्य समाज के प्रचार का भी ठोस काम किया था। महर्षि दयानंद जी के जीवन काल से ही आर्य समाज स्त्री शिक्षा, कुरीतियों तथा जाति–पांति का भेद मिटाने, वैदिक शिक्षा, विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, देश की स्वतंत्रता, स्वभाषा और स्वभूषा के लिए निरन्तर संघर्षशील रहा है। श्री अलगू राय शास्त्री भी आर्य समाजी थे। उच्च शिक्षा ने युवक चरण सिंह को भी आर्य समाजी बना दिया था। मां–बाप सनातनधर्मी थे। लेकिन पंजाब और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में आर्य समाज के व्यापक प्रचार के अलावा एक पुस्तक ने युवक चरण सिंह को कट्टर आर्य समाजी बनाया। वह पुस्तक स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा रचित आर्य समाज के संस्थापक की जीवनी थी– श्रीमद्दयानन्द प्रकाश। इसी श्रृंखला की दूसरी पुस्तक थी स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुंशी राम) की आत्मजीवनी श्कल्याण मार्ग का पथिकश। स्वामी श्रद्धानन्द जी के असाधारण साहसिक जीवन और विचारों का भी चरण सिंह पर गहरा प्रभाव पड़ा। खिलाफत के दिनों में दिल्ली की ऐतिहासिक जामा मसजिद में हजारों मुसलमानों की नमाज में स्वामी जी का भाषण

ब्रिटिश शासन काल में हिन्दू मुसलिम एकता का अपूर्व स्वरूप था। धर्म में दृढ़ आस्था साम्प्रदायिकता कदापि नहीं। धर्म व्यक्ति के विकास की रीढ़ है। वह आदमी को इन्सान बनाता है, उसे ईश्वर की ओर अभिमुख कर बुराइयों से दूर हटाता है। युवक चरण सिंह ईश्वर के प्रति आस्थावान बना। वह भरी जवानी में सन्तों की तरह सहृदय था, सच्चरित्र था और हिन्दुस्तान के गरीब किसानों, मजदूरों, बहुसंख्यक शोषित जनसमूह के उत्थान की भावना से अभिभूत था।

एक प्रश्न के उत्तर में उसने बहुत बाद में अखबार वालों को बताया कि "गुजरात मेरे लिए पुण्य भूमि है। जहां तक सामाजिक और धार्मिक प्रभाव का ताल्लुक है, वह स्वामी दयानन्द का ही रहा, किन्तु राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नों पर मैंने गांधी जी को ही अपना आदर्श माना है और उन्हीं की नीतियों और विचारों ने मुझे प्रभावित किया।" आज भी उसके अध्ययन कक्ष में महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानन्द और सरदार पटेल के चित्र दर्शकों को अनिमेष दृष्टि से देखते हैं। उसके निजी पुस्तकालय में वेदों से लेकर अति आधुनिकतम धर्म और राजनीति विषयक सद्ग्रंथ हैं।

शिक्षा समाप्त होते–होते उसे सन् १९२५ में विवाह के पवित्र बन्धन में बंधना पड़ा। रोहतक जिले के गढ़ी कुण्डल गांव में एक कट्टर आर्य समाजी परिवार था। परिवार बड़ा धनी खेतिहर था, चार–पांच हल की उनकी खेती थी। ऊपर से लाखों का सालाना लेनदेन का काम था। इस परिवार से रिश्ता आया। उसकी भी एक रोचक कहानी है। मथुरा में सन् १९२५ में बड़े धूमधाम से स्वामी दयानन्द की जन्म शताब्दी मनायी गयी। समारोह में दूर–दूर से प्रतिनिधि आये, भारी संख्या में उसमें युवक भी शामिल हुए। आगरा से युवक चरण सिंह भी अपने मित्रों के साथ उस समारोह में पहुंचा। उधर रोहतक से गढ़ी कुण्डल का उपरोक्त परिवार भी आया था। इस परिवार की गायत्री नामक एक कन्या लाला मुंशी राम जी (स्वामी श्रद्धानन्द) द्वारा स्थापित जालन्धर कन्या महाविद्यालय में पढ़ी थी, उनकी शिक्षा मैट्रिक के बराबर की थी। तब इतनी शिक्षा युवतियों के लिए बड़ी भारी उपलब्धि थी। अब घर पर रह रही थीं। उनके पिता श्री गंगा राम जी का स्वर्गवास सन् १९१८ में हो चुका था। वह अपने गांव की स्त्रियों और सहेलियों समेत अपने दादा के संग शताब्दी समारोह में आयी थी।

लोग कैम्पों में ठहरे थे। युवक चरण सिंह अपने तीन–चार मित्रों के साथ एक दिन गायत्री देवी के कैम्प की ओर से निकला। अपने कैम्प के पास जमीन को साफ–सुथरा कर, लीप पोत कर, ईंटों के चूल्हे पर

गायत्री देवी रसोई चढ़ाये थी। चरण सिंह और उसके साथी रसोई की लक्ष्मण रेखा के ऊपर से अनजाने निकल पड़े। गायत्री देवी ने रोष से कहा – "जूता पहनकर रसोई में आ गये?" युवकों ने, चरण सिंह ने, अपनी गलती महसूस की। वह सिर झुकाये बिना कुछ कहे, औपचारिक माफी मांग कर अपने रास्ते चले गये। गायत्री देवी और चरणसिंह की यह पहली देखादेखी थी। तब दोनों में किसी को यह अनुमान नहीं था कि वे पवित्र परिणय में बंध कर एक दूसरे के जीवन–संगी बनेंगे।

गायत्री देवी के दादा ने अपने पड़ोस के गांव के एक लड़के से जो आगरा के मेडिकल स्कूल में पढ़ता था, गायत्री देवी के विवाह के लिए किसी योग्य लड़के को बताने के लिए कह रखा था। उस युवक ने चरण सिंह का नाम सुझाया। दादा भदौला आये, चरण सिंह को देखा भाला। दादा धनपति, बहुत ही बड़े सम्पन्न परिवार के अधिपति, चरण सिंह को भदौला में देखने के बाद जब गढ़ी कुण्डल लौटे तो अपने परिवार से उन्होंने बताया कि लड़के के मां–बाप का घर मिट्टी और छप्पर का है। वे गरीब हैं, मगर लड़का ऐसा होनहार है, जैसा हमारे समाज में दूसरा मुश्किल से मिलेगा। तब उनकी बिरादरी विशेष में उच्च शिक्षित लड़के कम मिलते थे। परिवार को उच्च शिक्षित वर चाहिए था। अतः सोच–विचार के बाद उन्होंने अपनी पौत्री का रिश्ता उपरोक्त युवक के साथ कर दिया। लखपति घर की उस समय की उच्च शिक्षिता गायत्री देवी श्रीमती चरण सिंह बनकर एक गरीब किसान के घर में भदौला आयीं। उनकी मनोदशा का अनुमान करें जब विवाह की वेदी पर वर की जगह उन्होंने उसी लड़के को देखा होगा, जो जन्म शताब्दी समारोह में जूता पहने उनके चौके की लक्ष्मण रेखा लांघ गया था। उस घटना के ध्यान से वह लाज से गड़ गयी होंगी। मगर चरण सिंह और गायत्री देवी का विवाह फूला फला। श्रीमती गायत्री देवी ने चरण सिंह के जीवन कर्मक्षेत्र में सती–साध्वी आर्य ललना–सा उनका पूरा–पूरा साथ दिया, घर और बाहर दोनों स्थानों पर। राष्ट्रीय आन्दोलनों में जब–जब वे जेल गये, बाद में आपात–कालीन घोषणा में जब वे पकड़ कर बिना कोई अपराध बताये जेल में बन्द कर दिये गये, जब–जब कभी उन्हें यातनाएं और पीड़ा मिली या महसूस हुई, गायत्री देवी उनका और बच्चों का सहारा बनी रहीं। उन्होंने बड़े धीरज, सूझबूझ और साहस से हर पारिवारिक दायित्व को सम्भाला। वे चौधरी साहब का घर ही नहीं सम्भालती थी– देश के पुनरुत्थान के उनके सार्वजनिक काम में भी पूरा–पूरा हाथ बंटाती हैं। चौधरी साहब के राजनैतिक जीवन के कई मोर्चों पर उनका प्रभाव परम शुभकारी रहा है। आगे के पृष्ठों में उसका उल्लेख मिलेगा। युगल

दम्पति भारतीयता के प्रतीक हैं—सादा जीवन और ऊंचा विचार। कहीं कोई बनवाट नहीं। कहीं कोई प्रदर्शन नहीं, झूठा आडम्बर नहीं। उन्हें देखकर बरबस राष्ट्रपिता बापू और माता कस्तूरबा की याद सहज ही आ जाती है। । माता कस्तूरबा की महात्मा जी के साथ जो भूमिका रही, ठीक वही, श्रीमती गायत्री देवी की है। जाटों का दाम्पत्य प्रेम जातीय गुण है। इसकी पवित्रता पर वे भरसक आंच नहीं आने देते हैं। चौधरी साहब और श्रीमती गायत्री देवी का गृहस्थ जीवन आदर्श रहा है। जीवन के हर कठिन मोड़ पर वे एक दूसरे के अन्योन्याश्रित रहे हैं।

अध्याय ५

समरांगण: राष्ट्रीय कांग्रेस में

(१९२० से १९३९)

हर व्यक्ति का अपना जीवन ही उसका कुरुक्षेत्र और धर्मक्षेत्र होता है। अपनी मूल प्रवृत्तियों को पहचान कर समष्टि के हित में उनका केन्द्रीकरण ही सत्पथ पर बढ़ना है। यही स्वार्थ से परमार्थ और उसके ऊपर 'बहुजन हिताय' को समर्पित जीवन की सारभूत उपलब्धि – सफलता है। हमारे दर्शन के अनुसार मनुष्य का जीवन परम शक्ति की प्रतिच्छाया है। छाया का आलोक से एकीकरण ही मानव को मोक्ष माना गया है। सेवा का यही प्राप्य है। मनुष्य के जीवन का भी यही उद्देश्य है। यह सच है कि जीवन के महापंथ की चोटी पर पहुंच कर पाण्डवों की तरह सबको शून्य में विलीन हो जाना पड़ता है। सफल पुरुष किन्तु मर कर भी पाण्डवों की तरह अमर हो जाते हैं। चौधरी चरण सिंह भी उन महान पुरुषों में हैं जो अपने जीवन के सदियों बाद तक युगों को आलोकित करते रहेंगे।

कालेज की शिक्षा समाप्त कर गृहस्थाश्रम की पहली सीढ़ियों पर युवक चरण सिंह जैसे जीवन के चौराहे पर आ खड़ा हुआ। देश की स्वतंत्रता के संघर्ष में अपना सर्वस्व अर्पित करने का उसका संकल्प दृढ़ था। लेकिन अभिभावकों ने जैसे कालेज की शिक्षा का बहिष्कार नहीं करने दिया, वैसे ही चरण सिंह के सामने एक नया अवरोध खड़ा कर दिया।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद से ही, विशेष कर रूसी राज्य क्रांति के प्रभाव के कारण देश के बुद्धिजीवियों में स्वतंत्रता की ललक भड़क चुकी थी। क्रांतिकारी आन्दोलन पहले से कहीं अधिक सबल हो चला था। रौलट एक्ट तथा जलियांवाला बाग की नृशंस हत्याओं और शासकीय दमन नीति के फलस्वरूप निहत्थी जनता को सत्य, अहिंसा द्वारा महात्मा गांधी के असहयोग के अमोघ अस्त्र में नया उल्लास मिला। हम बिलकुल निहत्थे नहीं, हमारे पास गांधी जी का दिया हुआ नैतिक बल है, जिसके सामने सामरिक अस्त्रशस्त्र बेमानी साबित होंगे, इस भाव से भारतीय नये उत्साह से स्वतंत्रता के लिए उत्तेजित हो उठे। इससे अंग्रेज बेहद घबराए। महात्मा गांधी ने तिलक के 'स्वराज हमारा जन्म सिद्ध अधिकार' है को नयी व्यापक परिभाषा दी। तिलक अभी जीवित

थे। छः साल की सजा काट कर माण्डले जेल से आ चुके थे। खिलाफत आन्दोलन के वे पक्ष में भी थे। लेकिन अब महात्मा गांधी का बोल–बाला था। वे जन–मानस पर छाये जा रहे थे। गांधी जी ब्रिटिश शासन के अधीन ही स्वायत्तता की मांग के समर्थक थे। उन्होंने सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन का बिगुल बजाया। मुस्लिम जनमत तुर्की के खलीफा के विरुद्ध हुई सन्धि की शर्तों से अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ हो गया था। तुर्की के मुसलमान तो नहीं, मगर हिन्दुस्तानी मुसलमान खलीफा के पद की गरिमा और विस्तार को बनाये रखने के पक्ष में थे। अली बन्धुओं के नेतृत्व में उन्होंने असहयोग आन्दोलन से खिलाफत को भी जोड़ा। इस तरह सन् १९२१ का असहयोग आन्दोलन सन् १८५७ की राज्य क्रांति के बाद का अपूर्व आन्दोलन बन गया। इसको दबाने के लिए अंग्रेजी सरकार ने अपना दमन चक्र बहुत तेज कर दिया। तीस हजार आन्दोलनकारी कैद किये गये। दमनचक्र के साथ ही अंग्रेजों का कूटनीतिक बाण भी चला। उन्होंने हिन्दुस्तानी जनता का मन जीतने के लिए प्रिन्स ऑफ वेल्स को भारत भेजा। अंग्रेज साफ ही जनमानस को ठीक–ठीक समझ नहीं पाते थे। प्रिंस ऑफ वेल्स का भारत में हर जगह कल्पनातीत बहिष्कार हुआ। इससे अंग्रेज सरकार का धैर्य खो गया। सत्याग्रहियों पर कई झगह गोलियां चलीं। गांधी जी ने सत्याग्रहियों को कट्टर अहिंसावादी रहने की सीख दी थी। अधिकांश अहिंसावादी रहे भी। लेकिन गोरखपुर जिले में सत्याग्रहियों की भीड़ ने गोलियां खाते भी हुए क्रुद्ध होकर चौरा चौरी थाने को जला दिया। बारह पुलिस वाले मारे गये। महात्मा गांधी ने इससे दुःखी हो आन्दोलन को स्थगित कर दिया और पश्चात्ताप प्रकट करने के लिए अनशन किया। अंग्रेजी शासन पर इसकी यह प्रतिक्रिया हुई कि उनका दमनचक्र पहले से कहीं तेज हो गया। गांधी टोपी देखते ही सरकार का सिर चकरा जाता। अन्ततः अग्रेजों ने गांधी जी को भी गिरफ्तार कर राजद्रोह में छः साल की कैद की सजा दे दी।

युवक चरण सिंह महात्मा जी के आन्दोलन से बहुत प्रभावित हुआ। अंग्रेजों के दमनचक्र के खिलाफ उसका गरम खून खौलने लगा। लेकिन अभावों से ग्रस्त अभिभावकों ने उसे सिविल सर्विस का इम्तहान देने को विवश किया। ताऊ चौधरी लखपत सिंह उसे बहुत प्यार करते थे। उनकी बात वह चाह कर भी अमान्य नहीं कर सका। उसने प्रान्तीय सिविल सर्विस की डिप्टी कलेक्टर और मुन्सिफ पदों की परीक्षा दी। दोनों की लिखित परीक्षाओं में वह सफल भी हुआ। उन दिनों अंग्रेज राजभक्त तथा सामन्ती परिवारों से बहुत ठोंक बजा कर हिन्दुस्तानियों को उच्च पदों पर नियुक्त करते थे। इसलिए साक्षात्कार की मौखिक परीक्षा में वह उत्तीर्ण

नहीं हो सका। युवक चरण सिंह को सिविल सर्विस में न आना था और न ही वह आया। यह ऐसा ही शुभ संयोग माना जाएगा जैसा स्वर्गीय पण्डित जवाहर लाल नेहरू का इग्लैंड में आई० सी० एस० में न आना। अंग्रेजों की सिविल सर्विस में पण्डित जवाहर लाल भी कभी उभर नहीं पाते। श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, महर्षि अरविन्द घोष, श्री सुभाष चन्द्र बोस आदि कितने ही यशस्वी देश सेवक स्वदेश की अभूतपूर्व सेवा भी तभी कर सके, जब उन्होंने अंग्रेजों की सिविल सर्विस को ठुकराया या उससे अलग हुए। श्री बंकिम चन्द्र चटर्जी, बंगला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, एकमात्र अपवाद हैं, जिन्होंने अंग्रेजों के बंगाल की सिविल सर्विस में रह कर भी देश की महान सेवा की। वे साहित्य शिल्पी थे। चौधरी चरण सिंह को युगान्तकारी काम करना था। उनके लिए भावी की दूसरी योजना थी। सिविल सर्विस में न आकर उन्हें देश तथा समाज की सेवा का विस्तृत क्षेत्र अनायास मिल गया।

उस समय—तीसरे दशक के उत्तरार्द्ध में बेरोजगारी के साथ—साथ मन्दी का भी प्रकोप असह्य रूप से बढ़ गया था। अनाजों के भाव ५० प्रतिशत गिर गये थे। किसानों की यह दशा थी कि वे मालगुजारी अदा करने में भी असमर्थ थे। अतः जीविका चलाने के लिए ईमानदार आदमी को कोई न कोई काम करना बहुत जरूरी था। महात्मा जी के अनुयायियों में तब ईमानदारी और नैतिकता सर्वोच्च चारित्रिक गुण थे। आज की तरह असामाजिक और अवांछनीय तत्त्वों के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश की गुंजाइश नहीं थी। असहयोग आन्दोलन में गांधी जी ने कचहरियों और वकालत के बहिष्कार पर भी जोर दिया था। चौरा चौरी काण्ड के बाद आन्दोलन के स्थगित हो जाने से अब वकालत करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रह गया था। अतः चौधरी साहब ने सन् १९२७ में वकालत का काम शुरू किया। वकालत का पेशा भी — चांदी की घुड़दौड़ में — आज जैसा निम्न स्तर का नहीं हो गया था। अनेकानेक वकील राजधानियों, जिलों, तहसीलों में स्वतंत्रता संग्राम के पेशवा थे। चौधरी चरण सिंह सन् १९२८ में वकालत करने के लिए गाजियाबाद आये। वकील बनने के पहले एक महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख यहां जरूरी है।

बड़ौत, जिला मेरठ, के उस समय के जाट हाई स्कूल और बाद के सुप्रसिद्ध कालेज ने उन्हें अपना द्वितीय हेडमास्टर बनने के लिए आमंत्रित किया। यह चौधरी साहब की निजी बौद्धिकता, अध्ययनशीलता तथा तत्कालीन विचारों के सर्वथा अनुरूप भी था। किन्तु उस पद को स्वीकारने में एक अड़चन थी। कालेज की शिक्षा के दिनों से ही चौधरी साहब जाति—पांति के कट्टर विरोधी बन चुके थे। उन्होंने इतिहास पढ़ा

था। उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि जाति–पांति की प्रथा के कारण ही हिन्दुस्तान के इतिहास में एकता का अभाव रहा और देश अनेक राज्यों में विभाजित रहा। इसीलिए विदेशी आक्रमणकारी सुगमता से हिन्दुस्तान में घुस आया करते थे। जाति प्रथा के कारण ही हिन्दुस्तान में राष्ट्रीयता की दृढ़ भावना कभी पनप नहीं पायी। उत्तरी–पश्चिमी पहाड़ी दरों से आक्रमणकारियों के आने की बात अब इतिहास की एक कड़ी बन चुकी हैय और समुद्री रास्ते से मुट्ठी भर अंग्रेज व्यापारी आकर हमारी राष्ट्रीय एकता के अभाव में छल–छन्दों और धोखाधड़ी से हमारे ऊपर राज्य कर गये। हिन्दुस्तान के इतिहास के हर पन्ने पर हमारी एकता और राष्ट्रीयता के अभाव का प्रमाण मिलेगा। अतरू जाति–पांति का घोर विरोधी होने के कारण चौधरी साहब ने जाट स्कूल के व्यवस्थापकों को जवाब में लिखा कि अगर वे अपने स्कूल के नाम से 'जाट' शब्द हटा लें, तो उनका आमन्त्रण स्वीकार कर पायेंगे। कुछ दिनों बाद लखावटी के जाट डिग्री कालेज ने भी उन्हें अपना प्रिंसिपल बनाने का आग्रह किया। तब प्रिंसिपल का पद बहुत प्रतिष्ठा का माना जाता था और उसका वेतनमान भी ऊंचा था। लेकिन 'जाट' शब्द के कारण चौधरी साहब ने उसे भी अस्वीकार कर दिया। साधारणतया उन जैसी आर्थिक दुरूहता का कोई भी शिक्षित युवक उन पदों को दौड़ कर स्वीकार कर लेता। चौधरी चरण सिंह ने अपने चारित्रिक विकास में सिद्धान्तों से समझौता करना सीखा ही नहीं था। उनकी प्रारम्भ से ही यही जीवनधारा रही है। सच तो यह है कि यह सिद्धांत उनका व्यक्तित्व बन गया। उनके कुछ अनुदार छिद्रान्वेषियों ने उन पर जातिवादी होने का निर्मूल आरोप लगाकर अपना ही दीदा खोया है। झूठे आरोप हवा की तरह उड़ जाते हैं, टिकते नहीं।

चौधरी साहब, जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, आर्य समाजी थे। लेकिन वे साम्प्रदायिक कतई नहीं। मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, खान अब्दुल गफ्फर खां, रफी अहमद किदवई आदि अपने धर्म इस्लाम के कट्टर अनुयायी थे। क्या वे साम्प्रदायिक थे? चौधरी चरण सिंह कट्टर आस्तिक थे। धर्म–निरपेक्ष राष्ट्र में धर्म व्यक्ति की निजी मर्यादा है। उसकी सुरक्षा और उसके पालन की सबको पूरी स्वतंत्रता रहती है। बहुधर्मावलम्बी देश में राज्य प्रत्येक व्यक्ति की पूजा और संस्कार की सुरक्षा का उत्तरदायी होता है। धर्म निरपेक्षता घर से बाहर सारे नागरिकों को आर्थिक तथा राजनैतिक वर्गों में विभाजित करती है। राष्ट्रीय जीवन में व्यक्ति धर्म का नहीं प्रत्युत राष्ट्र का होता है। वह धनी, मध्यम श्रेणी या गरीब श्रेणी का हो सकता है। यही धर्म–निरपेक्षता समाज की विशिष्टता है। हमारे यहां कतिपय राजनैतिक दल अपने वोट के लिए बहुसंख्यक, अल्पसंख्यक

आदि को विदेशी अंग्रेजी शासन की तरह इस्तेमाल करते हैं। इसलिए ईर्ष्यालु विरोधियों ने चौधरी साहब को आर्य समाजी बताकर उन्हें मुस्लिम हितों का विरोधी बताया। कांग्रेस छोड़ने के बाद ही उनके विरुद्ध यह प्रचार शुरू हुआ। मुस्लिम जनता कभी इस धोखे में नहीं आए, वह सच्चाई जानती है। वह उन पर पूरा विश्वास रखती है। अधिकतर मुसलमान पिछड़ी आर्थिक स्थिति के लोग थे। वे प्रायः दस्तकारी और शिल्पकारी के छोटे धन्धों में लगे थे। सहज ही वे अपना दुःख–दर्द सुनाने को बड़ी भारी संख्या में उनके पास आते थे। वह अच्छी तरह जानते हैं कि घरेलू उद्योग धंधों के विकास पर ही उनकी खुशहाली निर्भर है। उनके सबसे बड़े हिमायती गांधीवादी चौधरी साहब ही हो सकते हैं, जो श्रम–पूरक घरेलू उद्योग धंधों को देश के विकास के लिए अत्यावश्यक मानते हैं। धर्मनिरपेक्ष राज्य में मुसलमानों को उनसे कोई शिकायत हो ही नहीं सकती। पारसी इतने अल्पमत में होते हुए भी अगर इस देश में अपनी विशिष्टता रख सकते हैं, तो मुसलमान क्यों नहीं, जो यहीं की उपज हैं? पिछड़े वर्गों के, चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान, बीच से चौधरी साहब उभरे हैं और उन्हीं के लिए वे सदा संघर्षरत रहे। आज तो सभी राजनैतिक दल अपने–अपने व्याख्यानों में पिछड़े वर्गों की दुहाई देते हैं। आज तो विभिन्न नेताओं के नाम से सम्बन्धित कांग्रेस वाले भी जो बापू के सिद्धांतों को प्रायः भूल चुके थे, इस होड़ में लगे हैं। उनकी नीति जाति, धर्म और साम्प्रदायिकता को बनाये रखना है। जिससे उनका 'वोट बैंक' सुरक्षित रह सके। चौधरी साहब देश के भविष्य को दृष्टि में रखकर नीति निर्धारण करते थे। उनकी नीतियां ऐसी नहीं थी कि मुट्ठी भर पूंजीपति घोर अनैतिकता से देश को बड़ी तेजी से रसातल की ओर ले जा सकें। गांवों के गरीबों और शोषितों की दशा जैसी थी, वैसी ही रही। स्वास्थ्यकर भोजन की बात ही दूर, गांवों में, झुग्गियों में पीने के साफ पानी की भी कोई व्यवस्था नहीं हुई। शिक्षा, विज्ञान और टेकनालोजी के इतने विकास के बाद भी गांवों की पचास प्रतिशत से अधिक आबादी तब भी गरीबी रेखा के नीचे रह रही थी। इसमें पन्द्रह प्रतिशत घोर दारिद्र्य का कष्ट भोग रहे थे। मुसलमानों का भी अनुपात इसमें कम नहीं। ऐसे लोग चौधरी साहब को मुस्लिम हितों का विरोधी बता कर किसकी आंख में धूल झोंकना चाहते थे?

तो चौधरी साहब ने गाजियाबाद में वकालत शुरू की। वे दीवानी के वकील बने। फौजदारी के छल–छन्दों से न वे परिचित थे, न ही उसे पसन्द करते थे, वे मेहनत करते थे, तेज दिमाग के थे और उनमें तर्क करने और प्रभाव डालने की शक्ति थी। उनकी वकालत चल निकली। बहुत ही जल्दी वे गाजियाबाद के दीवानी के तीन–चार अव्वल वकीलों में गिने जाने लगे।

वे जिस मुकदमे को स्वीकार करते थे, उसे पूरी तरह तैयार करते थे। फीस उन्हें अच्छी मिलती थी। वैसे फीस की उन्हें बहुत परवाह नहीं थी। कोई गरीब या पीड़ित उन्हें फीस न भी दे सके, कोई बात नहीं। मुकदमों में वे भरसक समझौता कराने की कोशिश करते थे– पंचायत की उनकी जातीय प्रवृत्ति थी। वे दु:खी तब होते थे, जब अदालत न्याय नहीं करती थी। उनके अनुभव में ऐसी अदालतें आयीं, जो बाहरी कारणों से प्रभावित होकर न्याय के सिद्धांतों को ताक पर धर देती थीं। फिर भी वकालत में वे मनोयोग से जुटे। उन्हें अपने बौद्धिक विकास का अनुकूल क्षेत्र मिला। उसके लिए उनमें उत्साह था, उनकी नजीरों के रेफरेन्स रजिस्टर को कभी–कभी वरिष्ठ वकील भी देखना चाहते थे और उनसे सलाह भी लिया करते थे।

उनकी आमदनी उस समय के अनुसार वकालत के शुरू से ही पर्याप्त होने लगी, करीब अस्सी पचासी रुपये महीना। रुपया जोड़ने का उन्हें मोह था नहीं। वह महात्मा जी की तरह दरिद्र नारायण के प्रेमी थे। सादा रहना, ऊंचा विचार, हमेशा उनका बना रहा। चांदी की चाट इन्सान को गला देती है। वह हाथ को ही नहीं, मन को भी मैला कर देती है। जीवन भर, चौधरी चरण सिंह ने कभी इस तो ओर ध्यान नहीं दिया। जब शुरू–शुरू में कांग्रेस के आन्दोलनों में वे जेल गये, परिवार का खर्च चलाने के लिए साइकिल, घड़ी और पत्नी के पास एक ही आभूषण था वह भी बेचने पड़े। बाद में जब कुछ बचत होने लगी, खेती से भी आमदनी हुई, तब पिता चौधरी मीर सिंह मुखिया ने चौधरी साहब के बाद के एक समृद्ध मित्र के पास अमानत के तौर पर अपनी वर्षों की कमाई कुछेक हजार रुपये रखे। वह रुपया कभी नहीं लौटा। चौधरी साहब ने उस बारे में मित्र से कभी अपनी जबान नहीं हिलाई। अपरिग्रह का अपना सुख होता है। वर्षों बाद जब मैं प्रशासकीय सेवा में मेरठ में तैनात था, मुझे चौधरी साहब की सरकारी गाड़ी में बैठ कर देहाती क्षेत्रों के दौरे पर उनके संग जाने का सुअवसर मिला। तब वह उत्तर प्रदेश की कांग्रेसी सरकार के मन्त्री थे। गाड़ी में जिले के दूसरे नेता भी थे। चौधरी साहब दिन भर की व्यस्तता से थके–मादे थे। अचानक, अपनी थकावट दूर करने के लिए, वे उन्मुक्त कंठ से गा उठे:

"माया नाय रही रे काही के
यहां ना अमर रहयो कोई,
रावण बढ़ गयो गढ़ लंका में,
सोने की लंका छनक खोयी।

अरे, तेरे महल बने माटी के,
बाकी सोने की रे गढ़ लंका,
सर बजे रे, काल का डंका,

...

उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में प्रचलित होली के बोल, भारत के ऋषि मुनियों और संतों का जीवन दर्शन ! चौधरी साहब को यह छोटी सी घटना तो क्या याद होगी, और इसका तो उन्हें तब बिलकुल आभास नहीं था कि मुझे लिखने—पढ़ने का भी शौक है। लेकिन यह सर्वविदित था कि उस माटी के महल वाले तपस्वी ने सोने का महल बनाने की कभी सपने में भी कामना नहीं की। यदि वह साधारण वर्ग का कांग्रेसी होता तो यह कोई मुश्किल बात नहीं थी। उसके उच्च पदस्थ साथियों ने क्या नहीं बनाया? उन्होंने अपनी नैतिकता और ईमानदारी का ढोल भी जोर—जोर से पीटा, लेकिन सबको सदा धोखे में रखा नहीं जा सकता।

अपनी बचत के धन से, थोड़ी बहुत बचत वकालत से होने लगी थी, चौधरी साहब ने कितने अभावग्रस्त लोगों, सहयोगियों और मित्रों की मदद की। आज भी सुविधानुसार ऐसा करने में वे हिचकते नहीं। वे और उनकी पत्नी दोनों एम० एल० ए० और एम० ० पी० रहे। दोनों अपने मासिक पारिश्रमिक से ही अपनी गुजर बसर कर लेते हैं। वे अपने दल के अखिल भारतीय अध्यक्ष थे। किसानों गरीबों से प्राप्त पार्टी का फण्ड भी था। वे अपने दल के फण्ड से दल के अभावग्रस्त सदस्यों की यथासम्भव मदद कमेटी द्वारा करा देते थे। उनके इशारे पर उनके कुछ किसान मित्र भी अभाव — ग्रस्त सार्वजनिक कार्यकर्ताओं, विधवाओं और गरीब विद्यार्थियों की मदद किया करते हैं। इसे वे मन से पसन्द नहीं करते थे, क्योंकि समस्या का यह निदान नहीं। वह तो हर बालिग को रोजगार देने तथा आर्थिक असमानता मिटाने से ही सम्भव था। इस पर आगे के परिच्छेदों में...

गाजियाबाद में वकालत के स्वतंत्र पेशे में, अपनी भावनाओं और विचारों को उन्होंने मूर्तरूप देना प्रारम्भ किया। सन् १९२९ में लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास हुआ। एक साल पहले ही नेहरू (पंडित मोती लाल जी) कमेटी की रिपोर्ट औपनिवेशक स्वराज से सन्तुष्ट थी। पंडित जवाहर लाल नेहरू और नेता जी सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस में गरम दल के प्रतिमान थे। कांग्रेस का नया तिरंगा झंडा बना और २६ जनवरी सन् १९३० को पहला स्वतंत्रता दिवस देश भर में बड़ी गरिमा से मनाया गया। चौधरी साहब ने १९२९ में गाजियाबाद में पहली

कांग्रेसी कमेटी की स्थापना की। दिल्ली के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ता श्री गोपीनाथ जी अमन तब गाजियाबाद में मुख्तार थे। दोनों नयागंज में एक ही मकान में रहते थे। उन्होंने उनका हाथ बंटाया। दूसरे सहयोगी थे गांधी आश्रम के पंडित देव मित्र और एक पंडित मुन्नी लाल स्वामी। स्वामी जी बाद में संन्यासी हो गये। गाजियाबाद दिल्ली की नाक के नीचे है। दिल्ली में वाइसराय रहते थे, लेकिन गरीबी से जूझने वाले युवक वकील चौधरी चरण सिंह ने खूब शान से वहां तिरंगा लहराया, न वाइसराय का भय न सामन्ती प्रतिक्रियावादियों से क्षोभ। राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रवाह में जीवन धारा बह निकली।

उसी साल वे गाजियाबाद के आर्य समाज के सभापति चुने गये। आर्य समाज ने वेदध्वनि को दुबारा गुंजित किया था। उस ध्वनि में भारत की आजादी की मांग के स्वर भरे थे। इस तरह कांग्रेस से जहां उन्होंने स्वतंत्रता के महायज्ञ में अपनी आहुति देना प्रारम्भ किया, वहां आर्य समाज के जरिये वे सामाजिक कुरीतियों को मिटाने का रचनात्मक काम भी करने लगे। पहला ही मोर्चा एक अधिकारी से ठना। नगरपालिका के एक कार्यकारी अधिकारी थे। उन्होंने एक तरुणी विधवा को फुसलाया, उसका शील हरा। उस विधवा की अज्ञात यौवना कन्या पर भी अधिकारी महोदय ने डोरे डालना शुरू किया। वे उस कन्या को बहला–फुसला कर दिल्ली घुमाने ले गये। दिल्ली के स्टेशन के पास किसी होटल में उसे उन्होंने अपने साथ ठहराया और उसके साथ बलात्कार किया। चौधरी साहब को खबर लगी। वे पीछे पड़े। कार्यकारी महोदय कन्या को होटल में अकेले छोड़कर फरार हो गये। चौधरी साहब ने उस कन्या का उद्धार किया। बहुत समझा–बुझा कर उसका विवाह उसी की जाति के एक उदार अध्यापक से करा दिया। विधवा मां की सुरक्षा की जिम्मेदारी भी बहुत दिनों तक वे सम्हाले रहे। बाद में वह दिल्ली जा बसी।

उक्त कार्यकारी अधिकारी ने चौधरी साहब को कत्ल की धमकी भी दिलायी। यह उनके जीवन में कत्ल की पहली धमकी थी। इसका उन पर राई भर भी असर नहीं पड़ा। उल्टे गाजियाबाद में उनकी सेवा भावना की बड़ी प्रशंसा हुई। उन्हें स्वयं को बड़ा संतोष मिला। इस घटना की उन्हें आज भी याद है। बाद में आर्य समाज के पेशवा के नाते गाजियाबाद में उन्होंने इस दिशा में अनेकों काम किये।

दूसरी घटना जो उन्हें याद है वह गाजियाबाद के पास के गांव मकनपुर की है। उस गांव के एक गरीब बाप ने अपनी किशोरी कन्या का विवाह रुपये ले दे कर रईस पुर गांव के एक बूढ़े दुकानदार से तय किया। सूचना पाते ही ऐन विवाह के दिन चौधरी साहब मकनपुर पहुंचे।

उन्होंने कन्या के बाप को समझाया। उसने समझा भी। वह रुपये ले चुका था, उन्हें खर्च कर चुका था। उसने कहा कि बूढ़े को रुपये भर दिए जायें। चौधरी साहब उतने रुपये का फौरन प्रबन्ध नहीं कर सके। गरीब बाप चाहते हुए भी बूढ़े से कन्या का विवाह नहीं रोक सका। चौधरी साहब को इसका बहुत दुःख हुआ। इस घटना के जिक्र से वे भर आते थे। गरीबी कितना बड़ा अभिशाप है, इसे चौधरी साहब ने गाजियाबाद में आर्य समाज के प्रधान के रूप में बहुत निकट से देखा। गुलामी से मुक्त हुए बिना गरीबी कभी नहीं मिटेगी, यह उन्होंने अच्छी तरह समझा। गाजियाबाद में पास पड़ोस के गांवों में और मुकदमों में उन्होंने गरीबी की लाचारी का स्वयं अनुभव किया। आजादी के सैंतीस साल बाद भी गरीबी और अभाव कहां मिट पाये, अभिशाप कहां मिटे? उल्टे बढ़ते ही गये। गांधी जी का सपना, आर्थिक स्वतंत्रता, कहां पूरा हुआ? रुपये के लिए सब कुछ यहां तक कि पूर्वजों का धर्म भी बिक रहा है। चौधरी साहब इससे मर्माहत थे। उनकी दिशा अस्सी प्रतिशत गरीबों को सुखी और समृद्ध बनाने की है– उनकी दारुण गरीबी को मिटाने की थी, केवल नारों से नहीं, सच्चाई से। गांवों का बहुमत ही भारत की शक्ति है। भारत उसी की समृद्धि से शक्तिशाली होगा।

हिन्दी के लिए भी चौधरी चरण सिंह गाजियाबाद में नुकसान उठाकर लड़े। देश भर की एक भाषा, चाहे वह सम्पर्क भाषा ही हो, राष्ट्रीयता के लिए बहुत जरूरी है। तब कचहरियों और पढ़े लिखे लोगों में अंग्रेजी का बोलबाला था। पेशकारों, अहलकारों में फारसी लिपि में उर्दू चलती थी। अंग्रेजी हमारे विदेशी शासक अंग्रेजों की भाषा थी। आज भी देश भर में दो प्रतिशत से अधिक लोग इसे नहीं जानते। यह हमारा घोर दुर्भाग्य है कि गुलामी की प्रतीक अंग्रेजी अब भी सरकार और समाज में भी धड़ल्ले से चल रही है। अंग्रेजी इस देश की राष्ट्रभाषा कभी नहीं बन सकती। यह स्थान इतिहास के हर काल से गंगा यमुना के बीच में बोली जाने वाली भाषा का रहा है। हिन्दी ही आज वह भाषा हो सकती हैं। चौधरी साहब ने एक मुन्सिफ की अदालत में हिन्दी में अर्जी दावा पेश किया। उसने उसे वापस लेने को कहा। चौधरी साहब ने वापस नहीं लिया। मुंसिफ हिन्दुस्तानी था। उसकी मातृभाषा हिन्दी थी। लेकिन वह चिढ़ गया। गुलामी के दिन, हिन्दी से उसे अपमान का बोध हुआ। उसने इस आधार पर कि अदालती कामकाज की भाषा अंग्रेजी है, चौधरी साहब द्वारा प्रस्तुत अर्जी दावा खारिज कर दिया। चौधरी साहब डट गये। महामना मालवीय के मेमोरेंडम पर पारित शासन के आदेशों को उन्होंने ढूंढ निकाला, उनका हवाला दिया। मुंसिफ तब भी नहीं माना। उल्टे यह हुआ कि उसने चौधरी

साहब के मुकदमों को खारिज करना शुरू कर दिया। चौधरी साहब ने उसके इजलास का मुकदमा लेना बन्द कर दिया। इससे उन्हें आर्थिक क्षति उठानी पड़ी। वे झुके नहीं। शेष दो मुंसिफों की अदालतों में उन्होंने हिन्दी में ही काम किया।

अपने मंत्रित्व और मुख्य मंत्रित्व काल में उन्होंने सरकारी कामकाज में हिन्दी का उपयोग शतप्रतिशत कर दिया। इस सम्बन्ध में उन्होंने कड़े आदेश पारित किए और उनका अनुपालन कराया। सदा ही हिन्दी की, जिसमें उर्दू भी शामिल थी, प्रतिष्ठा के बारे में उनकी एक विचारधारा थी। उत्तर भारत की भाषा हमेशा सारे भारत की राजकीय और सम्पर्क भाषा रही है। आज के कतिपय राज्यों में इस बारे में विशृंखलता इसलिए है कि पिछले पिच्छत्तर वर्षो में हम सारे देश को एक भाषासूत्र में नहीं पिरो सके हैं। वह तत्काल करना जरूरी है। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का ३६वां अधिवेशन ९ दिसम्बर सन् १९४८ को मेरठ में सम्पन्न हुआ था। चौधरी साहब उस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे। अपने भाषण में भाषा सम्बन्धी अपनी नीति को उन्होंने यों प्रकट किया था – "राष्ट्र भाषा का स्थान उसी को दिया जा सकता है, जिसकी शब्दावली, उच्चारण, लिपि और वर्णमाला अन्य प्रान्तीय भाषाओं की शब्दावली आदि के अधिक से अधिक निकट हो, जिसकी लिपि सुगम और वैज्ञानिक हो और जिसमें ऊंचे से ऊंचे साहित्यिक और वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखे जा सकें। इन कसौटियों पर कस कर देखा जाय तो राष्ट्रभाषा पद पर केवल हिन्दी को ही आसीन किया जा सकता है।" एक भाषा से ही देश में एकता आयेगी, राष्ट्रीयता पनपेगी। अगर पंडित जवाहर लाल नेहरू ने आजादी के प्रारम्भ से ही संविधान में पारित राष्ट्रभाषा का प्रस्ताव लागू कर दिया होता तो आज भाषा को लेकर कतिपय राजनैतिक क्षेत्रों में जो वितण्डा पैदा हो गया था, वह नहीं होता, यह उनका दृढ़ मत था। महात्मा गांधी की तरह वे भी बोलचाल की सरल हिन्दी के पक्षपाती थे। वही मूल उर्दू भी है। मेरठ के निवासी होने के कारण हिन्दी–उर्दू से उन्हें अगाध प्रेम था। दिल्ली के बाजारों या छावनी में मेरठ की बोलचाल की भाषा का ही विकास हुआ, जिसे बाहर से आये मुसलमान शासकों ने उर्दू अथवा बाजार की भाषा कहा। शहरों और दरबारों का प्रश्रय पाकर वह बोली सहज, सरस और सजीव बन गयी। हिन्दी और उर्दू में केवल लिपि का भेद है जिसका आसान हल ढूंढा जा सकता है। राष्ट्रभाषा के सम्पर्क स्तर पर नागरी लिपि ही सारे भारत में चल पायेगी। धार्मिक ग्रन्थों आदि को पढ़ने के लिए फारसी लिपि को जानने की भी जरूरत है। उसका एकदम बहिष्कार नहीं किया जा सकता। अपभ्रंश से निकली सारे उत्तर भारत की

भाषायें नागरी लिपि में ही लिखी जाती हैं। संस्कृत की लिपि भी नागरी है। इस तरह दक्षिण की भाषाओं में भी जिनके ४० से ७० प्रतिशत शब्द संस्कृत–जनित हैं, नागरी प्रचलित की जा सकती है। समूचे हिन्दुस्तान को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए नागरी लिपि में हिन्दी या उर्दू भाषा का कोई विकल्प नहीं है।

कांग्रेस के संयोजक की हैसियत से चौधरी चरण सिंह ने गाजियाबाद के देहाती क्षेत्रों का विधिवत दौरा किया। उन दिनों विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार और खद्दर के प्रचार के कार्यक्रम पर जोर था। उनके दौरों का उद्देश्य गांवों में खद्दर का अधिकाधिक प्रचार करना था। अपने गांव भदौला में उन्होंने एक बड़ा जलसा आयोजित कराया, जिसमें मेरठ के कुमार आश्रम से श्री अलगू राय शास्त्री तथा उनके सहयोगियों ने भाग लिया। इन दौरों में अपने नूरपुर व जानी–खुर्द गांवों जैसी दुर्दान्त गरीबी और उनके अभावपूर्ण जीवन स्तर को उन्होंने सर्वत्र ही देखा। "यंग इण्डिया" में प्रकाशित महात्मा गांधी के दौरों के विवरण से भी उन्होंने अनुभव किया कि समूचे भारत को ब्रिटिश हुकूमत ने जानबूझ कर गरीब बना रखा था। वह शोषण का निकृष्टतम अमानुषिक तरीका था। इसमें शोषित अपने तन पेट को साथ रखने के लिए शासकों की कृपा निहारता रहता है। आजादी के बिना इस गरीबी से जनसमुदाय का उद्धार कैसे सम्भव हो? उनका गरीबी के खिलाफ संघर्ष करने का निश्चय दृढ़तर हो गया। हिन्दुस्तान की गांवों में रहने वाली जनता की गरीबी कृषि उत्पादन बढ़ाने और घरेलू उद्योग धंधों के विकास से ही मिटेगी – यह उनका दृढ़ विश्वास बन गया। रास्ता अब सीधा और साफ था। वे राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्पूर्ण समर्पण से कूद पड़े।

सन १९३० में गांधी जी का नमक कानून के खिलाफ देश–व्यापी सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू हुआ। ५ अप्रैल को महात्मा गांधी ने डांडी में नमक कानून तोड़ा। देश भर में आन्दोलन बड़ी तेजी से फैला। सीमा प्रान्त में जहां खान अब्दुल गफ्फार खां के खुदाई खिदमतगारों ने आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया, अंग्रेजों ने फौजी शासन लागू कर दिया। निहत्थी और शान्त भीड़ पर तोपें और बन्दूकें चलीं। इन्हीं में गढ़वाल राइफलस के बहादुर सैनिकों ने गोली जलाने के हुक्म को मानने से इन्कार कर दिया। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और कोर्ट मार्शल द्वारा आजीवन उम्र कैद की सजा दी गई। वे सन् १९३७ में कांग्रेस मंत्रिमंडलों की जोरदार सिफारिश पर छोड़े गये। पहले विश्वयुद्ध के बाद सैनिक जागरण का यह महत्त्वपूर्ण उदाहरण था। महात्मा गांधी के नेतृत्त्व में स्वतन्त्रता संघर्ष के लिए सेना का चकाचौंध करने वाला पहला योगदान था।

गाजियाबाद में गांधी जी के आन्दोलन को सफल बनाने का बीड़ा चौधरी साहब ने उठाया। गाजियाबाद के परगना मजिस्ट्रेट थे श्री श्याम सिंह पाठक। वे चौधरी साहब की प्रतिभा के परम प्रशंसक थे। उन्होंने उनके पिता को जो चौधरी साहब के खिलाफ मुकदमे की सुनवाई के समय पर उनकी अदालत में मौजूद थे, मित्र के रूप में समझाया कि ऐसे प्रतिभाशाली पुत्र को वे आन्दोलन में न पड़ने दें, क्योंकि वकालत चौपट हो जायेगी। पिता ने जवाब में कहा – "अब वे बड़े हो गये हैं। जो कर रहे हैं – ठीक ही है।" पिता की भविष्यवाणी कालक्रम से सही साबित हुई। परिवार के दूसरे लोग भी चौंके थे। परिवार उनसे गरीबी से उभरने की आशा लगाये बैठा था। दूरदर्शी पिता ने परिवार वर्ग को संभाला। अब क्या था? नमक कानून तोड़ने के अपराध में उन्हें छः महीने की सजा मिली। यह उनकी पहली जेल यात्रा थी, जिसका सिलसिला आपातकाल तक जारी रहा। वे निर्भीक थे, सिद्धान्तों पर अटल रहते थे, व्यक्ति और समूह की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता को प्रजातंत्र की रीढ़ मानते थे। शुद्ध गान्धीवादी होने के नाते वे जन–जन का हित – सर्वोदय चाहते थे। वह सबको समान बनाना चाहते है। हिंसा और उसकी प्रवृत्तियों की उन्होंने हमेशा खुल कर निन्दा की। वे झूठ, फरेब और नितान्त स्वार्थ की राजनीति को बहुत हेय मानते है, क्योंकि अन्ततोगत्वा इससे देश का अपकार होता है। ऐसी राजनीति के प्रतिकार में उनकी देशभक्ति ताल ठोंक कर खड़ी हो जाती थी। महत्त्वा कांक्षा उनमें भी थी, किन्तु वह सार्थक सेवा के लिए ही। इस जघन्य गरीबी के देश को सुखी और सम्पन्न बनाने के लिए वह अल्पकालीन "वोट बैंकों" के कदापि समर्थक नहीं। इससे देश का अहित होता। महात्मा गांधी की तरह स्वदेश का दूरगामी हित उनका सर्वोपरि संकल्प था। अतः संत विनोबा के बाद समूचे हिन्दुस्तान में उन जैसा समता और सर्वोदयवादी विचारक आज कोई दूसरा हमारे बीच में नहीं है। चौधरी साहब के जेल चले जाने से श्रीमती गायत्री देवी का स्त्री–धन चुक गयाः हाथ के कड़ों को जो उनके पास एक ही जेवर था, वह भी बेचना पड़ा। वे गाजियाबाद के कन्या बालिका विद्यालय में अध्यापिका थीं। बच्चों के लालन–पालन के लिए उसे भी छोड़ना पड़ा। फिर भी तहसील पर स्त्रियों के धरना–सत्याग्रह का उन्होंने नेतृत्व किया। वे पकड़ी भी गई, मगर छोड़ दी गई।

जेल से छूट कर आने पर चौधरी चरण सिंह दुगुने उत्साह से सार्वजनिक काम में जुट गये। इसी बीच गान्धी जी के आन्दोलन के सामने अंग्रेजी हुकूमत पहली बार झुकी और गांधी–इरविन समझौता हुआ। उन्हीं दिनों डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का चुनाव आया। कांग्रेस की ओर से उन्हें

चुनाव लड़ने का हुक्म मिला। उनकी ख्याति चारों ओर इतनी अच्छी हो गई थी कि उनके विरुद्ध खड़ा होने के लिए किसी की हिम्मत ही नहीं हुई। वे निर्विरोध चुने गये। वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कनिष्ठ उपाध्यक्ष भी चुने गये। एक नये कार्यकर्त्ता के लिए यह साधारण प्रतिष्ठा की बात नहीं थी। उनके सार्वजनिक जीवन की यह पहली कड़ी उतने ही महत्त्व की साबित हुई, जितने सरदार पटेल, राजेन्द्र बाबू और जवाहर लाल जी का अपने नगर पालिकाओं का अध्यक्ष चुना जाना।

सन् १९३२ का सत्याग्रह आन्दोलन आ पहुंचा। उन्हीं दिनों नमक कानून आन्दोलन से प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने १२ नवम्बर, १९३१ को गोलमेज परिषद् की बैठक लन्दन में बुलाई थी। राष्ट्रीय कांग्रेस महासभा ने उस परिषद् में प्रतिनिधि भेजना अस्वीकार कर दिया था। परिषद् का हश्र जो होना था, हुआ। वह नितान्त असफल रही। २३ मार्च सन् १९३२ को हिन्दुस्तान की अंग्रेजी हुकूमत ने देश के एकमत और गांधी जी की अपील की अवहेलना करते हुए प्रसिद्ध क्रान्तिकारी देश–भक्त भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को फांसी दे दी। यह गांधी–इरविन समझौते की भावना के बिलकुल खिलाफ कार्यवाही थी। कांग्रेस ने जेलों को भरने की योजना बनाई। चौधरी साहब को इस आन्दोलन में जेल जाने की आज्ञा नहीं मिली। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अध्यक्ष चुने गये थे चौधरी खुशी राम। सन् १९३० में गुलावठी, जिला बुलन्दशहर में पुलिस फायरिंग में उन्हें गोली लगी थी। उसमें उनका आधा हाथ काट देना पड़ा। वे अचानक गिरफ्तार कर लिये गये। वरिष्ठ उपाध्यक्ष थे–मौलवी बशीर अहमद भट्टे वाले। वे भी गिरफ्तार कर लिये गये। बागपत के राजभक्त नवाब जमशेद अली खां डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में विरोधी दल के नेता थे। नवाबों और राजाओं का विरोधी दल अंग्रेज हुकूमत के इशारों पर उठता बैठता था। चौधरी साहब भी जेल चले जाते, तो वही पिट्ठू नवाब शासन द्वारा अध्यक्ष बना दिये जाते। इसलिए कांग्रेस ने चौधरी साहब को हुक्म दिया कि जब तक अध्यक्ष या वरिष्ठ उपाध्यक्ष जेल से वापस न आ जायें, तब तक वह अध्यक्ष पद से बोर्ड का काम चलाएं। इस तरह इस आन्दोलन में वे जेल नहीं जा सके।

लार्ड इरविन के स्थान पर लार्ड विलिंग्डन वायसराय बन कर आ चुके थे। अंग्रेजों का दमनचक्र तेजतर हो चुका था। सन् ३२ में होने वाली दूसरी गोलमेज परिषद् में कांग्रेस ने सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया और महात्मा गांधी को अपना एकमात्र प्रतिनिधि चुना। कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में गांधी जी लन्दन गये! वहां अंग्रेज कूटनीतिज्ञ परिषद् का ध्यान दूसरी समस्याओं में उलझा कर हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता पर

कोई विचार करने को तैयार नहीं थे। महात्मा गांधी ने उनसे खुल कर कहा – "आप लोग – अपने राष्ट्र के लूट मार करने के पाप से अपने हाथ को धो डालिये, भारत की आजादी स्वीकार कर लीजिए।" यह कैसे होता? महात्मा जी दिसम्बर में भारत लौट आये। ४ जनवरी, १९३३ को वह गिरफ्तार कर लिये गये।

उधर दूसरी ओर, ब्रिटिश हुकूमत हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की मांग को और कमजोर करने के लिए मुसलमानों की पृथकतावादी नीति की तरह हिन्दुओं में सवर्ण–अवर्ण का भेदभाव बढ़ा रही थी। ब्रिटिश प्रधानमंत्री मेकडानल्ड ने अछूतों के निर्वाचन की घोषणा की। गांधी जी ने अंग्रेज हुकूमत की इस चाल को निरस्त्र करने के लिए सितम्बर में आमरण अनशन शुरू किया। हिन्दू नेता अवर्ण और सवर्ण दोनों घबरा उठे। उन्होंने पृथक निर्वाचन पद्धति को समाप्त करने का समझौता कर लिया।

ब्रिटिश हुकूमत ने तीसरी गोलमेज परिषद् भी आमंत्रित की, जो पहली दो की तरह बेकार रही। हिन्दुस्तान की आजादी के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिर शुरू हुआ। महात्मा जी गिरफ्तार कर लिये गये, कांग्रेस को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। महात्मा जी को कुछ दिनों के बाद छोड़ दिया गया। छूटने के बाद सन् १९३३–३४ में महात्मा जी ने हरिजन – उद्धार का कार्यक्रम चलाया और सारे देश की दुबारा यात्रा की। गाजियाबाद अंचल में चौधरी चरण सिंह ने इस आन्दोलन को संचालित किया।

सन् १९३४ में जय प्रकाश नारायण ने बम्बई में कांग्रेस समाजवादी दल का पहला अधिवेशन कराया। जे० पी० ऐसी समाजवादी विचारधारा के प्रतिपादक थे, जिसमें उत्पादन के साधनों का समाजीकरण सन्निहित था। चौधरी साहब समतावादी होते हुए भी व्यक्तिगत प्रयत्न और स्वतन्त्रता के कट्टर पक्षपाती थे। भारत में सूखा मौसम होने के कारण हमेशा से कृषि के साधन तो सहकारी रहे मगर जोत सदा व्यक्तिगत रही। उन्होंने उसमें भाग नहीं लिया। वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में अपने को सौंपे हुए काम को करते रहे और हरिजन उद्धार के प्रचार में जुटे रहे।

स्वायत्त शासन संस्थाओं में अंग्रेजों की ऐसी नीति थी कि उनके राजभक्त और जी हुजूर लोग ही थोड़ी बहुत सफलता से उनकी इच्छानुसार काम कर पाते थे। इन संस्थाओं पर शासन का कठोर नियंत्रण भी रहता था। चौधरी साहब को उपाध्यक्ष और अध्यक्ष पद से स्वायत्त संस्थाओं की कार्य प्रणाली को देखने समझने का अवसर मिला। वे वक्त काटने वाले जन प्रतिनिधि नहीं थे। हजारों लाखों दिलों के अंधेरे को अपने में समेटे वे अध्यक्ष पद से सीमित अधिकार क्षेत्र द्वारा ही प्रकाश फैलाने की चेष्टा

करने लगे। काम की उन्हें लगन थी। कानूनी ज्ञान था ही। अतः बोर्ड का काम तेजी से चलने लगा। एक दिन वह गाजियाबाद से ठीक दस बजे मेरठ में बोर्ड के कार्यालय पहुंच गये। अधिकारी और कर्मचारी देर से आने के आदि थे और कार्यालय प्रायः खाली था। चौधरी साहब ने देर से आने वालों से कोई क्रोध नहीं दिखाया। उनके मौन ने जादू किया और वे जब तक अध्यक्ष पद पर काम करते रहे, तब तक कर्मचारी समय से आते रहे। इस बात की मेरठ में बड़ी शोहरत फैली।

उन्होंने बोर्ड के स्कूलों, सड़कों और दूसरे कार्यों का जिले भर में निरीक्षण किया। बाद में उनकी यात्रा का भत्ता बिल बनाकर अधिकारियों ने उनके हस्ताक्षर हेतु प्रस्तुत किया। यात्रा का बिल ठीक नहीं बनाया गया था। उसमें रात्रि निवास और ठहराव ज्यादा दिखा कर चौधरी साहब को अधिक धन दिलाने की तरकीब की गयी थी। चौधरी साहब ने बिल को सही बनाने के लिए लौटा दिया। बोर्ड के अधिकारियों और कर्मचारियों की आंखें आश्चर्य से फट गयीं। ऐसा किसी ने कभी नहीं किया था। सभी अधिकारी और कर्मचारी सचेत हो गये। अपने पर कठोर नियंत्रण ही सबसे बड़ा अनुशासन है। दूसरे तो चुम्बक से खिंचे आते हैं। बोर्ड के कर्मचारियों को नयी दिशा मिली, काम करने का नया वातावरण मिला। यह थे चौधरी चरण सिंह प्रशासन के अपने प्रारंभिक काल में ही।

उन्होंने चपरासियों से निजी काम लेने पर भी कड़ाई की। अंग्रेजों के जमाने में चतुर्थ श्रेणी के चपरासी घरेलू टहलुओं की तरह इस्तेमाल किये जाते थे। आज भी इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। गरीब चपरासी अपनी मजबूरी से अधिकारियों और बड़े बाबुओं के घर का काम करते हैं। स्वतन्त्र देश में यह व्यक्ति का समादर नहीं। मगर सरकार के उच्चतम अधिकारी और पदाधिकारी ऐसा करते हैं, तब क्या किया जा सकता है? नये अध्यक्ष अपना निजी काम किसी चपरासी से नहीं कराते थे– इसका असर जरूर पड़ा। लेकिन विष इतना व्याप्त था कि वह मिटा नहीं। जब तक वेतनमानों में असमानता कम नहीं की जाती और शासन के हर कर्मचारी की गरिमा नहीं रखी जाती, तब तक वह मिटेगा भी नहीं। विदेश के उन्नत राष्ट्रों में चपरासी का पर्याय होता ही नहीं। यहां गरीबी के गहन प्रकोप के कारण चतुर्थ श्रेणी को हटाना भी समीचीन नहीं। हां, उन्हें बन्धुआ मजदूर नहीं बनाये रखने का प्रयास सफलता से हो सकता है।

जिला बोर्ड में चौधरी साहब को ग्रामीण जनता की व्यावहारिक कठिनाइयों का तथा शासन द्वारा उनके निराकरण का कुछ परिचय मिला। गांव तब तक साधारण विकास से भी अछूते थे। वहां आने–जाने के साधन नहीं बराबर थे। सड़कें बहुत कम थीं। बैलगाड़ी खेतों और

डगरों से आती जाती थी। गांवों में पीने के लिए अच्छे पानी की कल्पना भी नहीं थी। गांवों में पढ़ाई–लिखाई के साधन भी नहीं के बराबर थे। गांव अन्धकार और अंधविश्वास में सिमटे पड़े थे। लेकिन सदियों के इन पुरातन गांवों में तब तक बची रह गई थी– नैतिकता और ईमानदारी। पूर्वजों से मिली संस्कृति के बल पर अंधेरों से घिर कर भी व्यक्ति और समूह में चारित्रिक उजागर थी। आर्थिक स्थिति विपन्न थी। कृषि के तरीके भी पुराने थे और घोर मंदी तथा शोषण से गांवों की बहुसंख्यक जनता अत्यधिक पीड़ित थी। उन्हें यह भी नहीं सूझता था कि वे क्या करें? अंग्रेजी शासन अपने स्वार्थ के लिए भारत की सर्वाधिक आबादी को अज्ञान और गरीबी के गड्ढे में दबाये रखना चाहता था। जनसमूह पंगु बना रहे, कुछ बोले नहीं, तभी अंग्रेजी शासन भारत में अक्षुण्ण रह सकता है। महात्मा गांधी की तरह चौधरी साहब ने अंग्रेजों की चाल को समझा और गांवों के विकास के। लिए अपनी सारी शक्ति लगा दिया। चौधरी साहब स्वयं गांव के थे। गाजियाबाद में वकील के नाते पास–पड़ोस के अंचलों की समस्याओं से भी परिचित थे। वह किसान मजदूरों की लाचारी को समझते थे। इस मानवता का विकास उनकी क्रय शक्ति को बढ़ा कर ही किया जा सकता है – यह बात उनके मन में बैठ गयी। अंग्रेजों के आने से पहले गांवों में खेती के साथ–साथ बढ़ईगिरी, लोहारगिरी, दर्जीगिरी, कुम्हारी, रंगरेजी, चर्मकारी, कताई आदि अनेक प्रकार के गृह उद्योग चलते थे। इस तरह कोई गांव केवल कृषि पर निर्भर नहीं रहता था और किसी भी गांव या उसके निवासी को बेरोजगारी का मुंह नहीं देखना पड़ता था। अंग्रेजों ने अपना शासन चन्द्र–सूर्य यावत् सुरक्षित रखने के लिए सबसे पहला कार्य जो किया वह था गांवों के उद्योग–धन्धों को नष्ट करना। चौधरी साहब का अनुभवगम्य चिन्तन घरेलू उद्योग धंधों और कुटीर उद्योगों के प्रति और अधिक सजीव हो उठा। जिला बोर्ड में इस दिशा में कुछ उल्लेखनीय कर पाना सम्भव नहीं था क्योंकि बोर्ड का बजट बहुत छोटा होता था। इसके लिए विस्तृत क्षेत्र की जरूरत थी। जिससे गांवों को पुनः स्वावलम्बी बनाया जा सके। उसके लिए काम करने का भरपूर अवसर जल्दी ही आ निकला। फरवरी सन् 1937 के चुनाव में कांग्रेस ने उन्हें बागपत – गाजियाबाद क्षेत्र से प्रान्तीय धारा सभा का चुनाव लड़ने के लिए अपना उम्मीदवार घोषित किया। यह चुनाव क्षेत्र बहुत बड़ा था। आज इस क्षेत्र से विधान सभा के लिए आठ विधायक चुन कर आते हैं।

बड़े से बड़े कांग्रेसी भी इतने बड़े चुनाव क्षेत्र में खड़े होने से डरते थे। अंग्रेजों के प्रिय नवाब बागपत ने भी खड़े होने की हिम्मत नहीं की। अंग्रेजी शासन ने तब उनके खिलाफ वहां के एक जाट जमींदार को

लड़ाया। बड़े जमींदारों का प्रभाव तब तक मिटा नहीं था। पहले चुनावों में ग्रामीण क्षेत्रों से भी अधिकतर वे लोग ही चुने जाते थे। (सन् १९२३ के यू० पी० काउन्सिल के चुनाव में ७७ ग्रामीण सीटों से ५८ बड़े जमींदार चुने गये थे)। इस बार उन्होंने मुंह की खायी। वह बुरी तरह हार गये। चौधरी साहब अप्रत्याशित बहुमत से विदेशी शासन के उम्मीदवार के खिलाफ विजयी हुए। तब से वह इस क्षेत्र के आठ निर्वाचन क्षेत्रों में एक क्षेत्र छपरौलो से रिकार्ड तोड़ वोटों से जीतते चले आए। सन् १९७१ में भारतीय क्रान्ति दल के उम्मीदवार के रूप में वे ५२ हजार वोटों से जीते थे, जो हिन्दुस्तान का रिकार्ड था।

सन् १९३७ के चुनावों में कांग्रेस पार्टी को सब प्रान्तों में अप्रत्याशित सफलता मिली। भारत भर में कुल १५८५ सीटों में उन्हें ७११ सीटें मिली। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकांश उम्मीदवार समृद्ध किसान ही थे। साधारण हैसियत के किसानों को नहीं के बराबर संख्या में लड़ाया गया था। चौधरी साहब प्रतिभा सम्पन्न नौजवान थे। इसलिए कांग्रेस ने उन्हें अपना उम्मीदवार बनाया था। उनकी हैसियत साधारण थी। उनके पिता के पास कुल जमा दस या साढ़े दस एकड़ जमीन थी। चौधरी साहब तीन भाई थे। तीन सवा तीन एकड़ वाले किसान को विरोधियों ने ईर्ष्यावश ही बाद में बहुत बाद कुलक अर्थात् बड़ा जमींदार या उसका पोषक कहना शुरू कर दिया–जो नितान्त झूठ था।

प्रान्तीय धारा सभा को भी अंग्रेजी शासन ने सीमित अधिकार दिये थे। एक प्रकार से वह मात्र वाद–विवाद की संस्था थी और प्रभावकारी रूप में कुछ कर सकने में असमर्थ थी। वह चाहे जो प्रस्ताव पास करे, अंग्रेज शासक मनमानी करते थे। फिर भी कांग्रेस दल में एक–से–एक दिग्गज थे, जो अपनी बहसों से शासकों के दांत खट्टे कर देते थे। युवा चौधरी साहब भी उन्हीं दिग्गजों में से एक थे, जिनकी प्रतिभा की शुरू में ही बड़ी धाक जम गई थी।

एम० एल० ए० होते ही उन्होंने किसानों को अपनी भूमि पर स्वामित्त्व दिलाने के लिए एक बिल "Land Utilization Bill" का मसविदा तैयार कर सभी विधायकों को भेजा। उस बिल में हलधरों को जोत की जमीन पर स्वामित्त्व दिलाने का प्राविधान था। उसमें अपने लगान का दस गुना जमा कर देने से खेतों का मालिक बनने का प्राविधान था। सारे भारत में इस प्रकार का यह पहला प्रयास था। यहां यह उल्लेख जरूरी है कि उस दशक में अनाज का मूल्य पचास प्रतिशत से अधिक गिर जाने के कारण किसानों की आर्थिक दशा इतनी खराब हो गई थी कि वे लगान या मालगुजारी देने में भी

असमर्थ थे। अंग्रेज शासन को किसानों की नहीं, प्रत्युत अपने एजेन्टों – जमींदारों और ताल्लुकदारों को खुश रखने की पड़ी थी। इससे किसानों में बड़ी बेचौनी फैली। आन्ध्र प्रदेश में प्रो० एन० जी० रंगा ने इन्हीं कारणों से सन् १९३५ में एक सुदृढ़ किसान सभा स्थापित की। बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने भी इस दिशा में पहल की। सन् १९३६ में स्वामी सहजानन्द की अध्यक्षता में पहला अखिल भारतीय किसान सम्मेलन लखनऊ में सम्पन्न हुआ। उस सम्मेलन में भी जमींदारी खत्म करने की मांग की गई थी। किसानों का ऋण माफ करने तथा भूमिहीन किसानों को जमीन देने के साथ ही कृषि मजदूरी को उचित रूप में निर्धारित करने का प्रस्ताव भी पारित हुआ था। एक सितम्बर १९३६ को किसान दिवस मनाया गया था। लेकिन चौधरी साहब के उपर्युक्त बिल में किसानों को जोत की जमीन दिलाने की ठोस प्रक्रिया का पहला विवरण सन्निहित था। विदेशी शासकों ने उस बिल को जो जमींदारों और ताल्लुकदारों के विरुद्ध पड़ता, धारा सभा में पेश होने की अनुमति नहीं दी। आजादी के बाद उसी बिल के आधार पर जमींदारी उन्मूलन विधेयक में दस गुना जमा कराकर भूमि पर स्वामित्व का अधिकार पारित किया गया।

सक्रिय राजनीति में चौधरी साहब की प्रतिभा की ख्याति अब प्रदेश के बाहर भी फैलने लगी। अनबटे पंजाब में चौधरी छोटू राम ने किसानों की यूनयनिस्ट पार्टी का संगठन किया। आर्थिक कार्यक्रम के आधार पर हिन्दू–मुसलमानों की यह पार्टी इतनी संगठित हुई कि कांग्रेस को वहां पनपने का अवसर नहीं मिल पा रहा था। देश के बंटवारे के समय तक यूनियनिस्ट पार्टी पंजाब में बहुमत में रही। उसी पार्टी के सर सिकन्दर हयात खां और मलिक खित्र हयात खां थे। पंजाब के कांग्रेसी अपनी शक्ति बढ़ाना चाहते थे। रोहतक के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी पं० श्रीराम शर्मा ने यूनियनिस्ट पार्टी के विरोध में कांग्रेस को मजबूत बनाने के लिए पंजाब में भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में सभाओं और सम्मेलनों का आयोजन किया। उन सभाओं में चौधरी साहब को भाषण देने के लिए अनेक बार बुलाया गया। चौधरी साहब पंजाब गये और कांग्रेस के संगठन के प्रचार में उन्होंने बहुत मदद की। पं० श्रीराम शर्मा और पंजाब कांग्रेस के दूसरे पदाधिकारी इसके लिए चौधरी साहब के बड़े आभारी रहे।

चौधरी साहब आत्म–विज्ञापन से कोसों दूर रहकर कांग्रेस के प्रति बड़ी निष्ठा और लगन से रचनात्मक कार्यों द्वारा प्रचार कर रहे थे। इससे उनके काम का दायरा बड़ा होने लगा। उनकी प्रखर प्रतिभा के लिए गाजियाबाद तहसील का क्षेत्र अव छोटा साबित होने लगा था। कांग्रेस के

काम के लिए उन्हें हर दूसरे दिन मेरठ भी आना जाना पड़ता था। अतः मेरठ के कांग्रेस जनों विशेष कर श्री विष्णु शरण जी दुबलिश की सलाह पर वे सन् १९३९ में गाजियाबाद से मेरठ आ गये।

गाजियाबाद में चौधरी दम्पति को एक ममन्तिक दुःख भी सहना पड़ा। सन् १९३४–३५ में तीन पुत्रियों पर हुआ उनका अकेला लड़का साढ़े दस महीने का होकर अकस्मात् मर गया। बच्चा बड़ा स्वस्थ और सुन्दर था। उसे गाजियाबाद के उस वर्ष के “बेबी शो” में सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया था। चौधरी साहब ने अपने असह्य दुःख को कभी प्रकट नहीं होने दिया। श्रीमती गायत्री देवी और परिवार के दूसरे लोग उससे बहुत विह्वल रहे। मेरठ के व्यस्त और संघर्षपूर्ण जीवन में उस व्यक्तिगत दुःख को अधिकाधिक भूलने का भी अवसर मिला। वैसे चौधरी चरण सिंह सदा परिवार वर्ग के बच्चे–बच्चियों से असाधारण कोटि की ममता और स्नेह रखते थे। ऊंचे से ऊंचे पद पर व्यस्त से व्यस्त जीवन में शाम का समय वे पारिवारिक बच्चों के साथ खेलने में बिताते थे। यही उनका एकमात्र मनोरंजन है। इसमें क्या पहले पुत्र–वियोग के मर्मान्तक दुरूख की छाया नहीं निहित थी?

अध्याय ६

समरांगण: मेरठ में

(१९३९ से १९४७)

श्री विष्णु शरण जी दुबलिश मेरठ के क्रान्तिकारी आन्दोलन की उपज थे। काकोरी केस में उन्हें कालापानी की सजा मिली। ब्रिटिश शासन द्वारा वे इतने खतरनाक माने गये थे कि उन्हें गिरफ्तार करने के लिए एक अनाथालय को, जिसके वे संचालक थे, सशस्त्र सेना ने घेरा था। अण्डमान से छूटकर सन् १९३८ में जैसे ही वह वापस आये, शीघ्र ही मेरठ जिला कांग्रेस कमेटी के प्रधान चुन लिये गये। चौधरी लुत्फ अली खां उपाध्यक्ष थे। मेरठ में इन दो सज्जनों का सहयोग कांग्रेस के काम में चौधरी साहब के लिए सोने में सुहागा बना।

मेरठ कमिश्नरी का क्षेत्र था। अंग्रेजों की गोरी और हिन्दुस्तानी फौजों का वहां बड़ा केन्द्र था। प्रान्त के प्रशासकीय और सार्वजनिक महत्त्व के आधे दर्जन बड़े नगरों में उसकी गिनती होती थी। यहां कालेज थे। नौकर पेशा लोग फौज प्रशासन में साधारण तथा ऊंचे पदों पर बहुतायत से थे। वहां अन्य रोजगार–धन्धे, व्यापार आदि भी खासे थे। गन्ने का क्षेत्र होने के कारण यहां चीनी बनाने अथवा अन्य प्रकार के दूसरे भी कुछ कल–कारखाने थे। मोदी नगर का औद्योगिक केन्द्र विकसित हो रहा था। अपने पुराने इतिहास तथा दिल्ली के सान्निध्य के कारण मेरठ जिले की छोटी बड़ी हर घटना की उत्तर प्रदेश ही नहीं बल्कि दूर–दूर तक प्रतिक्रिया होती थी। यहां के लोग भी उद्यमी और जी–तोड़ मेहनत करने वाले थे। जाट बहुल क्षेत्र होने के कारण जन–जन में बराबरी और समादर का भाव था। जाटों का स्वाभिमान जगत प्रसिद्ध है। वह किसी भी हैसियत का क्यों न हो, किसी दूसरे से अपने को कदापि छोटा मानने को तैयार नहीं है। आंखें दिखा कर बड़ा से बड़ा उसे दबा नहीं सकता है। वह अपनी आन पर बलि होना जानता है। मेरठ में चौधरी चरण सिंह को पहली बार देश की स्वतन्त्रता के लिए अपनी जन्मजात प्रतिभा को जाज्वल्यमान रूप में प्रदर्शित करने का अनुकूल अवसर मिला। तहसील से कमिश्नरी के विस्तृत क्षेत्र में उनका आना गंगा की धारा का अपने जन्म के पहाड़ों के संकीर्ण कगारों को छोड़ कर हरिद्वार के सपाट मैदान में

पहुंचने के बराबर था। आगे धारा के पाट को अनंत समुद्र में मिलने तक निरन्तर चौड़ा ही होना था।

महात्मा गांधी के आन्दोलनों और जन–जागरण यात्राओं से स्वतन्त्रता की आवाज गांवों में तब तक गूंजने लगी थी। ब्रिटिश नीतियों की चौपालों में चर्चा होने लगी थी और स्वतन्त्रता की आकांक्षा जन–जन में जाग उठी थी। लेकिन उस संघर्ष की सक्रियता से सर्व साधारण और गांव अभी अछूते थे। चौधरी चरण सिंह जैसे श्रेष्ठ कार्यकर्ता को भी वहां काम करने में बड़े साहस, धैर्य और निपुणता की जरूरत पड़ी। अंग्रेजी शासन की निरंकुशता और जुल्मों से गांवों में बहुत डर व्याप्त था। फौज से लौटे हुए पेंशनर यह कहते हुए सुने जाते थे कि अंग्रेजी साम्राज्य का सूरज दुनिया में कहीं डूबता नहीं, वह गांधी जी और उनके अनुयायियों के चरखे व सत्याग्रह के डर से हिन्दुस्तान नहीं छोड़ जायेंगे। गांवों में कांग्रेस की सभा करना बहुत आसान नहीं था और कुछ गांवों में यह सम्भव नहीं हो पाता था। गांवों में कुछ लोग तो कांग्रेसजनों के आदर सत्कार से हिचकते थे। चौधरी साहब को याद था कि कतिपय गांवों में असयद्यपि यह पूछा, भारतीय मय पहुंचने पर भी लोगों ने नाश्ता पानी तक के लिए मना किया जो परम्परा के बिलकुल प्रतिकूल था। चौधरी साहब ने फिर भी हिम्मत से कांग्रेस जनों के साथ गांवों का दौरा किया और कांग्रेस के कार्यक्रमों का प्रचार किया। कार्यक्रम स्वतंत्रता के संघर्ष के लिए जन–जागरण के साथ–साथ हरिजनों तथा दूसरे गरीब लोगों के उत्थान के लिए रचनात्मक कामों को करना था। चौधरी साहब को इसकी लगन भी थी। उनकी देख–रेख में कांग्रेस का काम उतनी ही तेजी से चल निकला, जितनी उसमें बाधाएं थीं। नतीजा यह हुआ कि अंग्रेजी शासन की नजरों में वह खटकने लगे। सन् १९४० में बिना किसी आन्दोलन या सत्याग्रह के उन्हें अकारण गिरफ्तार कर लिया गया। उनके खिलाफ कोई आरोप था नहीं। इसलिए कुछ सप्ताह के हीला–हवाला के बाद वह जेल से छोड़ दिये गये। यह उनकी दूसरी जेल यात्रा थी।

बागपत क्षेत्र से एम०एल०ए० होने के कारण भी उन्हें कांग्रेस और सार्वजनिक महत्त्व के दूसरे कामों में अधिकाधिक समय देना पड़ा। मेरठ में कांग्रेस को मजबूत बनाने के लिए पहला काम कांग्रेस का भवन बनवाना था। चौधरी साहब ने इसके लिए चन्दा इकट्ठा किया और भवन का निर्माण शुरू कराया। वह भवन आज भी मेरठ में कांग्रेस का केन्द्र है। वे सार्वजनिक कामों में इतने व्यस्त रहने लगे कि वकालत करने के लिए उन्हें समय ही नहीं मिलता था। वैसे वे मेरठ में, असौढा हाउस के, तब के मेरठ कांग्रेस के नेता चौधरी रघुवीर नारायण सिंह, की कोठी के

बाहरी हिस्से में वकील का तख्ता लगाकर रहते थे। दीवानी की अदालतों में बाबू घासी राम से, जो अपनी विद्वता के कारण पंडित कहलाते थे, उन्होंने वकालत करने का प्रशिक्षण पाया। लेकिन जब सारा समय कांग्रेस को समर्पित था, तब वकालत पनपती कैसे? वकालत के पेशे में एकांगी निष्ठा और मनोयोग चाहिए। वह संभव नहीं हुआ और वकालत उनके लिए मात्र औपचारिकता रह गयी। उनका तन–मन कांग्रेस के राष्ट्रीय कामों में जुटा था। धन उनके पास था नहीं, धन की परवाह भी नहीं थी। पत्नी का स्त्री–धन, आभूषण आदि, जेल यात्रा के दिनों में बिक चुके थे। पिता अथवा किसी कुटुम्बी से धन पाने का सवाल नहीं था। उन्हें आर्थिक कष्ट भोगना पड़ा। सोना तपने से ही निखरता है। वे सहज ही मेरठ कांग्रेस के चौधरी रघुवीर नारायण सिंह की जगह सर्वमान्य नेता बन गये। चौधरी रघुवीर नारायण सिंह बड़े जमींदार थे, धनाढ्य थे। अंग्रेजों की मजिस्ट्रेसी और राय बहादुरी भी उन्होंने छोड़ी थी। मेरठ के गांधी आश्रम वाले भवन को खरीदने में उन्होंने मदद की थी। सामन्ती जमींदार होने के कारण राजनीति की प्रेरणा में उनका वर्ग बोध भी शामिल था। चौधरी चरण सिंह गरीब किसान के बेटे थे। प्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार ने उनके बारे में सच लिखा है कि देहाती रहते दीखने में उन्हें तनिक भी उद्यम नहीं करना पड़ता था। किसानों ने, मजदूरों ने, उन्हें अपना जैसा पाकर सिर आंखों पर बिठाया। जिले के नेतृत्व के दृष्टिकोण में शुभ परिवर्तन आया। उत्पीड़ित किसानों को उनका अपने बीच का सच्चा पथ–प्रदर्शक मिला। इससे मेरठ और पास–पड़ोस के जिलों में, निकटवर्ती पंजाब के क्षेत्रों में, मेरठ की कांग्रेस की ख्याति खूब फैली। एक प्रभावशाली जमींदार के स्थान पर एक साधारण किसान के नौजवान बेटे का मेरठ कांग्रेस का अध्यक्ष बन जाना कोई साधारण बात नहीं थी। तब तक जमींदार और बड़े वकील ही कांग्रेस पर छाये हुए थे। इस दूरगामी महत्त्व की घटना से मेरठ क्षेत्र में राष्ट्रीय कांग्रेस की जड़ें बहुत गहरी हुई। साथ ही एक प्रगतिपूर्ण परम्परा का श्रीगणेश हुआ। मेरठ षड्यंत्र केस के अभियुक्त स्वर्गीय पंडित गौरीशंकर ने देश–काल की चर्चा करते हुए उक्त परिवर्तन मेरठ जैसे फौजी क्षेत्र के लिए अत्यन्त प्रगतिशील घटना बताई थी। उनकी राय में मेरठ ही नहीं, सारे पश्चिमोत्तर उत्तर प्रदेश में इसका असर पड़ना अवश्यम्भावी था। चौधरी साहब सन १९२९ से ४५ तक लगातार मेरठ कांग्रेस के अध्यक्ष या महामंत्री रहे। मेरठ की आम खुशहाली में वहां के निवासियों की परम्परागत अनुदारिता का मनोहारी समावेश थी। बड़े जमींदार के स्थान पर एक अत्यन्त साधारण किसान के बेटे का नेतृत्व आसानी से कब स्वीकार होता? राजभक्त नवाब, राजा

और जमींदारों को तब अंग्रेजी शासन का प्रश्रय प्राप्त था। जन साधारण को जीवन की सुविधाओं को शासन से प्राप्त कराने में उन्हीं लोगों का बोलबाला था। नेतृत्व स्वीकार इसलिए हुआ कि उस साधारण किसान के बेटे में निस्वार्थ सेवा की अद्भुत क्षमता थी। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मेरठ कांग्रेस का भवन है, जिसे चौधरी रघुवीर नारायण सिंह जैसे बड़े जमींदार नहीं बना पाये थे। लेकिन किसान के बेटे ने बनवा दिया। किसान के बेटे को उस भवन को बनाने के लिए साधारण – किसान व मजदूरों ने खुले हाथ चन्दा दिया और भवन का निर्माण प्रारम्भ हुआ। उसने स्वयं किसी पूंजीपति श्रीमान् से चंदे की याचना नहीं की। यह छोटी लगने वाली बात चौधरी साहब के चरित्र की निधि बनी।

सन् १९३७ के चुनावों के बाद उत्तर प्रदेश में भी पंडित गोविन्द वल्लभ पंत के नेतृत्व में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बना। सन् १९३५ के गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट के अधीन मंत्रिमंडल के सीमित अधिकार थे। अंग्रेज गवर्नरों को मंत्रिपरिषद् की सलाह को मानने या न मानने का विशेषाधिकार था। अधिकतर अंग्रेज अधिकारी ही जिलाधीश और पुलिस कप्तान थे। वही कमिश्नर होते थे। एकाध जिलों में अगर हिन्दुस्तानी कलेक्टर तैनात था, तो वहां अंग्रेज पुलिस अधीक्षक जरूर नियुक्त किया जाता था। वह पुलिस अधीक्षक अपने वरिष्ठ अधिकारी, हिन्दुस्तानी कलेक्टर, पर कड़ी निगाह रखता था। सीमित अधिकारों में भी जनता के उत्साह को ध्यान में रखते हुए कांग्रेसी मंत्रिमंडल कुछ न कुछ जनोपयोगी काम करते ही। मंत्रिमंडल प्रदेश के प्रशासन में कोई मौलिक परिवर्तन ला ही नहीं सकता था। वह जनहितकारी कार्यों में चुस्ती भी नहीं ला पाया। पुलिस के रवैये में राई–रत्ती फर्क नहीं आया। चौधरी साहब ने संबंधित मंत्रियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। कोई असर नहीं पड़ा। तब उन्होंने कांग्रेसी विधायकों के हस्ताक्षर कराकर कांग्रेसी विधायक दल की बैठक की मांग की। पंत जी बैठक के विरुद्ध थे। लेकिन बैठक बुलाई गयी। उसमें चौधरी चरण सिंह ने सोदाहरण पुलिस और प्रशासन की कार्यप्रणाली की कटु आलोचना की। आलोचना इतनी सारगर्भित थी जैसे वह अविश्वास का प्रस्ताव हो। बैठक की मांग का यह उद्देश्य कदापि नहीं था। मंत्रिपरिषद् के सदस्य और पंत जी बहुत मर्माहत हुए। पंत जी ने जवाहर लाल जी को बुलाया। नेहरू ने चौधरी साहब को मिलने का समय दिया, उनके तर्कों को ध्यान से सुना और उन पर यथोचित कार्यवाही करने का आश्वासन दिया। विधायकों में ही नहीं, जनसाधारण में भी चौधरी साहब की मांग के औचित्य का समर्थन हुआ। दूसरे सूबों में भी यह खबर फैली और वहां मंत्रिमंडलों में काम की नयी भावना जगी।

मंत्रिमंडल भी सजग हुए। जनमानस को प्रजातंत्र प्रणाली के नये रूप का अनुभव हुआ। इससे आजादी के संघर्ष को बल और विश्वास मिला। इंग्लैंड के सूरज के कहीं भी अस्त न होने का हव्वा मिटने लगा। लोगों में उत्तरदायी प्रशासन की उत्कंठा तीव्र होने लगी।

उत्तर प्रदेश की कांग्रेसी मंत्रिपरिषद् ने किसानों के लगान में कमी करने और कृषि के लिए दूसरे कल्याणकारी कार्यों को करने की योजना बनाई थी। मुस्लिम लीग के सदस्यों ने उसमें अवरोध पैदा किया। हुआ यह था कि चुनाव लड़ते समय मुस्लिम लीग और कांग्रेस में नवाब छतारी के "राष्ट्रीय कृषक दल" के खिलाफ एक सामंजस्य स्थापित हो गया था। नवाब छतारी का दल अंग्रेजी शासन के इशारे पर चुनाव के मैदान में उतरा था। मुस्लिम लीग और कांग्रेस दोनों के ही उम्मीदवार राष्ट्रीय कृषक दल के उम्मीदवारों के खिलाफ लड़े। चुनाव में मुस्लिम सीटों पर मुस्लिम लीग के अधिक सदस्य जीत कर आये। कांग्रेस के मुस्लिम सदस्य दो तीन ही चुनाव जीते। मुस्लिम लीग मंत्रिमंडल में साझेदारी के रूप में भाग लेने को तैयार थी। नेहरू ने उन्हें कांग्रेस विधायक दल का सदस्य बन जाने की शर्त रखी। यह शर्त स्वीकार न होती, न हुई। राजनीति विशारदों का कहना था कि मुस्लिम लीग की अड़ियल कटुता यहीं से उभरी जो बाद में देश के लिए घातक साबित हुई। मुस्लिम लीग इस तरह मंत्रि–परिषद् में शामिल नहीं हुई और उसने मंत्रिपरिषद् के काम में रोड़े अटकाना शुरू कर दिया। अंग्रेज गवर्नर और अधिकारी कांग्रेसी मंत्रिमंडल के खिलाफ थे ही। उत्तर प्रदेश के हिन्दू पूंजीपतियों ने भी अपना सामंती ऐश्वर्य सुरक्षित रखने के लिए मुस्लिम लीग की सहायता की। मंत्रिपरिषद् के अधिकार सीमित थे ही। उनके अधिकारों की सही स्थिति इसी से प्रकट हो जायेगी कि राजनैतिक कैदियों को छोड़ने की उत्तर प्रदेश और बिहार के कांग्रेसी मंत्रिमंडलों की संस्तुति को गवर्नरों ने नहीं माना। इस पर दोनों मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र भी दिया। बाद में गवर्नरों ने उनकी संस्तुति स्वीकार की और राजनैतिक कैदी छोड़े गये। एक तो मंत्रिपरिषदों के सीमित अधिकार दूसरे बड़े जमींदारों और पूंजीपतियों का कांग्रेस के प्रगतिपूर्ण कामों का प्रकट अप्रकट विरोध जनोपयोगी कामों की गति बहुत फीकी हो रहीं। तब तक १ सितम्बर १९३९ को दूसरा विश्वव्यापी महायुद्ध छिड़ गया। ब्रिटिश हुकूमत ने बिना मंत्रिपरिषदों या हिन्दुस्तान के किसी भी राजनैतिक नेता या संगठन की राय लिए, भारत को अपनी ओर से युद्ध में झोंक दिया।

राष्ट्रीय कांग्रेस तानाशाही ताकतों के विरुद्ध थी। लेकिन दूसरे देश या देशों के लिए लड़ मरने से उसे क्या मिलता, जब हिन्दुस्तान स्वयं ही

पराधीन था। उसने मांग की कि ब्रिटेन युद्ध के उद्देश्यों की साफ–साफ घोषणा करे, हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता का स्वरूप चाहे वह युद्ध की समाप्ति के बाद का ही क्यों न हों, स्पष्ट करे तथा युद्ध में तत्काल जनसहयोग प्राप्त करने के लिए केन्द्र और प्रान्तों में उत्तरदायी स्वशासन स्थापित करे। लड़ाई के प्रारम्भ होते ही इंग्लैंड में प्रजातंत्र की बड़ी–बड़ी बातें बनायी गयी थीं। वे कोरी छलावा निकलीं। चर्चिल की सरकार हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता क्या स्वायत्तता भी कदापि नहीं देना चाहती थी। चर्चिल की यह घोषित नीति थी कि जर्मनी को हरा कर अगर ब्रिटिश साम्राज्य और अधिक जबर्दस्त न बनाया जा सके, तब भी उसे अफ्रीका और एशिया में अपना साम्राज्य ज्यों का त्यों कायम रखना चाहिए। हिन्दुस्तान की स्थिति बड़ी विकट बन गयी। वह तानाशाह ताकतों को हराने के पक्ष में था, लेकिन अपनी आजादी चाहता था। इंग्लैंड की साम्राज्यशाही से महात्मा गांधी को उनके इस संकट के समय में हिन्दुस्तान के लिए बड़ी आशा थी। अंग्रेजी नीति से उन्हें गहरी निराशा हुई। उन्होंने विश्व के अमेरिका आदि दूसरे शाक्तिशाली देशों का हिन्दुस्तान की कठिन समस्या की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए व्यक्तिगत सत्याग्रह का ऐलान किया। व्यक्तिगत सत्याग्रह इसलिए कि इंग्लैंड और मित्र राष्ट्रों को युद्ध के परिचालन में कोई कठिनाई न पड़े। अंग्रेजी शासन ने महात्मा जी का अभीष्ट नहीं समझा। वह कांग्रेस की मांग पर उसके विरुद्ध तुला बैठा था। उसने देश भर के प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। चौधरी चरण सिंह मेरठ भू–भाग के एक छात्र नेता थे। उन्हें नवम्बर सन् चालीस के अन्तिम सप्ताह में गिरफ्तार कर एक साल की सजा दे दी गयी। पहले वे मेरठ की सेन्ट्रल जेल में रखे गये। उनको वहां रखना निरापद न समझ कर बरेली की जेल को भेज दिया गया। वहां से साल भर की सजा काट कर वे अक्तूबर सन् 1941 में छूटे।

जेल में इस बार चौधरी साहब ने भारतीय संस्कारों पर एक पुस्तक लिखी। आर्य समाजी होने के नाते उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश का गहरा अध्ययन किया था। परिवार वर्ग की भारतीय परम्परा थी ही। पांच बच्चों के पिता बनकर उनकी शिक्षा–दीक्षा के लिए भारतीय आचारों को क्रमबद्ध कर यथार्थ रूप में बच्चों को सिखलाने की जरूरत पड़ी। बरेली जेल में उन्होंने अपनी 'शिष्टाचार' का अधिकांश भाग लिख डाला। जेल में सवेरे बैरक के पास एक पेड़ के नीचे कम्बल पर बैठ कर 'शिष्टाचार' का अधिकांश भाग लिखा गया। बाद में उन्होंने कलकत्ता स्थित 'इम्पीरियल लाइब्रेरी' से इस विषय पर अंग्रेजी की विलायत में प्रकाशित एक पुस्तक यह देखने को मंगायी कि उसमें कुछ नयी बात हो तो उसे भी पुस्तक

में जोड़ें। कोई ऐसी बात मिली नहीं जो भारतीय संस्कारों में शामिल की जा सके।

सन् १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन में जब वे गिरफ्तार हुए तो उनकी भैंस कुर्क की गई और 'शिष्टाचार' की पाण्डुलिपि भी पुलिस उठा ले गयी। जेल से उस बार छूटने के बहुत बाद वह पाण्डुलिपि लोटायी गयी। यह 'शिष्टाचार' अपने विषय की यथार्थ अनुभवों पर आधारित एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक था। बच्चों क्या युवकों के विकास के लिए परम्परागत भारतीय आचार–व्यवहार की ऐसी कोई दूसरी पुस्तक नहीं।

उनके जेल से लौटने तक युद्ध का नक्शा तेजी से बदल चुका था। यूरोप में मित्र राष्ट्रों के छक्के छूट रहे थे। जर्मन सेनाएं पूरे यूरोप को रौंद कर इंग्लैंड की खाड़ी के पार उस पर आक्रमण करने को बन्दूकें साधे तैयार थीं। मध्य एशिया तथा मिस्र के मैदान में, जर्मनी तेजी से अंग्रेजों को पीछे धकेल रहा था। इधर सुदूर पूरब में जापान अंग्रेजों के तथाकथित दुर्भेद्यगढ़ सिंगापुर और मलाया को जीत कर साथ ही बोर्नियो, जावा, सुमात्रा आदि द्वीप समूहों को स्वतंत्र करा कर बर्मा में हिन्दुस्तान की सरहद की ओर तेजी से बढ़ रहा था। इतने आसन्न खतरे पर भी चर्चिल और ब्रिटिश हुकूमत स्थिति की गम्भीरता को अनदेखा कर रहे थे। भारत की स्वतंत्रता को वह किसी भाव स्वीकार नहीं करना चाहते थे। इससे भारतीय जन मानस में अंग्रेजों के खिलाफ आग धधकने लगी। उसकी आंच देश के बाहर भी पहुंची। सिंगापुर में जापानियों को आत्म–समर्पण करने वाली अंग्रेजों की हिन्दुस्तानी सेना ने जनरल मोहन सिंह के नेत्तृत्व में अपने को 'आजाद हिन्द फौज' घोषित कर जापानी सहयोग से भारत पर स्वदेश को स्वतंत्र कराने के लिए आक्रमण करने की घोषणा की। चर्चिल और ब्रिटिश हुकूमत को अब लेने के देने पड़े। उन्होंने सर स्टेफोर्ड क्रिप्स को भारतीय स्वायत्तता की एक योजना के साथ भारतीय नेताओं से समझौता वार्ता करने के लिए भेजा।

क्रिप्स योजना के दो भाग थे। पहले भाग में हिन्दुस्तान का भावी संविधान बनाने का तरीका बताया गया था। दूसरे भाग में वायसराय की तत्कालीन काउन्सिल (कार्यकारी परिषद्) में भारतीय सदस्यों के नामांकन का प्राविधान था। काउन्सिल के बारे में केवल इतना बताया गया था कि उसको सेना और युद्ध सम्बन्धी अधिकार नहीं रहेंगे। इससे यह समझा गया कि दूसरे भागों में काउन्सिल को पूरा अधिकार होगा। बाद में विचार–विमर्श और सवाल–जवाब से यह धोखा निकला। पहले भाग में भी एक चाल चली गयी थी। उसमें कहा गया था कि लड़ाई के बाद हिन्दुस्तान को दूसरे उप–निवेशों की तरह अधिकार दिया जाएगा

और वह चाहे तो ब्रिटिश साम्राज्य से अलग हो सकेगा। विधान बनाने के लिए केन्द्रीय परिषद् के सदस्यों का प्रांतीय धारा सभाओं द्वारा चुनाव का प्राविधान था। किन्तु उसमें प्रान्तों को भारतीय संघ से अलग होने का अधिकार भी दिया गया था। इससे ब्रिटिश हुकूमत की चाल एकदम साफ हो गयी। प्रान्तों को भारतीय संघ से अलग होने का अधिकार देकर उन्होंने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग को प्रकारान्तर से स्वीकार कर लिया। मुस्लिम लीग ने सन् १९४० के अपने अधिवेशन में भारतवर्ष का विभाजन करने अथवा पाकिस्तान बनाने का प्रस्ताव पारित कर दिया था। कांग्रेस ऐसी क्रिप्स योजना को स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। अमेरिकन सरकार ने वार्ता विफल न होने देने के लिए अपने एक प्रतिनिधि कर्नल जॉनसन को भारत भेजा। उन्होंने सर स्टेफोर्ड क्रिप्स और हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियों को सलाह–सुझाव देकर योजना को सफल कराने की कोशिश की। उसका भी कोई लाभ नहीं हुआ। क्योंकि रक्षा विभाग और भारत की स्वतंत्रता के विषय पर चर्चिल और ब्रिटिश हुकूमत टस से मस नहीं हुए। क्रिप्स ने पहले राष्ट्रीय सरकार की बात की थी। वह भी झूठ निकली। इस तरह क्रिप्स योजना एक उलझाने वाली बात साबित हुई। उसे कांग्रेस ने अन्त में अस्वीकृत कर दिया। क्रिप्स अपनी योजना को लेकर तत्काल वापिस चले गये।

महात्मा गांधी और कांग्रेस के लिए हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहना सम्भव नहीं था। हिन्दुस्तानी फौज युद्ध में इंग्लैंड के लिए लड़ रही थी। मित्र राष्ट्रों की सब उपनिवेशों को स्वतंत्र करने की घोषणा हो चुकी थी। भारत ही उससे अलग क्यों रखा गया था? अतः गांधी जी ने 8 अगस्त सन् १९४२ को आधी रात के कुछ ही देर बाद बम्बई में अंग्रेजों को "भारत छोड़ो" का नारा दिया और भारतीयों को "करो या मरो" का। सवेरा होने भी नहीं पाया कि महात्मा गांधी और कांग्रेस कार्यकारिणी के दूसरे सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। महात्मा गांधी का उक्त नारा तथा 9 अगस्त सन् १९४२ का दिन भारत के इतिहास में अनन्त काल तक स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। "करो या मरो" ने सारे भारत को एक जुट बनाकर ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ खड़ा कर दिया। देश भर में यातायात के साधनों, जैसेः रेल, पुल, डाक, स्टेशन, तार आदि को तोड़ा–फोड़ा जाने लगा। उद्देश्य यह था कि अंग्रेजी सेनाओं को लड़ाई के विभिन्न क्षेत्रों में रसद और सामरिक महत्त्व के दूसरे सामान न पहुंच सकें। कितने ही जिले, तहसील और अंचल अपने को स्वतंत्र घोषित कर समानान्तर सरकार चलाने लगे। बंगाल में तामलुक, महाराष्ट्र में सतारा, उड़ीसा में तालचेर और उत्तर प्रदेश में बलिया में स्वतंत्र राष्ट्रीय सरकारें बनीं।

श्री जय प्रकाश नारायण ने हजारीबाग जेल की कड़ी सुरक्षा के बावजूद सफलतापूर्वक भाग कर भारत छोड़ो आन्दोलन का उत्तर प्रदेश – बिहार में ही नहीं, भारत भर में एक कुशल नेतृत्व का उदाहरण पेश किया। पूर्वी उत्तर प्रदेश में बलिया जिले के सभी थाने राष्ट्रीय सरकार के कब्जे में हो गये। बिहार में अस्सी प्रतिशत थानों पर जनता का कब्जा हो गया। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में इस आन्दोलन को चलाने की जिम्मेदारी चौधरी चरण सिंह ने उठाई। वे भूमिगत होकर गुप्त रूप से गांव–गांव, अंचल अंचल घूम–घूम कर आन्दोलन का नेतृत्व करते रहे। उनके मेरठ के प्रमुख सहयोगी दाहा निवासी चौ० हरि सिंह और दोघट के श्री पृथ्वी सिंह प्रेमी ने उनके काम में बड़ी मदद की। मवाना, सरधना, हापुड़ और गाजियाबाद तहसीलों में यातायात सम्बन्धी तोड़फोड़ का काम प्रभावी रूप से हुआ। भमौरी गांव में पुलिस की गोली से पांच स्वतंत्रता सेनानी शहीद हुए। हापुड़ में भी गोली वर्षा हुई। कमिश्नरी के दूसरे जिलों में भी आन्दोलन की बड़ी सरगर्मी रही। मेरठ जिले में आन्दोलनकारियों का इतना आतंक छाया था कि चौ० हरि सिंह और पृथ्वी सिंह प्रेमी को सेना ने गिरफ्तार किया। चौधरी साहब की भी सरगर्मी से तलाश हो रही थी।। मेरठ के लोगों का विश्वास था कि अंग्रेजी शासन ने चौधरी साहब को देखते ही गोली से मार डालने (Shoot At sight) का आदेश पारित किया था। यह असम्भव नहीं, क्योंकि मेरठ अंग्रेजों की हिन्दुस्तानी फौज की भरती का उत्तर भारत में सबसे बड़ा केन्द्र था, उन दिनों गांवों में भरती और युद्ध के खिलाफ एक नारा था– "न एक पाईन एक भाई।" पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पहले से ही फौज में नौकरी की परम्परा थी। चौधरी के निकट के रिश्तेदार भी फौज में थे। जो हो, आन्दोलन के कारण अब फौज में भर्ती के लिए जवान मिलने मुश्किल हो गये। पश्चिमी जिलों में चौधरी चरण सिंह की संगठन शक्ति का नया रूप प्रकट हुआ। वे भूमिगत होते भी अत्यन्त लोकप्रिय हो गये। बगावत के इन्हीं दिनों में चौधरी साहब दाहा गांव की सभा में भाषण कर रहे थे, कि पुलिस से आमना–सामना हो गया। पुलिस ने सभास्थल को एक प्रकार से चारों ओर से घेर लिया। परन्तु सभा की भीड़ और लोगों का उत्साह देखकर पुलिस चुपचाप खड़ी रही। चौधरी साहब भाषण समाप्त कर एक घोड़े पर चढ़ कर वहां से चलते बने। अपनी सुरक्षा को ध्यान में रखकर पुलिस ने उस समय उनका पीछा भी नहीं किया। चौधरी साहब की तलाश किन्तु बहुत तेज हो गयी। २३ या २४ अगस्त को वे गिरफ्तार कर लिये गए। और उन्हें १५ महीने के लिए राजबन्दी बना दिया गया। सन् १९३७–३९ की धारा सभा में चौधरी चरण सिंह को अपने अब तक के अध्ययन और चिन्तन

को किसानों की समृद्धि के लिए रूप देने का अभिनव अवसर मिला। १९३७ के चुनावों में कांग्रेस ही नहीं, दूसरे राजनैतिक दलों ने भी कृषि और किसानों की दशा को बेहतर बनाने के लिए अपनी योजनाओं की घोषणा की थी। बिहार में स्वामी सहजानन्द की किसान सभा उग्र रूप धारण कर रही थी। बंगाल में श्री फजलुल हक के नेतृत्व में कृषक प्रजा पार्टी ने जमींदारों को बिना मुआवजा दिए खत्म करने का ऐलान किया था। उत्तर प्रदेश और दूसरे कांग्रेसी प्रदेशों की घोषणा में लगान को कम करने तथा कृषि की उपज बढ़ाने का कार्यक्रम था। चौधरी चरण सिंह, लेकिन पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने एम० एल० ए० की हैसियत से जमींदारी समाप्त करने की योजना को ठोस और यथार्थ रूप दिया। उन्होंने कृषि पदार्थों की बिक्री के सम्बन्ध में भी एक विधेयक तैयार किया। इस विधेयक में उत्पादक किसानों को बिचौलियों, दलालों और व्यापारियों की लूटपाट से बचाने का प्राविधान था। हिन्दुस्तान टाइम्स के मार्च ३१ और अप्रैल १, १९३९ के संस्करण में उनका इस विधेयक पर विशद लेख प्रकाशित हुआ। पंजाब प्रान्त में उसी आधार पर सन् १९४० में एक कानून बना दिया गया। दूसरे प्रान्तों में भी कई जगह यह कानून बनाया गया। उत्तर प्रदेश में श्री चन्द्रभान गुप्त के नेतृत्व में जमींदार और बड़े खेतिहर सदस्यों ने विधेयक में प्रस्तावित मसविदे का कड़ा विरोध किया। उनका कहना था कि किसान अब धनी और शिक्षित हो गये हैं और वे व्यापारियों का सामना करने में समर्थ हैं उन्होंने बिल को किसानों पर अनावश्यक नियन्त्रण बताया। वे यह भूल गये कि पूर्ण विकसित और शिक्षित देशों में भी ऐसे अधिनियम बनाये गये थे। उक्त बिल सन् १९६४ में चौधरी साहब के कड़े प्रयत्नों से कानून बन पाया। सन् १९३९ में चौधरी साहब ने एक भूमि उपयोग बिल (Land Utilisation Bill) भी तैयार कर धारा सभा के सदस्यों में वितरित कराया और धारा सभा में उसे प्रस्तुत करने का नोटिस दिया। उन दिनों किसी बिल को सभा में पेश करने के लिए गवर्नर की सहमति जरूरी थी। उस बिल में असामी या काश्तकारों को अपने लगान का दस गुना जमा करके अपनी जोत की जमीन पर स्वामित्त्व पाने का प्राविधान रखा गया था। मुस्लिम लीगी सदस्य तो जमींदार और बड़े खेतिहर थे ही, कांग्रेस दल में भी कुछ जमींदार और धनी–मानी सदस्य शामिल थे। तालुकदार, जमींदार और बड़ी खेती वालों को अंग्रेजी शासन ने अपनी राजभक्ति बरकरार रखने के लिए बनाया था। वे उनके पृष्ठ पोषक थे। अंग्रेज गवर्नर ऐसे प्रगतिशील बिल पर सहमति कैसे देता? अतएव यह बिल धारा सभा में पेश नहीं हो पाया। चौधरी साहब ने इस विषय पर "जिसकी करणी, उसकी भरणी" के नाम से एक विस्तृत लेख लिखा जो कई समाचार पत्रों

में प्रकाशित हुआ। लखनऊ के कांग्रेसी दैनिक 'नेशनल हेराल्ड' में उन्होंने '"जोतों के एक निश्चित न्यूनतम सीमा के उप–विभाजन पर रोकथाम" के शीर्षक से भी एक लेख लिखा। आगे चल कर उनके यही विचार अथवा सिद्धान्त जमींदारी उन्मूलन विधेयक और भूमि सुधारों के आधार बने। उग्रवादी स्वामी सहजानन्द जी की किसान सभा तथा श्री फजलुल हक की जमींदारी खत्म करने की घोषणा नारा मात्र रह गये अर्थात् कार्यरूप में परिणित न हो पाये। उधर चौधरी साहब ने अपने कुशल निर्देशन में एक जुलाई सन् १९५२ में भारत भर में सबसे पहले उत्तर प्रदेश में जमींदारी खत्म करके दिखा दी। तभी से वे किसानों के मसीहा माने जाने लगे। आगे जमींदारी उन्मूलन के प्रकरण में इसकी विस्तृत समीक्षा की जाएगी।

गांवों की उन्नति के लिए उन्हीं दिनों चौधरी साहब ने एक दूसरा क्रांतिकारी सिद्धान्त प्रतिपादित किया। गांवों की उन्नति तभी सम्भव है, जब वहां के लिए काम करने वाले कर्मचारी और उच्च अधिकारी वहां के निवासी हों और वहां की दयनीय दशा से घनिष्ट रूप से परिचित हों। धारा सभा की सन् १९३९ की एक बैठक में उन्होंने प्रस्ताव रखा था कि उच्च स्तरीय प्रशासनिक कर्मचारियों में कम से कम पचास प्रतिशत खेतिहर अथवा गांवों के निवासी हों। उक्त प्रस्ताव पर विचार तक नहीं किया गया। आजादी के बाद सन् १९४७ के कांग्रेस विधान मंडल में उन्होंने यह प्रस्ताव दुबारा रखा और अपने कांग्रेस दल के सदस्यों में अपने प्रस्ताव के समर्थन में एक दस पृष्ठ लम्बा लेख भी तकसीम कर दिया। परन्तु नतीजा पहले ही जैसा रहा। सन् १९६१ की एक गणना के अनुसार देश भर में अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के ११.५ प्रतिशत सदस्य ही गांवों के निवासी थे। शेष नगरों के विभिन्न व्यवसायों और पेशों की पृष्ठिभूमि से आये थे। आजादी के पहले तो यह अनुपात और कम रहा होगा। कांग्रेस पार्टी में सामन्ती सदस्यों की बहुतायत थी। वे अपने बच्चों को शक्ति–परन्तु शाली पदों से वंचित रखने का प्रस्ताव कैसे स्वीकार कर सकते थे? गांवों की दशा अगर अपेक्षित रूप में नहीं बदली तो अचरज क्या था? महात्मा जी की दूरदर्शी दृष्टि अब तक कहां सार्थक हो पायी?

धारा सभा ने सन् १९३९ में, चौधरी साहब का बनाया एक ऋण निर्मोचन विधेयक जरूर पारित कर दिया। उसमें किसानों को ऋण मुक्त होने और खेतों को नीलामी से बचाने में काफी मदद मिली। धनी–मानी कांग्रेसी विधायक यहां तक कि समाजवादी नेता आचार्य नरेन्द्र देव इस बिल के भी कड़े विरोध में थे। चौधरी साहब ने नेशनल हेराल्ड में सोलह पृष्ठों का अकाट्य तर्कों पर आधारित एक अत्यन्त विश्लेषणात्मक लेख लिखा, जिसके फलस्वरूप अन्त में उस विधेयक का विरोध करने का

किसी को साहस नहीं हुआ। भूमि सुधारों और जमींदारी उन्मूलन में आगे चौधरी चरण सिंह ने जो क्रान्तिकारी काम किया, उसके चिन्तन की स्पष्ट रेखा उपर्युक्त विधेयकों में दिखायी पड़ती है। चौधरी चरण सिंह का चिन्तन नारों से नहीं बना था। वह यथार्थ रूप में परिणत हुआ जैसा दूसरे किसी का नहीं हुआ।

नवम्बर १९४३ में चौधरी साहब नजरबन्दी से मुक्त होकर घर आये और आते ही कांग्रेस के रचनात्मक कार्यों में पहले की तरह जुट गये। युद्ध की स्थिति तेजी से पलट रही थी। अमेरिका मित्र राष्ट्रों अर्थात् जर्मनी विरोधी देशों का नेता बन युद्ध में उनकी ओर से कूद पड़ा था। हिटलर ने रूस के विरुद्ध अपनी बन्दूकों का रुख मोड़ कर जो गलती की थी, उसका फल उसे अब मिलने लगा था। रूस ने स्टालिन ग्राड में ऐतिहासिक मोर्चा बांध कर जर्मनी को पीछे ढकेला और उस पर प्रत्याक्रमण किया। जर्मनी और धुरी राष्ट्र अप्रत्याशित तेजी से नष्ट होने लगे। सन् १९४४ में जर्मनी प्रायः नष्ट हो गया, हिटलर ने आत्महत्या कर ली और ७ मई सन् १९४५ को जर्मनी ने आत्मसमर्पण कर दिया।

पूरब में जापान बर्मा को रौंद कर हिन्दुस्तान की सरहद पर आ डटा था। गांधी जी और दूसरे नेता जेलों में बन्द थे। अंग्रेजों की युद्ध में मदद करने की कोई बात बन नहीं रही थी। प्रत्युत भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ने एक नया मोड़ ले लिया। सिंगापुर में जनरल मोहन सिंह की जगह नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज और सरकार का नेतृत्त्व संभाल लिया। उन्होंने "दिल्ली चलो" का नारा दिया। आजाद हिन्द फौज जापानी सहयोग से भारत की सीमा पर उसे स्वतंत्र कराने के लिए आक्रमण करने की तैयारी में जुटी। हिन्दुस्तान में जन–जीवन त्रस्त हो गया था। हद–दर्जे की महंगाई बढ़ गयी थी। बंगाल में अभूतपूर्व अकाल पड़ा। उस अकाल में गैर–सरकारी सूत्रों के अनुसार लगभग ५० लाख लोग कालकवलित हो गये। सरकारी आंकड़ों के अनुसार वह संख्या बीस लाख थी। यह सही है समूचे युद्ध में इतने लोग नहीं मरे थे। मगर ब्रिटिश सरकार को इससे कोई वास्ता नहीं था। वह बंगाल के समुद्री तट को साधनविहीन करने में लगे थे, जिससे जापानियों को यहां पहुंचने पर कोई सुविधा नहीं मिले।

आजाद हिन्द फौज जापानी सहयोग से मणीपुर–कोहिमा और अक्याब–काक्स बाजार के पूर्वी क्षेत्र में सफलतापूर्वक आ गयी थी और घमासान युद्ध हो रहा था। ऐसा लगा कि अंग्रेजी सेना ब्रह्मपुत्र नदी के उस पार के क्षेत्र असम को छोड़ कर इस पार चली आएगी। तभी अमेरिका ने जापान और उसके समुद्री प्रदेशों पर भारी आक्रमण कर दिया। जापान

को अपने हवाई जहाज स्वदेश की सुरक्षा के लिए बर्मा से जापान वापस करने पड़े। इससे आजाद हिन्द फौज की रसद और सैन्य सामग्री की आपूर्ति में बड़ी बाधा पड़ी। ऊपर से समय से पहले ही भयंकर बरसात ने उन्हें तबाह किया। बिना खाद्य सामग्री और सामरिक अस्त्र–शस्त्र के आजाद हिन्द फौज के मर मिटने की नौबत आयी। इसी समय अमेरिकन मदद से हिन्दुस्तान में स्थित अंग्रेजों की सेना ने बर्मा पर प्रत्याक्रमण किया। आजाद हिन्द फौज की वे बटालियन्स, जो मरने से बच गयी थीं और जो थाईलैण्ड की ओर भाग नहीं सकी थी, गिरफ्तार हो गयीं। फिर भी अभी तक जापान कहीं हारा नहीं था। अमेरिका ने तब जापानी नगरों हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम का विस्फोट किया। विस्फोट के संग ही लाखों लोग मरे, लाखों विकलांग बने और ऐसा लगा कि मनुष्य जाति ही वहां मिट जाएगी। तब बौद्ध धर्म मानने वाले जापानी राष्ट्र ने मानव मात्र की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए अगस्त १९४५ में आत्मसमर्पण कर दिया। इस तरह मित्र राष्ट्र रूस और अमेरिका के कारण लड़ाई में विजयी हुए।

जर्मनी के समर्पण के बाद ही ब्रिटिश प्रधान मन्त्री चर्चिल ने इंग्लैण्ड में आम चुनाव कराया। उन्हें आशा थी कि युद्ध में विजय के कारण उनकी पार्टी को बहुमत मिलेगा। हुआ उसका उल्टा। मजदूर दल भारी बहुमत में आया। मजदूर दल और चर्चिल के अनुदार दल में हिन्दुस्तान को पराधीन बनाये रखने की नीति में कोई मौलिक अन्तर नहीं था। लेकिन मजदूर दल को दुनिया की नजर में अपनी प्रगतिशीलता का भी परिचय देना था। चर्चिल ऐसे नहीं थे। चर्चिल ने ५ मार्च सन् १९४५ को वाइसराय वेवल से तार द्वारा यह पूछा था कि "गांधी अब तक मरा क्यों नहीं?" मजदूर दल के नेता मेजर एटली ने वाइसराय वेवल से वाइसराय की कौन्सिल को उत्तरदायी कार्यकारी परिषद् बनाने को कहा। मुस्लिम लीग के मिस्टर जिन्ना को फिर अड़ने का मौका मिला। जिन्ना ने कौन्सिल में हिन्दू सदस्यों के बराबर मुसलमान सदस्यों की नियुक्ति की मांग की। उन्होंने यह भी मांग की कि लीग के अलावा कोई दूसरा दल मुसलमान सदस्य को काउन्सिल में मनोनीत न करे। कांग्रेस ने इसे अस्वीकृत कर दिया। वाइसराय की कार्यकारी परिषद् नहीं बन सकी।

युद्ध को जीत कर भी इंग्लैण्ड युद्ध में हार गया था। उसकी आर्थिक स्थिति अगर चौपट नहीं तो विपन्न हो चुकी थी। उसके पास उपनिवेशों में राज–काज और सेना का काम चलाने को युवक–युवती नहीं बचे थे। उधर, हिन्दुस्तानी सेना आजाद हिन्द फौज के जोश और उत्सर्ग से अभिभूति थी। नौ सेना और हवाई फौज ने विद्रोह भी किया। मजदूर दल

की सरकार ने अमेरिका और दूसरे मित्र राष्ट्रों की सलाह पर शांति– पूर्ण ढंग से भारत से चले जाना अच्छा ही समझा। मजदूर सरकार ने तब भारतीय नेताओं से समझौता वार्ता करने के लिए ब्रिटिश मंत्रिमंडल के तीन सदस्यों को भारत भेजा। उनमें सर स्टेफोर्ड क्रिप्स (Stafford Cripps) भी थे। मजदूर सरकार ने यह भी घोषणा की कि अल्पसंख्यक समुदाय को हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता में अनधिकृत व्यवधान उत्पन्न नहीं करने दिया जायेगा। इस घोषणा से देश में आजादी की नई लहर प्रभावित हुई। साथ ही मुस्लिम लीग ने भी साम्प्रदायिक भेदभाव उभारने में और

अपनी रोड़ा अटकाने वाली नीति में और अधिक जोर पकड़ा। मंत्रिमंडल मिशन ने कांग्रेस और लीग से वाइसराय की कार्यकारी परिषद् को तत्काल बनाने को कहा। लीग पुरानी शर्तों पर अड़ी रही। तब मिशन ने वाइसराय से कांग्रेस के द्वारा ही परिषद् के सदस्यों को मनोनीत करने को कहा। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता की रूपरेखा बनाने के लिए एक संविधान सभा को तत्कालीन विधान सभाओं से चुनने की भी योजना प्रस्तुत की। कांग्रेस ने अपने मनोनीत सदस्यों से कार्यकारी परिषद् को बनाया। विधान सभाओं से संविधान सभा के चुनाव भी सम्पन्न हुए। उस चुनाव में मुस्लिम सीटों पर भारी बहुमत से लीग के उम्मीदवार ही चुने गये। और आम सीटों पर कांग्रेसी। मुस्लिम लीग ने अपनी रोड़ा अटकाने वाली नीति को व्यावहारिक रूप में चरितार्थ करने के लिए बाद में कार्यकारी परिषद् में भाग लिया।

बहुत वाद–विवाद के बाद कांग्रेस एवं लीग में कोई समझौता होते न देख कर मिशन ने भारतीय संघ के अन्तर्गत हिन्दू और मुस्लिम बहुल प्रान्तों की दो इकाई की संस्तुति की। संघ के पास केवल यातायात, सुरक्षा विभाग, विदेश विभाग तथा वित्त विभाग को केन्द्रीय सूची में ही रखा गया था। शेष सभी अधिकारों के प्रयोग में प्रांतों को स्वतंत्र सत्ता प्रदान की गयी थी। इस संघीय योजना में प्रान्तों को यह भी अधिकार दिया गया था कि बाद में वे एक इकाई से दूसरी इकाई में जा सकेंगे। कांग्रेस और लीग दोनों ने यह योजना स्वीकार कर ली। लीग ने उक्त योजना इसलिए स्वीकार की क्योंकि प्रान्तों को हिन्दू – बाहुल्य और मुस्लिम बाहुल्य इकाइयों में बांटा गया था। उन्हीं दिनों जवाहर लाल नेहरू ने बम्बई में पत्रकारों के समक्ष एक वक्तव्य दिया कि संविधान सभा को भारत की संघीय और हिन्दू तथा मुस्लिम बाहुल्य प्रान्तीय योजना को बदलने, संशोधित करने या रद्द करने का पूरा अधिकार होगा। इस वक्तव्य से मिस्टर जिन्ना को संघीय योजना से मुकर जाने का स्वर्ण अवसर मिला। उन्होंने अपनी स्वीकृति वापिस ले ली और देश के विभाजन पर जोर दिया।

ब्रिटिश मंत्रिमंडल मिशन की योजना के अन्तर्गत सन् १९४६ में प्रान्तीय धारा सभाओं के नये चुनाव भी कराये गये। उसमें भी मुस्लिम सीटों पर सीमा प्रान्त को छोड़कर प्रायः हर प्रान्त में लीगी उम्मीदवारों को बहुतायत से चुना गया, मुस्लिम लीग ने अपना यह दावा कि मुसलानों के एक मात्र प्रतिनिधि वही हैं, इस तरह प्रमाणित कर दिया। मुस्लिम लीग ने संविधान सभा का बहिष्कार किया। केन्द्र की अन्तरिम सर कार में भी वह इस तरह काम करने लगे कि सरकार का काम ही न चल पाये।

सन् १९४६ के चुनाव में भी चौधरी चरण सिंह अपने क्षेत्र से भारी बहुमत विजयी होकर धारा सभा में आये। इसके पहले सन् ३७ के चुनाव में वे देख चुके थे कि चुनाव क्षेत्र में वोटरों से सम्पर्क करने के लिए बहुत धन की जरूरत पड़ती है। उसके लिए चन्दा लेना अनिवार्य हो जाता है। सन् १९३७ में श्री जी० डी० बिड़ला ने कांग्रेस चुनाव फंड में पांच लाख रुपये दिये थे। श्री आर० के० डालमिया ने बिहार के कांग्रेस के कुल धन ३७००० में अकेले २७००० रुपये चन्दा दिया था। सत्ता से काला–बाजारियों, व्यापारियों के अनैतिक गठबंधन को चौधरी साहब ने तब भी स्वीकार नहीं किया था। राजनीति में पूंजीपतियों के अनैतिक तरीकों से कमाये गये धन को उन्होंने देश के दूरगामी हित के विलकुल विरुद्ध माना। तभी से अपने चुनाव क्षेत्र में उन्होंने गरीब किसान, मजदूरों और साधारण लोगों से ही चन्दा स्वीकार किया। महात्मा गांधी के इस दृष्टिकोण को वह समझते थे कि स्वतंत्रता के संघर्ष में देश के हर वर्गों का सहयोग जरूरी है। लेकिन पूंजीपतियों की गिरफ्त में खास कर ऐसे जिनका एक पांव अंग्रेजी सरकार की ड्योढ़ी पर और दूसरा महात्मा गांधी के आश्रम में रहता था, राजनीति को थमा देना वे जनता के हित में कदापि नहीं मानते थे। तभी से पूंजीपति वर्ग/सम्पन्न वर्ग से कभी कोई चन्दा या उपहार स्वीकार न करने की उनकी दृढ़ नीति बन गयी। फरवरी ४४ में पूना के आगा खां महल में कस्तूरबा की मृत्यु हो गयी, कस्तूरबा की प्रतिष्ठा तब तक सारे देश की माता के रूप में हो चुकी थी। मेरठ में उनकी स्मृति में एक अस्पताल स्थापित करने के लिए चन्दा जमा करने की एक सर्वदलीय "माता कस्तूरबा फंड" कमेटी बनी। मेरठ के सुप्रसिद्ध नागरिक पंडित सीता राम उसके अध्यक्ष चुने गये। कमेटी में मेरठ के दूसरे शीर्षस्थ गण्यमान्य नागरिक भी थे। कमेटी ने इस काम में अपेक्षित तत्परता नहीं दिखायी। तब चौधरी साहब को ही यह जिम्मेदारी निभानी पड़ी। उन्होंने थोड़े दिनों में ही ६३००० रु० चन्दे में इकट्ठा किया। इसमें भी अपने आदर्श पर वे अडिग रहे। मोदी नगर के सुप्रसिद्ध उद्योगपति प्रस्तावित कस्तूरबा अस्पताल में अपनी माता के नाम पर एक कमरा

रखाने के लिए मनचाही धनराशि चन्दे में देने को तैयार थे। चौधरी साहब ने उसे सधन्यवाद अस्वीकार कर दिया। सम्पूर्ण चन्दा स्वेच्छा से केवल किसान, मजदूर और साधारण लोगों से ही स्वीकार किया गया। उसी धन से बड़ौत में माता कस्तुरबा डिस्पेंसरी चलायी गयी जो आज भी सरकारी तत्त्वावधान में चल रही है।

मजदूर सरकार अब सच्चाई से भारत की स्वतंत्रता को स्वीकार करने को तैयार थी। लड़ाई में उसे जन–धन का बड़ा नुकसान हुआ था। अमेरिका भारत की आजादी पर जोर दे रहा था। भारत की सेना भी आजादी की मांग कर रही थी। नौ सेना और हवाई सेना में इसलिए विद्रोह भड़क चुका था। मुस्लिम लीग की रोड़े अटकाने वाली नीति से ब्रिटिश सरकार भी बहुत निराश हुई। तब उसने घोषणा की कि अंग्रेजी सरकार १५ जून सन् १९४८ के पहले हिन्दुस्तान को जिसे या जिनको वे चाहें, उसे या उनको दे कर यहां से चले जाएंगे। विनाशकारी सम्भावना थी। इससे अंग्रेजों से हुई संधि की शर्तों के अनुसार हर देशी रियासत स्वतंत्र हो जाती। इसी तरह देश खंड–खंड बंट जाता। कांग्रेस पार्टी के लिए ब्रिटिश हुकूमत की इस घोषणा ने एक भारी संकट पैदा कर दिया। महात्मा गांधी ने कुछ दिनों पहले ही साफ–साफ कहा था कि उनकी देह का विभाजन करके ही देश का बंटवारा हो सकता है। राष्ट्रीय कांग्रेस विवश होकर मुस्लिम लीग की विभाजन की मांग पर गम्भीरता से सोचने लगी।

इस वातावरण में मुस्लिम लीग ने देश के विभाजन की मांग को स्वीकृत कराने के लिए हिन्दुओं के खिलाफ सीधी कार्यवाही की घोषणा की। १६ अगस्त सन् १९४५ को बंगाल की लीगी सरकार के सहयोग से कलकत्ता में अभूतपूर्व हत्याकांड प्रारम्भ हो गया, जो दूसरे नगरों में फैला। कुछ दिनों बाद नोआखाली में मुसलमानों ने हिन्दुओं पर आक्रमण किया। उसकी प्रतिक्रिया बिहार में हुई। उन्हीं दिनों गढ़मुक्तेश्वर के मेले में आये हुए तीर्थयात्रियों ने मुसलमानों पर आक्रमण किया। चौधरी चरण सिंह और उनके सहयोगी मेरठ में ऐसा होते देख दहल उठे। उन्होंने साहस और निर्भीकता से मुसलमानों की रक्षा की और पास–पड़ोस के गांवों में शान्ति स्थापित कर हिन्दू–मुस्लिम सौहार्द स्थापित किया।

इन्हीं दिनों २५ मई से ४ जून सन् १९४६ तक प्रान्तीय धारा सभा में मुस्लिम लीगी सदस्यों ने पाकिस्तान की मांग के समर्थन में पानीपत की चौथी लड़ाई की चुनौती तीखे शब्दों में दी। उन्होंने ओछी बात कही कि "हमने हिन्दुस्तान पर आठ सौ साल राज्य किया।" लीगी सदस्यों के भाषण सबको बुरे लगे। किन्तु सभी मौन बने रहे। चौधरी चरण सिंह से नहीं

रहा गया। उन्होंने जवाबी भाषण में कहा कि हिन्दुस्तान के बहुसंख्यक मुसलमान मुसलमानी शासन काल में धर्म परिवर्तन से मुसलमान बने हैं। वे इसी धरती से पैदा हुए हैं, उन्होंने नहीं, बल्कि विदेशी, तुर्की, खिलजी और मुगलों ने इस देश पर शासन किया। हिन्दू से बने मुसलमानों को इन विदेशियों ने अपने राज्य या दरबार में किसी ऊंचे पद पर नहीं रखा। यह मुसलमान उसी तरह पीड़ित और गुलाम रहे, जैसे हिन्दू और दूसरी जातियां। बात सच है। हिन्दू से बने मुसलमानों की वह दलील ऐसी ही थी, जैसे हिन्दुस्तानी, ईसाइयों की हो अगर वे यह दावा करें कि हिन्दुस्तान पर ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय से आजादी के दिन तक उन्होंने शासन किया।

जो हो, राष्ट्रीय कांग्रेस ने अन्ततः देश को खंड—खंड होने से बचाने के लिए पाकिस्तान की मांग को स्वीकार कर लिया। चौधरी साहब उन दिनों अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे। आज के दिल्ली स्थित रामजस कालेज (तब स्कूल) के प्रांगण में अखिल भारतीय कांग्रेस की बैठक हुई। उसमें विभाजन का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। केवल 58 सदस्यों ने प्रस्ताव के विरुद्ध में वोट दिया था, जिनमें स्वर्गीय पुरुषोत्तम दास जी टंडन और चौधरी चरण सिंह प्रमुख थे।

१५ अगस्त को आजादी आयी। सारे हिन्दुस्तान में अपार खुशी मनाई गई। चौधरी चरण सिंह के मेरठ में भी स्वतंत्रता का महोत्सव विपुल गरिमा से मनाया गया। चौधरी साहब का हृदय मगर भरा रहा। उन्हें याद था कि उत्सव में उनका दिल बिलख रहा था और आंखें सजल थीं। आज तो उत्तर प्रदेश के कुछ मुसलमान भी, दो राष्ट्र के सिद्धान्त और विभाजन की निन्दा करते हैं, चौधरी साहब ने तभी कहा था कि एक ही वंश—वृक्ष के भिन्न धर्मावलम्बी भाइयों का विभाजन दोनों देशों को हमेशा संतप्त रखेगा।

अध्याय ७

स्वतंत्रता के बाद उत्तर प्रदेश मंत्रिमंडल में

(सन् १९४७ से १९६६)

सन् १९३७ की धारा सभा और उसके बाद के किसानों के उत्थान के लिए प्रयत्नों तथा मेरठ क्षेत्र में कांग्रेस के सुदृढ़ संगठन और सार्वजनिक सेवा से सन् १९४६ के चुनावों के बाद बने प्रान्त के अन्तरिम मन्त्रिमंडल में चौधरी चरण सिंह की प्रतिभा को अनदेखा नहीं किया जा सका। फिर भी उन्हें पूर्ण सक्षम मंत्री नहीं बनाया गया। उन्हें केवल माल विभाग का सचिव नियुक्त किया गया। १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत स्वतंत्र हुआ और नया संविधान लागू हो गया। उत्तर प्रदेश का मंत्रिपरिषद् पूर्ण सक्षम मन्त्रिमंडल बना। चौधरी चरण सिंह तब भी मंत्री नहीं बनाये गये। क्योंकि तब कांग्रेस विधायक दल में स्वतंत्रता संग्राम के वरिष्ठ सेनानी मौजूद थे। साथ ही कांग्रेस में तब तक धनपतियों और बड़े जमींदारों का ही प्रभाव था। वे चरण सिंह जैसे प्रगतिशील विचारों के धरती के लाल को पूरा अधिकार कब सौंपते? वे सभा सचिव ही रहे। पहले वे माल विभाग में थे। अब उन्हें स्वायत्त शासन और स्वास्थ्य विभाग में बदल दिया गया। वे स्वास्थ्य विभाग के स्वतंत्र चार्ज में रखे गये। इस तरह इस विभाग के काम में उन्हें मंत्री का पूरा अधिकार दिया गया। सितम्बर १९४७ से मई १९४८ तक ही वे इन विभागों में रह पाये। १९४८ में मुख्यमंत्री स्वर्गीय गोविन्द वल्लभ पंत ने उन्हें अपना सभा सचिव नियुक्त किया। इस बार उन्हें न्याय और सूचना विभाग सौंपा गया। सूचना विभाग के वे स्वतंत्र चार्ज में रखे गये।

अगस्त १९४७ के पहले से ही देश के बंटवारे की विनाश लीला प्रारम्भ हो गई थी। पश्चिमी पंजाब, पाकिस्तान में हिन्दू और सिख लूटे मारे जा रहे थे। पूर्वी पंजाब में मुसलमानों के साथ ऐसा ही हो रहा था। दोनों ओर से शरणार्थी ट्रेनें खून से लथपथ बंटवारे की सीमा को पार करती थीं। कई ट्रेनों में केवल मुर्दा लाशें ही आयीं। मिस्टर जिन्ना की बनायी हुई दो राष्ट्र वाली नीति का नतीजा हिन्दू–मुस्लिम परिवारों के इधर से उधर आने–जाने तथा अभूतपूर्व मार–काट के रूप में प्रत्यक्ष आ गया। अंग्रेज

अधिकारियों को इस होलिका दाह में आहुति डालनी ही था। वे दुनिया को दिखाना चाहते थे कि उनकी बात कि हिन्दू और मुसलमान कभी साथ नहीं रह सकते, कितनी सच थी। पाकिस्तान बनने के बाद मिस्टर जिन्ना ने कश्मीर को हड़पने के लिए कबीले हत्यारों को आगे भेज कर पीछे से पाकिस्तानी सेना द्वारा कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। कहा गया था कि स्वतंत्रता की देवी रक्त मांगती है। इधर मार–धाड़ और उधर कश्मीर पर हमला, इन दोहरी विकट परिस्थितियों से अनबंटे हिन्दुस्तान को स्वतंत्रता का मूल्य चुकाना पड़ा। उन प्रतिकूल और भीषण परिस्थितियों में देश की रेलगाड़ी पटरी पर चलाये रखना ही कम सराहनीय नहीं था। चौधरी चरण सिंह ने बंटवारे का विरोध किया था और जवाहर लाल नेहरू से स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले कहा था कि श्री जिन्ना पाकिस्तानी फौज से कश्मीर पर हमला करेंगे। नेहरू ने उनकी बात की गम्भीरता पर शायद उतना ध्यान नहीं दिया था, जितना देना चाहिए था। अन्यथा कश्मीर के महाराजा हिन्दुस्तान में पहले ही सम्मिलित हो जाते। पाकिस्तानी आक्रमण जब श्रीनगर के पास पहुंच गया, तब महाराजा ने हिन्दुस्तान में अपने राज्य के विलय की घोषणा की, जिससे हिन्दुस्तानी सेना उनके बचाव में रातोंरात हवाई जहाज से श्रीनगर पहुंच गयी। हिन्दुस्तानी जवानों के सामने पाकिस्तानी आक्रमणकारी भागे। दो–चार दिन में वे श्रीनगर से अपनी सीमा के पास वापिस पहुंच गये। वे सीमा पार कर गये होते, अगर श्री नेहरू सेनापतियों की सलाह को अमान्य कर युद्ध विराम की घोषणा न कर देते। कश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण के सवाल को वे राष्ट्रसंघ में ले गये, जिस छोटे हिस्से को खाली कराये बिना असमय में युद्ध विराम स्वीकार कर लिया गया, वह आज भी पाकिस्तान के अनधिकृत अधिकार में है। राष्ट्रसंघ ने भी आज तक इस पर कोई निर्णय नहीं दिया है। नेहरू स्वतंत्र हिन्दुस्तान के पहले प्रधानमंत्री होने के कारण देश पर छाए थे। महात्मा गांधी पाकिस्तान को दूसरा देश मानते ही नहीं थे। बंटवारा जो हुआ था, वह उनके लिए भाई–भाई का आपसी बंटवारा था। इसलिए नेहरू को कहीं से रोक नहीं मिली। सारा देश कश्मीर के एक हिस्से पर पाकिस्तान का अधिकार रह जाने से दुखी हुआ। चौधरी चरण सिंह भी बहुत दुखी हुए, क्योंकि उनकी समय से दी गयी सलाह पर नेहरू अगर समुचित ध्यान देते तो यह स्थिति नहीं आती। देश में हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिकता कश्मीर के कारण भी अभी शेष है। कश्मीर का एक वर्ग पाकिस्तान का पक्षधर है, जिसका प्रभाव सारे देश पर पड़ता है।

देश के विभाजन और कश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण से चौधरी चरण सिंह की आंखों में हिन्दुस्तान के इतिहास का अतीत आ झलका। जाति–पांति

ने देश को सदा कितना निर्बल बना कर रखा ! उन्होंने सभा सचिव होते हुए भी हिन्दुस्तान को शक्तिशाली बनाने के लिए १९४७ में राज्य के शासन से एक महत्त्वपूर्ण काम कराया। उन्होंने उत्तर प्रदेश में यह आदेश निर्गत कराया कि माल के अभिलेखों में नाम के संग हरिजनों के अतिरिक्त किसी की जाति की संज्ञा नहीं लिखी जाय। जाति–पांति मिटाने का देश भर में यह पहला शासकीय प्रयास था। स्वदेश को बलवान बनाने के लिए जाति–पांति को मिटाने का श्रीगणेश कभी तो करना ही था। उस विषय पर उन्होंने २२ मई सन् १९५४ को तत्कालीन प्रधानमंत्री को एक महत्त्वपूर्ण पत्र लिखा। उसमें राजपत्रित पदों (परिशिष्ट–अ) के अर्ध्यार्थियों के लिए अन्तरजातीय विवाह करने को आवश्यकीय योग्यता में रखने की संस्तुति की। इस पर कोई ध्यान ही नहीं दिया गया। सन्दर्भित पत्र दूरगामी महत्त्व का था और जाति–पांति की प्रथा को जल्दी से जल्दी तोड़ने का उसमें प्रस्ताव था।

सभा सचिव के नाते उनका दूसरा महत्त्वपूर्ण काम भूमि सुधारों और कृषि विकास से सम्बन्धित था। भूमि सुधार – मैनुअल में यह धारा बढ़ाई गई कि सार्वजनिक कामों के लिए जोत तभी अधिग्रहण की जायेगी, जब उसके आधे मील के अन्दर बन्जर या ऊसर भूमि प्रस्तावित निर्माण या कार्य के लिए उपलब्ध न हो। देखने में यह बहुत सरल और छोटा काम था, मगर उनके पहले भारत में इसे किसी ने सम्पन्न नहीं किया था। इससे हजारों किसानों को लाभ हुआ। आजादी के बाद पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा विकास के कार्यों में गतिशीलता अवश्यम्भावी थी। खेती की पैदावार और किसानों तथा मजदूरों की आमदनी को बढ़ाने का यह साधन आगे चल कर प्रभावी साबित हुआ।

चौधरी चरण सिंह के व्यक्तित्व की छाप सभा सचिव के रूप में प्रशासनिक और राजनैतिक भ्रष्टाचार पर भी शीघ्र ही पड़ने लगी। उनके विभागों के ही नहीं, दूसरे विभागों के लोग भी पहले से अधिक सतर्क रहने लगे। कांग्रेस जन स्वतन्त्रता संघर्ष के दिनों से महात्मा गांधी के नेतृत्त्व में ईमानदारी के साथ–साथ चारित्रिक नैतिकता पर भी अत्यन्त सावधान रहते थे। व्यक्ति के अन्तर और बाहर की पवित्रता से ही सेवा फलती–फूलती है। आजादी से पहले महात्मा जी के नेतृत्व में, इस पर अत्यधिक बल भी दिया जाता था। दुर्भाग्य से स्वतन्त्रता के बाद सत्ता की शक्ति का अनुभव कर कुछ उच्च पदस्थ राजनीतिज्ञ इस तरह उबले जैसे छोटी नदी बरसात की छिछली बाढ़ से उतरा आती है। बुलन्दशहर जिले के रामगढ़ रियासत को कोर्ट ऑफ वार्ड से बरी करने में उन्हें उच्च स्तर के भ्रष्टाचार की गंध मिली। सवाल को उन्होंने जोरदार रूप से उठाया, यहां तक कि अपना त्यागपत्र भी लिखकर मुख्यमंत्री के पास भेज दिया।

पंत जी ने त्यागपत्र वापस करा दिया, लेकिन चौधरी चरण सिंह का असली रूप सबकी आंखों में छा ही नहीं गया, संबन्धित मंत्री और दूसरे मन्त्रियों को खटकने लगा।

सभा सचिव को वही काम मिलता था, जो मंत्री उसके पास भेजे। रामगढ़ की घटना के बाद चौधरी साहब को महत्त्व का काम मिलना बन्द हो गया, क्रमशः काम ही मिलना बन्द हो गया। उन्होंने अगस्त ४८ में पहली बार और मार्च ५० में दूसरी बार इसी आधार पर अपना त्यागपत्र भेजा। मुख्यमंत्री पंत जी ने किसी भाव उनका इस्तीफा स्वीकार नहीं किया, लेकिन जिस तत्परता और निपुणता से चौधरी चरण सिंह काम का निस्तारण कर सकते थे, वह वातावरण उन्हें फिर भी नहीं मिला। पंत जी जानेमाने नेता थे और देश के शीर्षस्थ देशभक्तों में उनकी गणना होती थी। वे ख्याति प्राप्त वकील रह चुके थे और कुशल प्रशासक थे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे विभिन्न तथा परस्पर विरोधी मत–मतान्तरों का टकराव आसानी से बचा ले जाते थे। चौधरी साहब की प्रखर प्रतिभा को वे स्वीकार करते थे और उनकी दक्षता तथा लगन को वे अनदेखा नहीं करना चाहते थे। सन ५०–५१ में पंत जी ने चौधरी चरण सिंह को उनकी प्रतिभा के अनुकूल जमींदारी उन्मूलन का विधेयक तैयार करने की जिम्मेदारी दी। यह किसान के बेटे का मनपसंद काम था। भूमि सुधार का क्षेत्र चौधरी साहब के हृदय से जुड़ा था। राज्य में सदियों की सामंतशाही के साथ जमींदारी उन्मूलन का काम साधारण प्रतिभा का काम नहीं था। सामंतशाही ऐश्वर्य, वैभव और अधिनायकवाद से गहरी जड़ें जमा लेती है। चौधरी साहब ने दिन रात मेहनत करके और विधेयक के एक–एक अंश और अक्षर–अक्षर पर पूरा विचार–मनन करके उसके मसविदे को तैयार किया। यह कड़ी मेहनत का ही नहीं, देश के अस्सी प्रतिशत असली उत्पादकों के भविष्य के सही दृष्टि से संचालन का काम था। मंत्रिमंडल के सामन्ती सदस्य विधेयक में प्रस्तावित कितनी धाराओं से सन्तुष्ट नहीं रहे, लेकिन मुख्य मंत्री पंत जी ने चौधरी साहब के कठोर परिश्रम और उद्देश्यों को सराहा। विधेयक विधान सभा के समक्ष प्रस्तुत हुआ, मूल रूप में पारित हो कानून बना। उत्तर प्रदेश का यह विधेयक देश में इस प्रकार का पहला विधेयक था। वह दूसरे राज्यों के लिए आदर्श बना। इसका यह कारण था कि भूमि सुधारों से संबन्धित विभिन्न कानूनों की बारीकियों और उनके दीर्घ तथा लघु कालीन परिणामों से चौधरी साहब अपने गहन अध्ययन और अनुभव से पूरी तरह अवगत थे। इनका विस्तृत विवरण जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधारों के कानून और अधिनियमों में प्राप्त है। यहां इतना ही उल्लेख पर्याप्त है कि चौधरी

साहब के बनाये जमींदारी उन्मूलन कानून की किसी धारा या अधिनियम को न्यायपालिका ने रद्द नहीं किया।

उत्तर प्रदेश में एक जुलाई १९५२ को जमींदारी की प्रथा समाप्त हुई। वह दिन हिन्दुस्तान के किसान वर्ग तथा खेतिहर मजदूरों और भूमिहीन ग्रामीणों के लिए महान क्रान्तिकारी दिवस बना। जोत वाले किसानों को दसगुणा जमा का अपनी भूमि पर भूमिधारी का पूर्ण स्वामित्व मिला। काश्तकारों, खेतिहर मजदूरों को सीरदारी का हक मिला और दूसरे भूमिहीनों को जो शिकमी बंटाई आदि पर खेती करते थे, अधिवासी का अधिकार मिला। इस कानून का मूल सिद्धान्त था – 'जिसकी करनी, उसकी भरनी' – 'जिसकी जोत, उसकी धरती।' उक्त कानून से किसान वर्ग तथा खेती में काम करने वाले सभी मजदूरों को युगान्तकारी लाभ पहुंचा। खेतों को जोतने वाले असली किसान अपनी जोत की भूमि के सदियों बाद पहली बार पूरे मालिक बने। साथ ही ऐसे मालिक बने, जिसे कोई बेदखल नहीं करा सकता था। सन् 54 में विधेयक का संशोधन करके अधिवासियों को पूरा सीरदार बना दिया गया। आज अगर किसानों का आत्मबल विकसित है और उनकी दशा पहले से बेहतर है, तो यह उसी शुभ प्रयत्न का परिणाम है। उत्तर प्रदेश की हरित क्रान्ति का बीजारोपण भी तभी से कहा जा सकता है। क्योंकि अपनी भूमि पर एक किसान जी–तोड़ मेहनत कर बालू को भी सोना बना लेता है।

सारे देश ने स्वीकार किया कि उत्तर प्रदेश का जमींदारी उन्मूलन विधेयक हर कानूनी दृष्टि से स्वयं में परिपूर्ण था। चौधरी चरण सिंह ने इसके हर पहलू को रेडियो से, समाचार पत्रों में लिखकर तथा दूर–दूर के ग्रामीण अंचलों में सैकड़ों सभाओं में भाषण देकर जमींदारी उन्मूलन की प्रक्रिया को विस्तारपूर्वक किसानों को समझाया। इससे बड़ी आसानी और शान्ति से इतनी बड़ी क्रान्ति सम्भव हुई, जिसने गांवों के जीवन को आमूल परिवर्तित कर दिया। जिस किसी या वर्ग ने अगर वर्ग – संघर्ष या दूसरे प्रकार की अशान्ति की आशा की थी, उसे आश्चर्य से चकित हो जाना पड़ा। जापान में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जमींदारों ने स्वेच्छा से अपनी तालु – कदारियों को सरकार को सुपुर्द कर दिया था। ऐसा उन्होंने देश की समुन्नति के लिए देशभक्ति की प्रेरणा से किया था। रूस में जमींदारी के साथ–साथ जमींदारों का भी उन्मूलन करना पड़ा। यूरोपीय देशों जैसेः आयरलैण्ड, डेनमार्क, जर्मनी, रूमानिया आदि में कानून द्वारा जमींदारी का उन्मूलन किया गया और जमींदारों को मुआवजा दिया गया। इन्हीं देशों की तरह उत्तर प्रदेश का जमींदारी उन्मूलन विधेयक

बना। उसमें भी जमींदारों को मुआवजा दिया गया। समाजवादियों ने मुआवजा देने पर बड़ी आपत्ति की। उन्होंने "भारत छोड़ो आन्दोलन के विषय में महात्मा गांधी की उक्ति कि किसान जमींदारों की जमीन छीन ले, का उल्लेख किया। यह बात गांधी जी ने ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ सम्पूर्ण विद्रोह के सिलसिले में कही थी। भूतपूर्व जमींदारों को अंग्रेजों ने बनाया था और वे अंग्रेजों के पृष्ठपोषक थे। सन् १९४६ में जब कांग्रेस का मुआवजा देने की चुनाव घोषणा पत्र तैयार किया जा रहा था, तब गांधी जी ने भी संस्तुति की थी। चौधरी चरण सिंह ने गांधी जी का सच्चाई से अनुसरण किया। इतने बड़े क्रान्तिकारी परिवर्तन को इतनी सरलता से सम्पन्न कर लेने की अपनी अद्भुत क्षमता से पहली बार चौधरी चरण सिंह मात्र सभा सचिव होते हुए अखिल भारतीय स्तर के क्रान्तिकारी चिन्तक और पेशवा के रूप में माने जाने लगे। जमींदारी उन्मूलन विधेयक का अदालतों में उतना विरोध नहीं हुआ, जितना हो सकता था और वर्ग–द्वेष भी नहीं पनपा। सरकारों ने, जमींदारों ने, कानूनविदों ने और सदियों के शोषित किसानों और संगठनों ने इस विधेयक का गहरा अध्ययन कर अपने–अपने राज्यों में इसे तत्काल लागू करने की मांग की। अधिकांश दूसरे राज्यों में उत्तर प्रदेश के विधेयक का ही अनुसरण किया गया। उसमें कोई नयी बात जोड़ना सम्भव ही नहीं था। इस तरह चौधरी चरण सिंह के जमींदारी उन्मूलन विधेयक ने देश के सभी राज्यों का ही इस विषय में नेतृत्व किया।

जमींदारी उन्मूलन विधेयक की धारा ९ में सभी निवासियों को उनकी आबादी की जमीन तथा कुंओं और पेड़ों पर पूर्ण स्वामित्व का अधिकार प्रदान किया गया। इससे भूमिहीन हरिजनों को सबसे अधिक लाभ हुआ। उन्हें बेगार आदि किस्म की दासता से राहत भी मिली जो जमींदार उनसे आबादी की भूमि की एवज में लिया करते थे।

जमींदारी उन्मूलन तथा तत्सम्बन्धी भूमि सुधारों के बारे में अमेरिकन कृषि विशेषज्ञ श्री वूल्फ लाजिन्सकी का मत, "व्यक्तित्व और विचार" प्रकरण में उद्धृत किया जा चुका है। हिन्दुस्तान के योजना आयोग को अपनी एक रिपोर्ट में उन्होंने जोर देकर लिखा था कि केवल उत्तर प्रदेश का विधेयक स्वयं में सर्वांग परिपूर्ण था और उसे सही ढंग से कार्यान्वित किया गया। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि लाखों शिकमी काश्तकार अपनी जोत की जमीनों के मालिक बने और उन्हें बेदखली का भय नहीं रहा। उक्त उच्च कोटि की क्षमता का एकमात्र श्रेय विधेयक के जनक चौधरी चरण सिंह को ही मिलता है जिन्हें खेती का घनिष्ट अनुभव था और जिनका दृष्टव्य इस विषय में किताबी न होते हुए बिल्कुल स्पष्ट था।

भारत में दूसरे राज्यों के बाद के पारित विधेयक उस कोटि के नहीं बने, जैसा उत्तर प्रदेश का था। यहां तक कि केरल की कम्युनिस्ट सरकार भी उसकी समता नहीं कर सकी। केरल की सरकार ने जो विधेयक पारित किया था, उसमें जमींदारी का उन्मूलन शत–प्रतिशत नहीं था। उसमें भूमिहीनों को कीमत लेकर अतिरिक्त भूमि बांटी गयी। उत्तर प्रदेश की तरह परती, बंजर और लावारिस जमीनें सामूहिक उपयोग के लिए गांव सभाओं को नहीं दी गयी। उत्तर प्रदेश का विधेयक इस मामले में कहीं अधिक लोक कल्याणकारी और प्रगतिशील था। यही नहीं, सन् १९५४ में योजना आयोग ने यह आदेश दिया कि जिन जमींदारों के पास सीर या खुदकाश्त की जमीनें नहीं है, उन्हें ३० से ६० एकड़ तक भूमि किसानों से वापिस लेने का अधिकार दिया जाय। सभी राज्यों ने तत्काल ऐसा किया। उत्तर प्रदेश में भूतपूर्व जमींदारों की इस मांग का घोर समर्थन करने पर भी चौधरी ने साहब यह स्वीकार नहीं होने दिया। यह ध्यान में रखने की बात है कि तब कांग्रेस विधायकों में काफी संख्या में आभिजात्य वर्ग के भूतपूर्व जमींदार और श्रीमान् थे।

स्वतंत्र भारत का पहला चुनाव सन् १९५१–५२ में हुआ। कांग्रेस उसमें भारी बहुमत से जीती। पंत जी के नेतृत्व में नया मन्त्रिमण्डल जून ५१ में बना। इस बार पंत जी ने चौधरी चरण सिंह को न्याय और सूचना मंत्री नियुक्त किया। इस नियुक्ति पर उस समय के सभी प्रमुख समाचार पत्रों ने हर्षातिरेक का प्रदर्शन किया और एक यशस्वी धरती के लाल को मन्त्री बनाने के लिए पंत जी का हार्दिक अभिनन्दन किया। कई प्रमुख पत्रों ने यह भविष्यवाणी की कि किसानों का यह पेशवा उनकी गरीबी को मिटा कर सदियों बाद गांव के निवासियों को सुखी और सम्पन्न तथा हिन्दुस्तान को शक्तिशाली राष्ट्र बनाने में समर्थ हो सकेगा। उनकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर पंत जी ने चौधरी चरण सिंह को सितम्बर में कृषि मन्त्री बना दिया। इस नियुक्ति का यह भी कारण था कि जमींदारी उन्मूलन का काम राज्य में विधेयक के सिद्धान्तों के अनुरूप तेजी से नहीं चल रहा था। चौधरी साहब को अपने व्यक्तिगत निर्देशन में उसे कार्यान्वित कराना पड़ा। पंत जी ने मई १९५२ में चौधरी चरण सिंह को माल विभाग भी सौंप दिया। माल और कृषि मन्त्री बनते ही चौधरी साहब ने जमींदारी उन्मूलन को तेजी से राज्य भर में कार्यान्वित कराया, जिससे किसानों और खेतिहर मजदूरों को विधेयक का यथार्थ रूप समझ में आया। वे चौधरी चरण सिंह पर न्योछावर हो गये। चौधरी साहब का प्रदेश भर में जहां–जहां वे गये, भव्य स्वागत हुआ। वसंत की पहली बयार के स्पर्श से जैसे पतझड़ भागने लगता है और सूखें पेड़ों पर नयी कोपलें उग आती हैं, वैसे ही जमींदारी

उन्मूलन से शोषित किसानों और भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के बुझे हुए चेहरों पर प्रसन्नता की रेखाएं उभरने लगीं।

भूतपूर्व जमींदार चुप बैठने वाले लोग नहीं थे। योजना आयोग को अपने पक्ष में देख कर उन्होंने एक दूसरा संघर्ष खड़ा कर दिया। जमींदारी की समाप्ति से सामंती जमींदार ही नहीं चिढ़े थे, उनके आश्रित पटवारियों में भी बड़ा रोष था। उनके द्वारा गरीब किसानों के शोषण और उत्पीड़न के सारे अधिकार कम ही नहीं होते जा रहे थे, मिट रहे थे। जमींदार सामन्तों के उकसाने पर पटवारियों ने आन्दोलन करने के लिए अपनी कतिपय मांगें सरकार को प्रस्तुत कीं। वे मांगे अभी विचाराधीन ही थीं कि उन्होंने मांगों के समर्थन में इस्तीफा दे दिया। माल विभाग के अभिलेख पूरे शासन तंत्र के आधार थे। पटवारियों को जिनकी संख्या २७००० थी, आशा थी कि राज्य के काम में रुकावट पैदा करने से सरकार उनके सामने झुक जाएगी। साधारण स्तर का मन्त्री ऐसी विकट परिस्थिति से घबरा कर झुक भी जाता। चौधरी चरण सिंह ने किन्तु अद्भुत साहस का परिचय दिया। उन्होंने सारे इस्तीफे पलक मारते स्वीकार कर लिए। पटवारियों की शोषण और भ्रष्टाचार की वृत्ति से किसान ही नहीं, सभी सर्वसाधारण परेशान रहा करते थे। चौधरी साहब के साहसिक कदम की सर्वत्र सराहना हुई। उन्होंने तत्परता से भूमि व्यवस्था और राजतंत्र के दूसरे अभिलेख सम्बन्धी सरकारी कामों को सुचारू रूप से चलाने के लिए पटवारियों की जगह लेखपालों का पद सृजन किया। लेखपालों को पंचायतों की सहमति और देखरेख में अपने दायित्व को निभाने की जिम्मेदारी सौंपी गयी। चौधरी चरण सिंह जैसे सुविज्ञ और किसानों के दुःख से सुपरिचित मन्त्री की ही जीवट का यह महान कार्य था। नये लेखपालों में उन्होंने पहली बार 18 प्रतिशत हरिजन अभ्यर्थियों को नियुक्त करने का हुक्म दिया। इस अनुपात में उपयुक्त योग्यता के अभ्यर्थी मिले नहीं। फिर भी पांच प्रतिशत हरिजन योग्य अभ्यर्थी लेखपाल नियुक्त किए गए।

जमींदारी उन्मूलन का कृषि उत्पादन पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना पड़ा। इसका मुख्य कारण उत्तर प्रदेश का चकबन्दी कानून बना, जो सन् १९५३ में पारित हुआ और सन् १९५४ में सन् १९५४ में लागू किया गया। धरती के मोह के कारण चकबन्दी योजना का पहले उतना व्यापक स्वागत नहीं हुआ, जितना होता। लेकिन जब अलग–अलग जगहों पर स्थित खेत एक चक में लाये जाने लगे और निरर्थक मेड़ें समाप्त होने लगीं, तब इस कानून का हार्दिक स्वागत हुआ। इस योजना के कार्यान्वयन के लिए हर जिले पर एक सलाहकार समिति बनायी गयी। प्रत्येक गांव में भी वैसी ही एक कमेटी बनायी गयी, जिसकी राय को चकबन्दी के हर

कदम पर चकबन्दी कर्मचारियों के लिए आवश्यक कर दिया गया। इस तरह यह योजना कृषि उत्पादन के लिए, हजार कठिनाइयों के बाद भी, बड़ी उपयोगी साबित हुई। अमेरिकन कृषि विशेषज्ञ श्री अलबर्ट मायर ने जो उत्तर प्रदेश के कृषि विकास के सलाहकार थे, उन्नाव में इस योजना के कार्यान्वयन की जांच कर निम्न टिप्पणी शासन को भेजी:

"चकबन्दी के काम को गांवों में देखकर मुझे ऐसा लगा कि यह अत्यन्त महत्त्व का काम गांवों के कृषि उत्पादन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लायेगा।"

चकबन्दी योजना से किसानों की अपनी भूमिधरी और सीरदारी की जमीनों से सदियों के शोषण से पनाह मिली। अब वे अपनी जोतों से जितनी चाहें, फसलें उगा कर अपनी माली हालत सुधारने के लिए स्वतंत्र थे। इस तरह उनका सदियों का शोषण समाप्त हुआ। चौधरी चरण सिंह को उन्होंने मुक्त कंठ से अपना पेशवा माना। किसानों, खेतिहर मजदूरों और भूमिहीनों को उनका प्राप्य दिलाने की जागरूकता ने चौधरी चरण सिंह को भारत भर के किसानों का गौरव बना दिया। उन्हें महात्मा गांधी की उक्ति याद आई कि भारत का भविष्य कोई किसान मजदूर ही समुज्ज्वल बना सकेगा, क्योंकि गांवों में देश की अस्सी प्रतिशत आबादी बसती थी। कृषि प्रधान देश में किसान के बेटे के अलावा कौन किसानों का भला कर सकता था? यहीं से चौधरी चरण सिंह की गांधीवादी अर्थनीति का चिन्तनशील विकास भी प्रारम्भ हुआ, जिसके फलस्वरूप उन्होंने अपनी अर्थशास्त्र की अनमोल पुस्तकें लिखीं, जिसकी अब तक की अंतिम कड़ी "भारत की भयावह आर्थिक परिस्थिति" (नाइटमेयर ऑफ इण्डियन इकोनामी) है।

दिसम्बर सन् १९५४ में सरदार वल्लभ भाई पटेल का देहान्त हो गया। पंडित गोविन्द वल्लभ पंत सरदार की जगह केन्द्रीय सरकार में दिल्ली बुला लिए गये। उत्तर प्रदेश में डॉक्टर सम्पूर्णानन्द उनकी जगह मुख्य मन्त्री बने। वे समाजवादी विद्वान और विचारक थे और चौधरी चरण सिंह के किसानों की सर्वांगीण उन्नति के विचारों की गांधीवादी धारणा से अपरिचित नहीं थे। लेकिन इसे दुर्भाग्य ही माना जाएगा कि उनमें और चौधरी चरण सिंह में वैसा सामंजस्य, जो राज्य के चतुर्दिक विकास के लिए जरूरी था, स्थापित नहीं हो पाया। उन्होंने कार्यभार सम्हालते ही कृषि विभाग की जगह चौधरी चरण सिंह को परिवहन विभाग, उनकी इच्छा के खिलाफ सौंपा। उन्हें माल मन्त्री बने रहने दिया गया। अप्रैल 58 में उन्हें परिवहन के स्थान पर वित्त विभाग दिया गया। उसी साल नवम्बर में वित्त की जगह उन्हें सिंचाई और बिजली विभाग सौंपा गया।

ऐसी आपाधापी में चौधरी साहब ने अप्रैल १९५९ में त्यागपत्र दे दिया। तत्कालीन राज्यपाल श्री वी० वी० गिरि जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने, चौधरी साहब जैसे मेधावी और कर्मठ मन्त्री के त्यायपत्र को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। उन्हें त्यागपत्र स्वीकार करना पड़ा। डॉक्टर सम्पूर्णानन्द और चौधरी चरण सिंह के व्यक्तित्वों के टकराव के अतिरिक्त इसका प्रमुख किन्तु अप्रकट कारण जून १९५९ के नागपुर कांग्रेस के अधिवेशन में चौधरी साहब द्वारा प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रतिपादित सहकारी खेती के प्रस्ताव का सटीक विरोध था। सहकारी खेती में किसान की प्रयत्न की व्यक्तिगत रुचि कुंठित हो जाएगी, उत्पादन घट जाएगा, अपनी छोटी भूमि से भी प्रयत्न द्वारा वह बालू को सोना में बदल देगा, यह उनके विरोध का आधार था। प्रधानमन्त्री का प्रस्ताव उक्त सटीक विरोध के बाद भी स्वीकृत हुआ। लेकिन चौधरी चरण सिंह के सारगर्भित विरोध के कारण वह प्रस्ताव आज तक लागू नहीं किया जा सका। सच्ची बात बुरी लगती ही है। तब नेहरू की तूती बोलती थी। उनका विरोध करना असाधारण व्यक्तित्व व प्रचुर ज्ञान वाले का ही काम था। नागपुर कांग्रेस में कृषि से संबंधित अधिकांश प्रतिनिधि सहकारी खेती की योजना के विरुद्ध थे। नेहरू की अतुल शक्ति के सामने किसी को उसका विरोध करने का साहस नहीं हुआ। चौधरी चरण सिंह ने अपनी आस्थाओं के मुताबिक निर्भीकता से उसका विरोध किया। उनके साहस की सर्वत्र सराहना भी हुई, मगर उन्हें भुगतना भी पड़ा। उनकी प्रतिभा और क्षमता के विकास के मार्ग में मानव कृत अवरोध ला खड़े कर दिए गये।

उनका त्यागपत्र स्वीकार होने का एक तीसरा कारण भी था। मिर्जापुर में बिड़ला की अल्यूमिनियम फैक्ट्री के लिए लागत से बहुत कम मूल्य पर राज्य सरकार ने बिजली देने का निश्चय किया था। चौधरी साहब ने उसका कड़ा विरोध किया था। उनका विरोध सर्वथा उचित था। रिहांड योजना से भाग बिड़ला की फैक्ट्री को देने का प्रस्ताव था। इससे बिजली मिल नहीं पाती। बिजली की लागत की यूनिट को दो रुपये पर पच्चीस साल के लिए वह दी गयी। अनुसार इससे राज्य को प्रतिवर्ष ५०–५५ लाख रुपये का उपलब्ध कुल बिजली का आधा किसानों को कृषि के लिए पर्याप्त ३३.१६ रुपये थी, जबकि बिड़ला १९६३–६४ की आडिट रिपोर्ट के नुकसान हुआ। डॉक्टर सम्पूर्णानन्द जैसे समाजवादी मनीषी ने ऐसा क्यों किया, यह समझ में आने वाली बात नहीं थी। शायद १३ मार्च १९५० के अपने प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू को सम्बोधित पत्र (परिशिष्ट –ब) में चौधरी चरण सिंह द्वारा प्रकट मत कि डॉक्टर साहब सिद्धांतों की परिकल्पना में बौद्धिक रूप से अत्यधिक व्यस्त होने के कारण दृश्य

यथार्थ को जान ही नहीं पाते थे, सच हो। जो हो, चौधरी साहब के त्यागपत्र से सारा प्रदेश चिन्तित हुआ। सुप्रसिद्ध दैनिक नेशनल हेराल्ड ने उस पर निम्न टिप्पणी प्रकाशित की,– "चौधरी चरण सिंह का त्यागपत्र व्यक्तिगत तथा संस्था (पार्टी) दोनों के लिए दुःखान्त घटना है। उनका मन्त्रिमण्डल से निकल जाना उत्तर प्रदेश शासन के लिए बड़ी हानि की बात है। श्री सम्पूर्णानन्द ने ऐसा साथी खोया है, जो योग्य, गम्भीर, परिश्रमी और सत्यनिष्ठा के लिए ख्यात है।"

दिसम्बर 1960 में सम्पूर्णानन्द जी की जगह श्री चन्द्रभानु गुप्त के मुख्य बनने पर चौधरी साहब मन्त्रिमण्डल में वापिस लौटे। उन्हें इस बार गृह और कृषि मन्त्री बनाया गया। गृह विभाग का मुख्य काम शान्ति सुव्यवस्था को स्थापित करना और जनमानस को कानून का प्रेमी बनाना था। कृषि का काम इसके विपरीत उपज को बढ़ाकर गांवों तथा देश का सर्वांगीण विकास करना था। एक का आधार दण्ड और दूसरे का सघन प्रसार था। दोनों परस्पर विरोधी कार्य–पद्धति के विभाग थे। चौधरी साहब की, लेकिन जैसी कृषि की उन्नति में उल्लेखनीय भूमिका रही, उससे बढ़–चढ़ कर अद्‌भुत क्षमता का आदर्श उन्होंने गृह विभाग में उपस्थित किया। पुलिस की परिपाटियां अभी दासता–काल की थीं। जनता को भय और आतंक से दबा कर रखना ही उन्हें सिखाया गया था। स्वतंत्र देशों में पुलिस अपराधों के अनुसंधान के साथ–साथ जनसेवा की सशक्त माध्यम होती है। यहां की पुलिस को उस रास्ते पर चलाया ही नहीं गया था, उल्टे राजनेताओं के चन्दा बटोरने की तरह उनमें घोर भ्रष्टाचार और अक्षमता व्याप्त थी। चौधरी चरण सिंह ने पूरे विभाग को कठोर अनुशासन में बांधकर उसे जनोपयोगी बनाने की सफल कोशिश की। सच तो यह है कि जैसे भूमि–सुधारों और जमींदारी उन्मूलन में उन्होंने क्रान्तिकारी काम किया, वैसे ही गृह विभाग को उन्होंने लोक–कल्याणकारी रास्ते पर तेजी से निदेशित किया। पुलिस की मानसिकता को लोकोपयोगी बनाने के साथ–साथ उन्होंने उनकी कठिनाइयों को भी अच्छी तरह समझा–बुझा। उन दिनों मध्य प्रदेश के भिण्ड जिले से मिले क्षेत्र आगरा, मैनपुरी और इटावा के यमुना के खादर में दस्यु सरदारों का भारी आतंक व्याप्त था। एक प्रकार से उस इलाके में उनका समानान्तर शासन चल रहा था। चौधरी साहब गृह विभाग का कार्य संभालते ही उस बीहड़ इलाके का दौरा कर वहां की परिस्थितियों और इलाके की विकटता का अध्ययन किया। पुलिस दल की छाती ऐसा निडर और दक्ष तथा संवेदनशील मन्त्री पाकर फूल कर दुगुनी हो आयी। उन्होंने सरगर्मी से काम किया। उक्त इलाके में डकैती अगर मिटी नहीं, तो एकदम रुक गयी। सन् १९६२ में

जब गृहमन्त्री का काम उनसे हटा लिया गया, तब डाकुओं ने राहत की सांस ली और अपनी अराजकता फिर शुरू की। इससे राज्य ही नहीं, देश भर में उनकी प्रशासनिक क्षमता की सराहना हुई। उनकी बढ़ती ख्याति को उनके सहयोगी सह नहीं सके। दस महीने से अधिक वे गृह मन्त्री नहीं रह सके। गृह विभाग के कर्मचारियों और सर्वसाधारण में सरदार पटेल, भारत के पहले गृह मन्त्री की प्रतिभा आ झलकी। श्री चन्द्र भानु गुप्त ने उनसे गृह विभाग हटा लिया। सन् १९६३ में उन्हें फिर त्यागपत्र देना पड़ा। श्रीमती कृपलानी के मुख्य मन्त्रित्व काल में वे फिर कृषि, पशुपालन और वन मन्त्री बनाये गये। सन् १९६६ में उन्हें स्वायत्त शासन मन्त्री का चार्ज दिया गया।

सन् १९६७ तक के मंत्री काल में दो तथ्य एकदम साफ प्रकट होते हैं। पहला तो यह कि उनके विभाग जल्दी–जल्दी बदले गये। इसका कारण उनकी उच्च प्रशासनिक क्षमता और निरन्तर बढ़ती लोकप्रियता के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं आंका जा सकता। दूसरा कारण उनकी उच्चकोटि की सत्यनिष्ठा और उनकी भ्रष्टाचार मिटाने की गहरी ललक हो सकती है। सार्वजनिक जीवन चरित्र और नैतिकता के लिए आग की तेज धारा है। विरले ऊंचाई के लोग ही उसे बेदाग पार कर पाते हैं। साधारण पदाधिकारी, मंत्रीगण भी, प्रभुता के मद और सत्ता की शक्ति से स्वार्थी बन जाते हैं। उत्तर प्रदेश राज्य में क्या शायद सारे देश में चौधरी चरण सिंह की अकाट्य सत्यनिष्ठा के करीब पहुंचने वाले राजनेता उंगलियों पर गिने जाने वाले भी बहुत मुश्किल से ढूंढ़े जा सकते हैं। महत्त्वाकांक्षी या दुराकांक्षी सहयोगियों में ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध ईर्ष्या होनी स्वाभाविक है। जो अस्वाभाविक है – वह सहयोगियों द्वारा चौधरी साहब के खिलाफ अनर्गल प्रचार है, जिसका कहीं सिर–पैर नहीं। इस निष्ठा का व्यक्ति किसी राज्य या देश की अनमोल उपलब्धि माना जाता, किन्तु यहां के पतनोन्मुख राजनीतिज्ञों की उसे उखाड़ने की ही अनवरत चेष्टा रही।

दूसरा तथ्य यह प्रकट होता है कि उपरोक्त प्रक्रिया में चौधरी साहब को सन् १९६७ तक शिक्षा, सहकारिता, उद्योग तथा सार्वजनिक निर्माण को छोड़ कर राज्य के दूसरे सभी विभागों के कार्य–कलाप का घनिष्ट अनुभव प्राप्त हो गया। यह भी आश्चर्य की बात है कि उन्हें कभी उद्योग विभाग नहीं मिला। इसका कारण उनका श्रमपुरक घरेलू और ग्रामीण उद्योगों पर गांधीवादी चिन्तन ही हो सकता है जो नेहरू के रूस से उधार ली हुई भारी उद्योगों की नीति के खिलाफ था। देश गांधी जी को कब का भूल चुका था। जो हो, इतने विभागों का अनुभव भी भावी की झांकी थी। वह यथास्थान...

राज्य में चौधरी चरण सिंह ने जिस विभाग को छुआ, उसी में सेवा की नयी स्फूर्ति भर गयी। प्रशासनिक दक्षता, मौलिकता, दूरदर्शिता तथा अनसुलझी समस्याओं को आसानी से हल करने की इनकी सहज प्रतिभा के साथ–साथ उनकी ग्राम–परक अर्थनीति से सारा प्रदेश उनके प्रति विश्वास और अगाध श्रद्धा से भर आया।

जमींदारी उन्मूलन की तरह भूमि सुधारों का उनका काम भी कई माने में ऐतिहासिक माना जायेगा। उन्होंने कृषि की उपज को बढ़ाने के लिए भूमि की उर्वरा? शक्ति को सक्रिय दशा में सुरक्षित रखने के लिए सन् १९५४ में उत्तर प्रदेश का भूमि संरक्षण कानून स्वयं तैयार कर पारित कराया। कानपुर कृषि महाविद्यालय के बी० एस–सी० परीक्षा में दो वर्ष का इसका पाठ्यक्रम भी रखा गया। सन् १९६१ में उक्त कानून का विस्तार कर उसे संशोधित रूप में भूमि और जल संरक्षण कानून बनाया गया। चौधरी चरण सिंह का भूमि संरक्षण का कानून भी हिन्दुस्तान में पहला था। यही नहीं मिट्टी के वैज्ञानिक परीक्षण के लिए जिला और विकास खण्डों में केन्द्र स्थापित कर उसकी योजना चलायी गयी। निजी कृषि कालेजों और संस्थाओं में भी इसकी व्यवस्था करायी गयी। मिट्टी परीक्षण से ही खेतों में विभिन्न खादों का अनुपात से प्रयोग किया जा सकता है जिससे कि उपज बढ़े।

सन् १९६३ तक बीज, उर्वरक, कृषि यंत्रों आदि की सुविधा सहकारी समितियों को ही मिलती थी। तब तक लगभग चालीस प्रतिशत किसान ही इन समितियों के सदस्य बने थे। शेष साठ प्रतिशत किसानों को उक्त सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए चौधरी साहब ने कृषि आपूर्ति संस्थान की योजना चलायी। इसके माध्यम से सहकारी समितियों के सदस्यों की तरह शेष किसानों को भी सब सुविधाएं मिलने लगीं। ये संस्थान बहुत उपयोगी साबित हुए और अब तक चल रहे हैं। उत्तम और सघन खेती के तरीकों से किसानों को परिचित कराने के लिए उन्होंने कृषकों के प्रशिक्षण की योजना भी चलायी। कालक्रम से इस योजना को सारे देश ने अपनाया।

देखने में छोटी और साधारण, लेकिन उपज बढ़ाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण बातों को एक किसान का बेटा ही – जिसका लोहा मान कर सोना उगलती है जमीन–चरितार्थ कर सकता था। विदेशी ज्ञान और शहरी चमक–दमक में पले शासन के कर्णधारों तथा खेती की क्रिया–प्रक्रियाओं से अनभिज्ञ उच्चाधिकारियों को इन वास्तविकताओं का अनुभव किताबों को पढ़ कर कैसे होता?

सनु १९६४ में चौधरी चरण सिंह ने कृषक समाज को स्थापित किया। यह निर्दलीय संस्था थी। इसका उद्देश्य विज्ञान और खेती के आधुनिक

तरीकों और उपलब्धियों को आम किसानों तक पहुंचाना था। जिलों के कृषि अधिकारी इस संस्था के सदस्य बनाये गये। वास्तव में कागज पर संस्था की कल्पना पहले से मौजूद थी। चौधरी चरण सिंह ने केवल उसे जीवित कर दिया। ईर्ष्यालु सहयोगियों ने यह सोच कर कि इससे चौधरी साहब की साख गांव–गांव में जम जायेगी, साल भर बाद ही जिला कृषि अधिकारियों के उक्त संस्था का सदस्य होने पर मुख्य मंत्री श्रीमती – पलानी से रोक लगवा दी। बाद में, चौधरी साहब के कांग्रेस से अलग होने पर इस संस्था का दाह संस्कार कर दिया गया।

पशु विभाग के मंत्री के रूप में भी चौधरी चरण सिंह ने उल्लेखनीय काम किया। खेती के बाद किसानों का सबसे महत्त्वपूर्ण धन पशु है। सन् १९५३–५४ में चौधरी साहब ने पशु – बाजारों के समुचित संचालन और नियंत्रण के लिए एक विधेयक तैयार किया। देश भर में इस विषय पर यह पहला विधेयक था। मुख्य मंत्री पंत जी ने उसे जरूरी भी माना। दिसम्बर १९५४ में वे केन्द्र सरकार के गृहमंत्री बन कर चले गये। उसके बाद लाख कोशिश पर भी विधेयक कानून नहीं बना, प्रत्युत यह विभाग ही चौधरी चरण सिंह से हटा लिया गया। अपनी प्रेरणा से सन् १९५५ में चौधरी साहब ने गोहत्या निरोध कानून जरूर बनवाया। सन् १९६४ में उन्होंने गोहत्या की रोकथाम के लिए एक पशु संरक्षण विधेयक भी तैयार किया था। उसमें बछड़ों के निर्यात पर प्रतिबन्ध प्रस्तावित था। विभाग बदल जाने के कारण वह कानून नहीं बन सका। चौधरी चरण सिंह ने एक बार मंत्री पद से हटने के बाद अपनी दूधारू गाय पंडित बलभद्र प्रसाद मिश्र, 'भारत' के भूतपूर्व सम्पादक और तत्कालीन सूचना निदेशक, उत्तर प्रदेश को दे दी थी। श्री मिश्र जी गो–सेवक थे। मिश्र जी से उन्होंने कहा था – "मिश्र जी, मैंने मंत्रिपद से त्याग पत्र दे दिया है। बंगला गया, नौकर–चाकर गये, मेरी गाय की देखभाल कौन करेगा? हमारे यहां गाय बेची नहीं जाती। इसलिए आप यह गाय ले जाइये। आप सुपात्र हैं।" ईमानदारी की हद देखिये। लम्बे काल तक मंत्री रह कर भी, वह अपने को एक गाय रखने में असमर्थ पा रहे थे। दूसरों से अपने लिए लेना इनकी प्रकृति में ही नहीं।

चार महीने के लिए वे सिंचाई और बिजली मंत्री भी रहे। बिजली विभाग भ्रष्टाचार के लिए उतना ही कुख्यात था, जितना पुलिस विभाग। चौधरी चरण सिंह के नाम से ही उच्चाधिकारियों के कान खड़े हो गये। उन्होंने लखनऊ की दुकानों से लिए बिजली के उपकरणों का तत्काल ही मूल्य चुका कर भरपायी ली। जो उपकरण उपहार में मिले थे, उसकी भी रसीद ले ली गयी। चौधरी चरण सिंह ने तत्कालीन मुख्य अभियंता को

जिनकी सत्यनिष्ठा की शोहरत नहीं थी, अवकाश प्राप्त करने के पूर्व छुट्टी पर भेज दिया। डॉक्टर सम्पूर्णानन्द को यह अच्छा नहीं लगा। बिड़ला की अल्यूमिनियम फैक्ट्री को बिजली सस्ते दर पर देने से प्रबल मतभेद हो ही चुका था। अप्रैल १९५९ में चौधरी चरण सिंह ने त्यागपत्र दे दिया। सिंचाई विभाग, बाद में भी जब वे दिसम्बर १९६० में मंत्रिमंडल में लौट कर आये, उनके नाम से थरथराता रहा। अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ महीनों के परिवहन विभाग के मंत्रित्व काल में उन्होंने बेनामी चलने वाली बसों ट्रकों को मालिकाना अधिकार दिलाया और एक व्यक्ति को एक से अधिक "परमिट" न देने की परम्परा चलायी। इससे परिवहन विभाग में विचौलियों का भ्रष्टाचार एक हद तक समाप्त हो गया। एक से अधिक रोजगार नागरिकों को न देने की नीति पर अगर भारत सरकार चली होती या अब भी चलती तो बड़ी हद तक बेरोजगारी ही नहीं मिटती, आर्थिक असमानता भी घटती। इसी तरह सात महीने के अपने वित्त मंत्रित्व काल में उन्होंने फिजूलखर्ची पर कड़ी रोक लगायी और सभी विभागों को मितव्ययितता का कड़ाई से पालन करने पर विवश किया। वित्त विभाग में बिक्री कर सम्भाग भी था। उसकी दशा दयनीय थी। इतने कम समय में वे बिक्री विभाग को संतुलित रूप नहीं दे सकते थे। उन्होंने उसे सक्रिय जरूर बनाया। गल्ला विक्रेताओं और शासन के बीच खाद्यान्न पर सेल्स टैक्स का विवाद वर्षों से अनिर्णीत पड़ा था। उन्होंने विवाद के हर पहलू को जांच कर उसका तत्काल निर्णय कराया और उस निर्णय को कड़ाई से लागू किया।

स्वायत्त शासन विभाग के मंत्री के रूप में भी उन्होंने दूरगामी प्रभाव के आमूल परिवर्तन किये। नगरपालिकाओं के कार्यकारी अधिकारियों का स्थानान्तरण नहीं होता था। इससे उनमें स्थानीय विषयों के पक्ष–विपक्ष में दलगत सहानुभूति स्वाभाविक हो उभर आती थी और वे निष्पक्ष नहीं रह पाते थे। चौधरी साहब ने इन अधिकारियों की सेवाओं का विकेन्द्रीकरण किया। इससे अधिकारियों में अभिनव प्रेरणा और स्फूर्ति की जागृति स्वाभाविक थी। कर्मचारियों के वेतनमान पर भी उन्होंने कार्य भार संभालते ही ध्यान दिया। एक ही स्तर के काम के लिए विभिन्न वेतनमान अंग्रेजों की देन है। इससे भ्रष्टाचार न पनपता तो क्या होता? चौधरी साहब ने कोई वेतन आयोग बिठा कर देरी किए बिना उनका वेतनमान सरकारी कर्मचारियों के बराबर कर दिया। स्वायत्त संस्थाओं के कर्मचारी उसके लिए चौधरी चरण सिंह के आज भी ऋणी हैं। एक वेतनमान की सारे देश की सुव्यवस्था की मांग है। सही बात भी वही है – विशेष कर "कन्ट्रोल" के इस विशृंखल युग में। वह अभी तक कहां हो पाया है? आज भी सरकारी तंत्र में जाने कितने वेतनमान हैं, कितनी विषमतायें हैं, कितना असंतोष है? लेकिन कौन देखे, कौन सुने?

प्रायः तीन साल वे वन विभाग के मंत्री रहे। वहां भी दशकों पुरानी समस्याएं थी। कार्य भार संभालते ही कुमायूं क्षेत्र की १५ साल से जटिल समस्याओं का उन्होंने दृढ़ता से निस्तारण किया। कुमायूं में लगभग सोलह सौ एकड़ जंगलात के पेड़ों को अवैध तरीके से काट कर ठेकेदार उसे तेजी से बंजर बना रहे थे। राजनैतिक कारणों से कानून होते हुए भी उक्त जंगलात का अधिग्रहण नहीं हो पा रहा था। चौधरी चरण सिंह ने उनकी अनसुलझी समस्या को एक आदेश द्वारा समाप्त कर दिया। जंगलात का अधिग्रहण कर उनका प्रबंध जिलाधिकारियों को सौंप दिया। एक राजनैतिक सामन्त या उनसे मिले ठेकेदार ने चूं तक नहीं किया। कुमायूं क्षेत्र में सर्वत्र इसकी बड़ी सराहना हुई। उसी तरह यमुना और चम्बल क्षेत्र का एक सवाल वर्षों से अनिर्णीत चला आ रहा था। चौधरी साहब ने वहां वन संरक्षण की योजना सक्रियता से चलाकर वहां की हजारों एकड़ जमीन को परती होने से बचा लिया। पक्की सडकों के दोनों ओर पेडों का बाग लगाने की योजना को उन्होंने ही प्रारम्भ किया। बहुत से भूतपूर्व जमींदारों ने वन क्षेत्र में जमींदारी उन्मूलन के बाद भी जमींदारियां हड़प रखी थीं। किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया था। सालों से यह स्थिति चली आ रही थी। चौधरी चरण सिंह ने एक सीधा सादा कानून बनाकर ऐसी जमींदारियों को सरकार के कब्जे में ले लिया। कभी हल न होने वाली समस्या सही विवेक और दृढ़ता से बिना मीनमेष के हल हो गयी। जंगलात की जमीनों पर नया। अतिक्रमण भी रुक गया। जंगली पशुओं की सुरक्षा हेतु भी वे कानून बनाना चाहते थे, जो विभाग बदल जाने से नहीं बन पाया।

जहां इरादा पक्का हो और काम करने की लगन हो, वहां क्या नहीं किया जा सकता है? चौधरी चरण सिंह ने इसे अपने हर कार्य क्षेत्र में साबित कर दिखाया। लेकिन भूमि सुधारों के बाद उनकी चमत्कारी विशिष्टता गृह मंत्री के रूप में ही प्रकट हुई। वे १५ महीने ही गृह मंत्री रह पाये। इसी अवधि में विभाग में ही नहीं, सारे प्रदेश में एक नयी बिजली कौंध गयी। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, उन्होंने पुलिस की दासताकालीन कार्य प्रणाली और उससे उत्पन्न आतंक को मिटाने या कम करने की सफल कोशिश की। उनके नाम का जादू सिंचाई विभाग की तरह यहां भी रंग लाया। उनके गृह विभाग की बागडोर संभालते ही लखनऊ स्थित पुलिस अधिकारियों ने बाजार से खरीदी या उपहार स्वरूप ली गयी वस्तुओं की कीमत का रातोंरात भुगतान किया या भरपाई ली। चौधरी चरण सिंह पुलिस में व्याप्त भयंकर भ्रष्टाचार से भली–भांति परिचित थे। उन्होंने पुलिस के इंसपेक्टर जनरल को, जिनका कार्यकाल अनियमित रूप से बढ़ाया गया था, सेवानिवृत्त होने की आज्ञा दी। आई०

जी० महोदय को जाना पड़ा। उनके इस तरह अचानक जाने से ही विभाग में खलबली मच गयी। चौधरी साहब ने विभाग को आश्वासन दिया कि वे उनके कर्त्तव्य पालन में किसी प्रकार सरकारी या राजनैतिक हस्तक्षेप नहीं होने देंगे। इससे पुलिस का मनोबल जरूर बढ़ा। उन्होंने पुलिस दल के हर सदस्य से यह आग्रह भी किया कि वे सम्पूर्ण ईमानदारी से नियमानुसार अपना कर्त्तव्य पालन करें और ऊंच–नीच सबको कानून की नजर में बराबर रखें।

पुलिस को नयी कार्य प्रणाली का उदाहरण भी जल्दी ही मिला। चौधरी ने उच्च स्तरीय दबाव को न मान कर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के विरुद्ध दंगा–फसाद और मानसरोवर सिनेमा हाल में आग लगाने के मुकदमे को अदालत से वापस लेने से इन्कार कर दिया। यह फसाद डा० सम्पूर्णानन्द के मुख्य–मन्त्रित्व काल में हुआ था। ऐसा ही कड़ा रुख उन्होंने बलरामपुर इन्टर कालेज के छात्रों पर चल रहे मुकदमें में लिया। हमीरपुर के एक विधायक डकैती में फंसे थे उन्होंने भी मुकदमा उठा लेने के लिए बहुत दबाव डाला। चौधरी साहब ने किसी की नहीं सुनी। इसी तरह प्रतापगढ़ के एक कांग्रेसी विधायक, जिन्हें बाद में कत्ल के आरोप में सजा मिली, तथा झांसी के एक विधायक के खिलाफ जिन्होंने कुंआ खुदवाने के बहाने सरकारी रुपया हड़प लिया था, कानूनी कार्यवाही करने पर जोर दिया।

एक दूसरा उदाहरण भी उल्लेखनीय है। लखनऊ में हजरतगंज के चौराहे पर तैनात ट्रैफिक के एक सिपाही ने नियम विरुद्ध साईकिल पर सवार तीन–चार छात्रों का चालान कर दिया था। छात्रों ने एक दूसरे सिपाही के साथ मारपीट भी की थी। उनमें से एक छात्र किसी राजपत्रित पद के लिए चुन लिया गया था। नियुक्ति के पहले उसके चरित्र आदि पूर्व इतिहास की जांच–पड़ताल हो रही थी। चौधरी साहब के एक सहयोगी ने उक्त छात्र को माफ कर देने की सिफारिश की। छात्र की विधवा मां और मां के पिता भी बिलखते हुए उनके पास माफी के लिए विनती करने पहुंचे। चौधरी साहब माफ करना चाहते नहीं थे। छात्र के भविष्य को ध्यान में रख कर उन्होंने विधवा मां और मां के बूढ़े पिता से कहा कि अगर छात्र पुलिस लाइन के सारे सिपाहियों के सामने सम्बन्धित सिपाही से माफी मांगे और वह माफ कर दे, तब वे उन्हें क्षमा कर सकेंगे। इस घटना से पुलिस का चौधरी साहब के प्रति स्नेह और आदर का भाव बहुत बढ़ गया।

चौधरी चरण सिंह ने सन् १९६२ में इस बात पर इस्तीफा दे दिया कि मुख्य मंत्री श्री चन्द्रभान गुप्त ने मेरठ के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को इसलिए बिना उनकी सहमति के बदल दिया कि उसने निष्पक्ष जांच कर

एक अपराधी कांग्रेसी पर मुकदमा चलाया। उनका विचार था कि वे अगर नियमों के अनुकूल अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले पुलिस अधिकारी को संरक्षण नहीं दे सकते, तो उन्हें गृहमंत्री बने रहने का कोई अधिकार नहीं।

चौधरी साहब बेईमान पुलिस अधिकारियों या पुलिस जनों के तबादले और प्रोन्नति के मामले में सिफारिशों को सुनते ही नहीं थे। ऐसा करने या कराने वाले के विरुद्ध समुचित अनुशासनिक कार्यवाही भी करते थे। इससे पुलिस दल में, राज्य में आजादी के बाद पहली बार यह वातावरण बना कि गलती क्षमा नहीं होगी और अच्छे काम की पूरी सराहना होगी। इससे पुलिस दल का मनोबल और ऊंचा उठा। उनकी सतर्क देखरेख में ऊंचा से ऊंचा अधिकारी तरक्की आदि के मामले में योग्यता तथा वरीयता आदि नियमों का निष्पक्ष पालन करने लगा। इससे सब–इंसपेक्टरों के में उन दिनों सिफारिशें बिल्कुल बन्द हो गयीं।

चौधरी चरण सिंह एक ही गलती पर बड़े और छोटे अधिकारी को भिन्न–भिन्न सजा देने के पक्ष में थे। ऊंचे और अनुभवी अधिकारियों से उन्हें हमेशा आदर्शोन्मुख रहने की अपेक्षा थी। उन्होंने अपराध स्थिति को जानने के लिए रिपोर्ट को सही–सही दर्ज करने तथा उन्हें न छिपाने का कड़ा आदेश दिया। पुलिस द्वारा झूठी गवाहियों के खिलाफ भी उन्होंने कदम उठाया। सब–इंसपेक्टरों के चुनाव में भी उन्होंने शारीरिक क्षमता में प्राप्त अंकों को लिखित परीक्षा के अंकों में जोड़ने का आदेश दिया। इससे चुनाव में बड़े हद तक मनमानी घट गयी और अच्छे अभ्यर्थी सफल होने लगे। उन्होंने मुरादाबाद पुलिस ट्रेनिंग कालेज में प्रशिक्षण के दौरान १,००० /– रु० अग्रिम जमानत राशि जमा करने के नियम को भी समाप्त कर ८० /– रु० प्रति महीना अनुदान देने का आदेश दिया। इससे हरिजन और गरीब अभ्यर्थियों को बहुत लाभ पहुंचा।

गृह विभाग के मंत्री होते ही चौधरी चरण सिंह ने १९६१ के पुलिस बजट में यह घोषणा की कि अराजपत्रित पुलिस वालों के उत्तरजीवियों को अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए मुठभेड़ में मारे जाने पर उनका पूरा आर्थिक वृद्धि समेत वेतन जीवन भर मिले और बाद में उत्तरजीवी को पेंशन मिले।

चौधरी साहब ने पहले पहल लखनऊ और कानपुर नगरों में रेडियो यंत्र युक्त पुलिस के चलते–फिरते दस्तों को कायम किया। दूसरे प्रमुख शहरों में भी ऐसे दस्ते मोटरगाड़ी में लैस कायम किए गये, जिससे उनकी सेवाएं चौबीसों घंटे उपलब्ध रहे सूचना मिलते ही जो बिना कोई देरी किए घटना स्थल पर पहुंच जाए। इससे जन साधारण को अपनी सुरक्षा के संग–संग पुलिस की कार्य प्रणाली पर विश्वास जगा।

चौधरी चरण सिंह की कठिनाई यह थी कि अंग्रेजी शासन काल की परम्परा को राज्य में उनके पहले तोड़ने की कोशिश ही नहीं की गई थी। अंग्रेजी शासन विदेशी होने के कारण अपना वेतन भत्ता आदि बहुत ऊंचा बनाये रखते थे। वे कहा करते थे कि उनका जीवन स्तर ऊंचा है। नीचे के स्तर के पुलिस अधिकारियों का मान देय बहुत कम था और दरोगा सिपाहियों का तो इतना कम था कि बिना घूस या भ्रष्टाचार के वे जीवनयापन कर ही नहीं सकते थे। इंग्लैण्ड में स्थिति ठीक इसके विपरीत थी। वहां अदना सिपाही (कान्सिटेबल) का भी अच्छी तरह जीवनयापन के लिए न्यूनतम जरूरी वेतनमान है। उच्चतम वेतन से उनका अन्तर भी कम है। इसलिए उनमें बड़े और छोटे का आपसी मतभेद बहुत ही कम है और वहां असंतोष नहीं पनपता। यहां वेतनमान के अलावा रहने आदि की स्थितियों तथा स्तर में भी जमीन–आसमान का अन्तर है। चौधरी चरण सिंह का इधर भी ध्यान गया। पुलिस या किसी विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए इसी मूल कारण का उच्छेदन करना था। किन्तु इतनी अल्प अवधि में वे पुलिस जनों में व्याप्त विषमता को मिटाने पर अधिक काम नहीं कर सके। हां, नियमानुकूल जो सिपाहियों को मिलना चाहिए था, उसे उन्होंने कड़ाई से दिलाया। वे मुरादाबाद के निरीक्षण भवन में ठहरे थे। वहां से कहीं जाने के लिए बाहर निकले थे कि एक सिपाही ने उन्हें विदाई का सलाम किया। उसकी जर्सी पर उनकी नजर पड़ी। वह फटी–पुरानी थी। नियमानुसार हर तीन साल पर जर्सी बदलनी चाहिए थी। वह पांच साल से बदली नहीं गयी थी। उन्होंने निरीक्षण भवन में लौट कर लखनऊ में गृह सचिव को टेलीफोन से आदेश दिया कि दूसरे दिन तक सिपाहियों की जर्सी नियमानुकूल बदल जाय। ऐसा तत्काल किया गया। सिपाहियों से ऊंचे अधिकारियों द्वारा अपने निवास के बंगलों पर बेगार लेने की परिपाटी पर भी उन्होंने कड़ाई की। उनके समय में वह बन्द भी हो गई थी।

उन्होंने अनुभव किया और एक से अधिक बार सार्वजनिक रूप से कहा भी कि पुलिस जनों को स्वतंत्र देश में सेवा का माध्यम बनाने और कड़ाई से कर्त्तव्य पालन कराने में आवश्यक सुविधाओं की उपलब्धि में कड़ी कठिनाइयां और बाधाएं थी, जिनके अन्तर्गत उन्हें काम करना पड़ता था। परिवहन, टेलीफोन, तकनीकी प्रशिक्षण आदि की कमियों पर उन्होंने यथासम्भव ध्यान दिया। पुलिस कर्मचारियों को यह विश्वास होने लगा था कि चौधरी चरण सिंह उनकी शिकायतों और प्रतिबन्धों को दूर करके रहेंगे। उन्हें यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि पुलिस के एक आयोग के बहुत से सुझावों पर जैसे वेतन वृद्धि आदि को उन्होंने तत्काल कार्यान्वित कराया। उन्हें लगने लगा कि चौधरी चरण सिंह जहां कठोर अनुशासनप्रिय अधिकारी

हैं, वहां वे साधारण से साधारण स्तर के कर्मचारियों के अधिकारों के उत्साही संरक्षक भी थी। आज दशकों बाद यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि चौधरी चरण सिंह का राज्य के गृह मंत्री के रूप में काम और निर्देशन उतना ही चमत्कारी और प्रेरणादायक था, जितना उनका जमींदारी और भूमि सुधारों का काम क्रान्तिकारी था। आज में कल की रूपरेखा छायी रहती है। बाद में, जनता सरकार में, वे भारत के गृह मंत्री बने। उस काम का, जो सरदार वल्लभ भाई पटेल के स्तर का प्रेरणादायी और दूरदर्शी था, विवेचन संबंधित प्रकरण में आगे किया जायेगा।

चौधरी चरण सिंह की हर काम के ब्योरे को पूरा–पूरा जान कर ही उस पर निर्णय लेने की आदत है। इसलिए कोई भी अधिकारी या सार्वजनिक पदाधिकारी उनको गुमराह नहीं कर सकता। ज्ञान शक्ति होता है। ज्ञान मार्ग योग में परम प्राप्ति का प्रमुख साधन है।

सन् 1966 तक चौधरी चरण सिंह ने प्रशासन में सुधार लाने तथा देश के दूरगामी हित के लिए पराधीनताकालीन परिपाटियों को बदलने के लिए निम्न प्रमुख योजनाएं प्रस्तुत की थीं। इन पर या तो विचार ही नहीं किया गया या जनहित की काफी क्षति होने पर विचार किया गया। इनमें से कुछ ये हैं:

१. १९५० के मध्य दशक में वे पूर्वी जिलों के लिए छोटी सिंचाई परियोजनाओं को प्रारम्भ करना चाहते थे। उसकी सुनवाई नहीं हुई। प्रत्युत उनके विरुद्ध यह प्रचार जारी हुआ कि वे सब धन पश्चिमी जिलों में ही लगाने के पक्ष में हैं। अन्ततः १९६४ में पूर्वी जिलों के बारे में उनकी बात मानी गयी।
२. जाति प्रथा को मिटाने का प्रयत्न वे १९३९ से ही करते आ रहे थे। १९४८ में उन्होंने शासन से भूमि अभिलेखों में काश्तकारों की जाति न लिखने का नियम बनाया। अनुसूचित जाति से पूछने का प्राविधान तब भी रखा गया। सन् १९५४ में उन्होंने पंडित नेहरू को इस सिलसिले में विस्तृत पत्र लिखा, जिसका जिक्र पहले भी किया गया है। उस पर किंचित ध्यान नहीं दिया गया।
३. १९५२ से ही वे कहते आ रहे थे कि हाकिम परगनाओं को जिलों से हटा कर तहसीलों में स्थापित किया जाय, जिससे लोगों का मुख्यालय जाने में समय बर्बाद न हो और हाकिम परगनाओं को गांवों का सही ज्ञान बढ़े। सब सहमत हुए। उस पर अमल नहीं हुआ। अब तक पूरा–पूरा अमल कहां हो पाया है।
४. चौधरी चरण सिंह शायद उत्तर प्रदेश के पहले राजनैतिक नेता थे, जिन्होंने १९५६ में बस्ती जिले के कार्यकर्त्ताओं के सामने

जनसंख्या वृद्धि को रोकने के उपायों के बारे में आवाज उठायी। राज्य सरकार ने १९६४ में इसमें सक्रिय रुचि ली।

५. जून १९६६ में चौधरी चरण सिंह ने कालेधन के विमुद्रीकरण की योजना तैयार कर भारत सरकार के सामने प्रस्तुत की। उस पर कुछ नई काला बाजारियों के प्रभाव से रुपये का अवमूल्यन कर दिया गया।

६. उत्तर–पूर्व भारत की, जिसमें अरुणांचल, नागालैंड और मिजोरम आदि सरहदी प्रदेश हैं, निरन्तर बिगड़ती स्थिति पर १९५५ में चौधरी चरण सिंह ने भारत सरकार को यह लिखा कि चीन से मिल कर ये लोग विद्रोह करेंगे। उन्होंने चीनी आक्रमण की भी चेतावनी दी। इस बारे में वे प्रधानमंत्री, गृह मंत्री आदि से मिले भी। उनके तर्कों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। नतीजा सामने आया।

लखनऊ में उन्हीं दिनों बातचीत के प्रसंग में उन्होंने कहा था कि लाख चाह कर भी वे ऊंचे से ऊंचे नेताओं को निजी स्वार्थ से ऊपर उठ कर देश के दूरगामी भविष्य के लिए सचेत नहीं कर सके। कोई भी नहीं कर सकता था। करने वाला राष्ट्रपिता चला गया था। वह कुर्सी नहीं चाहता था – हिन्दुस्तान को सुखी, समृद्ध और शक्तिशाली बनाने का उसका सपना था। चौधरी चरण सिंह उसी पर अंगद कदमों से बढ़ रहे थे। कम से कम उनकी प्रतिभा, सत्यनिष्ठा, कार्यदक्षता और लगन से उत्तर प्रदेश का उन्हें कबका पेशवा हो जाना चाहिए था। वह पूंजीपतियों, सामन्तों ने होने नहीं दिया। पूंजीवादी अधिनायकों के कारण कांग्रेस का हर स्तर कुटिल राजनीति का शिकार बन गया। महात्मा जी के सर्वोदय का–व्यक्ति और समूह का–शुभ लक्ष्य कांग्रेस से ओझल हो गया। कांग्रेसी जनों का गाल बजाना और हर तरह से स्वार्थ साधन करना ही ध्येय बन गया। चौधरी चरण सिंह जैसे गांधीवादी चिन्तक इस काजल की कोठरी में कितने दिन रह पाते? कांग्रेस जनों के पतनोन्मुख विभीषिका को रोकने में समर्थ न होने पर उन्होंने कांग्रेस से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्य से किसानों, मजदूरों, भूमिहीनों को शोषण और दैन्य से बचाने के लिए, हिन्दुस्तान से भूख, बीमारी और अंगूठे को मिटाने के लिए यह सम्बन्ध–विच्छेद जरूरी था। जिस वृक्ष की छाया में पल बढ़ कर वे बड़े हुए, उसको छोड़ना साधारण नहीं, दारुण रूप से दुखदायी था। वृक्ष के सपने सूख गये थे। बापू के सपनों को साकार करने के लिए नया वृक्षारोपण करना था। इस महत् प्रयत्न का अरुणोदय अमावस्या के घोर अंधेरे को चीर कर ही होता।

अध्याय ८

उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री

(भारतीय क्रांति दल) १९६७–१९७५

फरवरी १९६७ के आम चुनावों के कुछ पहले चौधरी चरण सिंह ने एक प्रसंग में स्वीकार किया कि वे निम्न स्तर के सरकारी कर्मचारियों से भ्रष्टाचार न मिटा सके, न कम कर सके।

प्र० आपके बीस वर्ष के अथक प्रयत्न के बाद भी ऐसा क्यों? किसी ने पूछा।

उ० "ऊंचे मन्त्रियों और अधिकारियों के कारण। उनके भ्रष्टाचार का रूप बदल गया, कहीं–कहीं कम भी हो गया, वह मिटा नहीं। घोड़ा सवार को पहचान कर उसके इशारे पर चलता है।"

प्र० मंत्री और मोटी तनख्वाह वाले अधिकारी क्यों भ्रष्टाचार करते हैं?

उ० "चांदी बटोरने की घुड़दौड़, सम्पत्ति बनाने की होड़। नैतिकता और भारतीयता इससे पिट गये। पश्चिम की चमक–दमक की चकाचौंध में हम अपने को खो बैठे हैं। जड़ से कट कर हम कैसे जीवित रह सकेंगे?"

प्र० क्या पूंजीवादी परम्परा में भ्रष्टाचार मिट सकता है?

उ० "पूंजीवादी जन–जन में असमानता और विषमता जरूर बढ़ाता है। लेकिन सभी उंगलियां बराबर कब होती हैं?"

"सब उंगलियां तो हों। साम्यवादी देशों में ऊंच–नीच का अन्तर बिलकुल कम इसलिए है कि उनमें व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होती। व्यक्तिगत सम्पत्ति ही सारे भ्रष्टाचार और कुरीतियों की जड़ हैं।"

साम्यवादी पद्धति में व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं रहती है। उससे व्यक्ति का सम्यक् विकास कुंठित हो जाता है। महात्मा गांधी के ट्रस्टीशिप में व्यक्ति प्रयत्नों के लिए पूरा स्वतंत्र रहेगा और एक निर्धारित आय के ऊपर उसकी आमदनी समाज की धरोहर होगी। इस तरह व्यक्ति समूह के कल्याण को सोचने और करने

पर मजबूर होगा। अब तो साम्यवादी देश भी व्यक्ति के निजी प्रयत्न और प्रेरणा को अंगीकार कर रहे हैं।"

प्र० आजादी के साढ़े तीन दशक के बाद भी अच्छे काम का प्रेरणास्रोत धन क्यों हैं, देशभक्ति क्यों नहीं?

उ० आपका सवाल उत्तम है। गांधी जी और भारतीय संस्कृति का "आत्मवत् सर्व भूतेषु" का यही परिप्रेक्ष्य था। देश इसी भावना से समुन्नत होगा। हमारी नीतियां गलत रही हैं। वे श्रम पूरक आर्थिक विकास की नहीं हैं, उनमें व्यक्ति का महत्त्व कम हो गया है। कृषि उत्पादन का भी अपेक्षित विकास नहीं हुआ। इससे गरीबी ठीक उसी जगह रही, जहां वह आजादी के दिन थी। हम एक निम्नतम वेतनमान या पारिश्रमिक भी निर्धारित नहीं कर सके। आर्थिक असमानता से देश में लूट–खसोट मच गयी है। उसके मूल का उच्छेदन करना पड़ेगा, जमींदारी उन्मूलन की तरह पूंजीवाद में भी अगर उच्च नेतागण निष्ठावान और सक्रिय रहें तो भ्रष्टाचार रुक जाएगा। और प्रत्येक राज्य कर्मचारी का तो यह धर्म है कि अपने सुख, आराम और प्राणों का बलिदान करके भी राज्य और देश की सेवा करे। उनके अयोग्य अथवा भ्रष्टाचारी होने पर प्रजा बहुत पीड़ित होती है। देश का भविष्य कर्मचारियों और राजनेताओं पर ही निर्भर है।"

एक दीर्घ निःश्वास लेकर कमरे की खिड़की से बाहर देखते हुए चौधरी साहब बोले – "आज नहीं तो कल के लिए हमें आर्थिक तथा सामाजिक नीतियों को हिन्दुस्तान की प्रतिभा के अनुकूल मोड़ना ही पड़ेगा। पंडित जवाहर लाल नेहरू समाजवादी ढंग की चर्चा करते थे, वे गांव की मिट्टी में नहीं सने थे। पश्चिम और रूस के आधुनिकतम उद्योगों की चकाचौंध में पूंजीपतियों के चंगुल में वे भी फंसे। कृषि उत्पादन पर उन्होंने अपेक्षित ध्यान नहीं दिया। आज की स्थिति की बात मत कीजिए। मुद्रास्फीति के अलावा हमारे यहां है ही क्या? विकास आज शहरों की चमक–दमक और उसके अल्पमत के लिए है। अस्सी प्रतिशत ग्रामवासियों के लिए गरीबी रेखा से ऊपर उठाने का नाटक भर है। यह ठीक है कि पूंजीपतियों की मदद गांधी जी ने भी ली थी। तब पूंजीपति कांग्रेस पर छाये नहीं थे। आज चुनाव में गद्दी को बनाये रखने के लिए पूंजी जरूरी है। पूंजी–गड्डी पर गड्डी पूंजीपति उड़ेलते हैं और सरकार को अपने प्रभाव से चलाते परक व्यवस्था और चुनाव की अमर्यादित परम्परा से ही देश में अराजकतत्त्व

पनप आए हैं। चुनाव में सफलता के वे जरूरी अंग हैं। देश की शान्ति व्यवस्था क्रमशः शिथिलतर होती जा रही है। चीन और पाकिस्तान के आक्रमण के समय देश में जो एकता का स्वर फूटा, वह अब समाप्त प्रायः हो गया है। अब एक ही घुड़दौड़ है– कैसे कुर्सी सुरक्षित रहे। कुर्सी का लालच जीवन काल के लिए ही होता तो समझ में आने वाली बात थी। उसे चक्रवर्ती सम्राटों की तरह प्रजातंत्र के दायरे में ही वंशगत बनाने की चेष्टा है। एक नहीं तो दूसरा, हो वंश का ही। इन कारणों से आज की सत्ता की राजनीति भ्रष्टाचार का पर्याय बन कर रह गयी है। आज पुरानी कांग्रेस कितने नामों में बंटी है। जनता जनार्दन के उत्थान में सम्पूर्ण समर्पित राष्ट्रपिता बापू वाली कांग्रेस रही कहां? आज तो निष्ठावान और दूरदर्शी देशभक्ति भी प्रश्न चिन्ह बनती जा रही है।"

गांधी जी ने कितना सच कहा था कि आजादी के बाद कांग्रेस को भंग कर उसे लोक सेवा की शक्तिशाली संस्था बनाया जाय। सत्ता के मोह ने गांधी जी के नाम पर वोट खरीदने के लिए, यह नहीं होने दिया। उल्टे सत्ता के मोह ने यह स्थिति ला दी कि धर्म, ईमान, सिद्धान्त, स्वदेश की सुरक्षा, मानवता – सब बिकने लगे हैं। पुराने नैतिक मूल्यों का सर्वथा लोप हो गया है। देश तेजी से रसातल की ओर सरकता जा रहा है।

चौधरी चरण सिंह इतने पर भी कांग्रेस से अलग नहीं होना चाहते थे। कांग्रेस को तेजी से सुधार कर उसे सेवा का सशक्त माध्यम बनाने को वे उत्कंठित थे। उन्होंने चुनावों में कांग्रेस की विजय के लिए समुचित निर्देश दिए। बीमार हो जाने के कारण अपने क्षेत्र का वे दौरा नहीं कर सके। उधर जैसी कि आशंका थी, कांग्रेस के कतिपय राज्यस्तर के कर्णधार उन्हें ही हराने की अन्दर अन्दर कोशिश कर रहे थे। जो हो, चुनावों में पार्टी की वह धाक नहीं रही जो पहले थी। कांग्रेस पार्टी को उत्तर प्रदेश में कुल 198 सीटें मिली, जबकि विरोधी दलों ने २२७ सीटें जीतीं। विरोधी दलों ने चौधरी साहब को उनकी प्रगतिशीलता और हिन्दुस्तान के भविष्य के प्रति आस्था की याद दिला कर उनसे अपना नेता बनने का आग्रह किया। विरोधी दल चौधरी चरण सिंह की गांधीवादी आस्था से परिचित थे। उनकी गांवों और कृषि उत्पादन के उत्थान की ललक को भी वे जानते थे। इस दिशा में उनके प्रगतिशील चिन्तन के भी वे प्रशंसक थे। विरोधी दल क्या कोई भी जानता था कि देश की बहुसंख्यक जनता को समृद्ध बना कर ही हिन्दुस्तान को शक्तिशाली बनाया जा सकता है। उन्हें यह भी विश्वास था कि नेतृत्व संभाल कर चौधरी चरण सिंह अपने सिद्धान्तों पर अटल रहेंगे। इसलिए उन्होंने कांग्रेस के विरुद्ध बहती हवा में चौधरी चरण सिंह को अपना नेता चुनना चाहा। चौधरी चरण सिंह

के साथ उनके बहुत साथी विरोधी दल से आ मिलते और उनका प्रबल बहुमत हो जाता। लेकिन चौधरी चरण सिंह ने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया। उन्होंने विरोधी दल के आग्रह को दो टूक इन्कार कर दिया, कहा– "मैं कांग्रेस नहीं छोड़ना चाहता।"

अगर वे विरोधी दलों का आमंत्रण स्वीकार कर लेते तो कम से कम अपने पचास सहयोगियों के साथ विरोधी दलों से मिल कर वे सर्वथा निरापद सरकार बना लेते। किन्तु परस्पर विरोधी सिद्धान्तों के विभिन्न दलों के भानुमती के पिटारे पर भी क्या भरोसा किया जा सकता था? जब नये कांग्रेस विधायक दल के नेता के चुनाव का सवाल आया, तब कांग्रेसी प्रशासन को सक्षम सेवा का शक्तिशाली माध्यम बनाने के लिए चौधरी चरण सिंह ने श्री चन्द्रभान गुप्त के विरुद्ध अपनी उम्मीदवारी की घोषण ा की। वे वरिष्ठ मंत्री थे धनीधोरी विचारक थे, उनका विशिष्ट आर्थिक कार्यक्रम था और अति शोषित जनता जर्नादन के शीघ्र उत्थान के लिए वे पूर्णतया समर्पित थे।

उनकी उम्मीदवारी से उत्तर प्रदेश ही नहीं, दिल्ली दहल उठी। श्रीमती इंदिरा गांधी प्रधान मंत्री थीं। उन्होंने अपने विश्वस्त श्री उमाशंकर दीक्षित और ठाकुर दिनेश सिंह को चौधरी चरण सिंह को समझा–बुझा कर बैठाने के लिए लखनऊ भेजा। चौधरी चरण सिंह ने कांग्रेस की एकता बनाये रखने के लिए इस शर्त पर नेता पद के चुनाव से अपना नाम वापस ले लिया कि नये मंत्रिमंडल में कम से कम दो व्यक्तियों को जिनके भ्रष्टाचारी होने की आम चर्चा थी, स्थान नहीं दिया जाएगा तथा ईमानदार और कार्य कुशल विधायक ही मंत्री बनाये जाएंगे। उन्होंने नेता पद के लिए श्री चन्द्रभान गुप्त का नाम स्वयं प्रस्तावित किया। उधर केन्द्र में श्री गुप्त ने मोरार जी देसाई और श्रीमती गांधी के बीच केन्द्रीय मंत्रिमंडल के लिए समझौता कराया। उसी समझौते के फलस्वरूप १३ मार्च १९६७ को श्रीमती इन्दिरा गांधी ने प्रधान मन्त्री की शपथ ग्रहण कर केन्द्रीय मंत्रिमंडल बनाया। निर्विरोध नेता चुने जाने पर श्री गुप्त ने राज्य के मंत्रि–मंडल में चौधरी चरण सिंह को तो मंत्री बनाया, लेकिन उन्होंने उन दो व्यक्तियों को भी मंत्री बनाया, जिनके मंत्री न बनाये जाने का सर्वश्री दीक्षित और दिनेश सिंह ने आश्वासन दिया था। मंत्रियों की सूची में उन विधायकों का भी नाम नहीं था जिनकी ईमानदारी और सेवा की चौधरी चरण सिंह ने संस्तुति की थी। श्री चन्द्रभान गुप्त ने यह तर्क किया कि जो भी आश्वासन दिए गये हों, उनमें वे भागीदार नहीं थे और उन्हें मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को चुनने का पूरा अधिकार था।

चौधरी चरण सिंह ने इसे विश्वासघात माना और इससे वे बहुत दुःखी हुए। श्री उमाशंकर दीक्षित १७ मार्च को दुबारा लखनऊ आये। उन्होंने

श्री गुप्त से बात करके चौधरी चरण सिंह से फिर मिलने को कहा। वह चौधरी साहब से नहीं मिले। दिनेश सिंह ने भी ३१ मार्च को लखनऊ आकर मसले की हल ढूंढ निकालने का ठाकुर वादा किया। श्री दीक्षित की तरह वे भी लखनऊ आये ही नहीं। उन्होंने टेलीफोन से यह सूचना दी कि दूसरी पार्टी यानी श्री गुप्त को उनका हस्तक्षेप पसन्द नहीं और अब वे भी कर सकने में असमर्थ हैं। कांग्रेस के उच्च प्रतिनिधियों के ऐसे निम्न स्तर के आचरण की चौधरी चरण सिंह ने अपेक्षा नहीं की थी। उनको दिली चोट पहुंची। उन्होंने बहुत सोचा–विचारा। कांग्रेस छोड़ने का निश्चय करना उनके लिए दुर्वह भावनात्मक दुःख का कारण था। कांग्रेस की छत्रछाया में ही वे पले–बढ़े थे। कांग्रेस को महात्मा गांधी ने सींचा था। इस विकट परिस्थिति में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती गायत्री देवी ने उनकी मदद की। वे घटनाक्रम और उसके मोड़ से परिचित थीं। उन्होंने कहा कि कांग्रेस जब गांधी जी को घोंट कर पी गयी और देश की बहुसंख्यक जनता के विरुद्ध है तब उसके द्वारा कोई प्रभावकारी सेवा कदापि सम्भव नहीं। उसका सुधार भी असम्भव है। इसलिए नया रास्ता बनाना ही समीचीन है। शायद एक नये नेतृत्त्व के प्रकाश में विभिन्न विरोधी दल समन्वित रूप से काम कर सकें। यह प्रदेश के लिए, देश के लिए परम शुभ होगा। जनसंघ, घोर दक्षिणपंथी दल, ने नाना जी देशमुख के द्वारा चौधरी चरण सिंह के प्रगतिशील दृष्टिकोण का पूरा–पूरा समर्थन करने का विश्वास भी दिलाया। एक दूसरी बात भी हुई। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभान गुप्त ने एक बयान दे दिया कि "मैं जब तक कांग्रेस दल का नेता हूं, कोई भी अलग होने का साहस नहीं कर सकता, जो ऐसा करेगा मैं उसे भंगी बना दूंगा।" चौधरी चरण सिंह के कलेजे में यह बात खंजर की तरह चुभ गयी, उनका असमंजस मिट गया। दूसरे दिन, १ अप्रैल १९६७ को वे विधान सभा में अपने साथियों के संग विरोधी बेंचों पर जा बैठे। उसी दिन बजट का एक मुद्दा सदन में बहुमत से अस्वीकृत हो गया। श्री गुप्त की सरकार ने बहुमत खो कर अपना त्यागपत्र दे दिया। लखनऊ, दिल्ली क्या सारे देश के कांग्रेसी राज्यों में भगदड़ मच गयी। चारों ओर से चौधरी चरण सिंह को कांग्रेस विधायक दल का नेता और मुख्य मन्त्री बनाने के लिए घोड़े दौड़ने से दो दृढ़ता लगे। उनसे जोरदार आग्रह किया गया। चौधरी चरण सिंह ने बड़ी टूक कलेजा करके कांग्रेस छोड़ी थी। उन्होंने कांग्रेस के कर्णधारों की विवश उदारता को अस्वीकार कर दिया – 'तिरिया तेल चढ़े न दूजी बार।'

चौधरी चरण सिंह कांग्रेस की स्वार्थपरता, सिद्धान्तहीनता, उच्च स्तरीय भ्रष्टाचार, कुर्सी सुरक्षित रखने के लिए देश विरोधी नीतियों की प्रवृत्ति से

बेतरह क्षुब्ध थे। सत्ता कांग्रेस के त्याग और बलिदान को ही नहीं दूरदर्शी देशभक्ति की भावनाओं को काट कर खा गयी। ऐसे अनैतिक वातावरण में चौधरी चरण सिंह का सांस लेना मुश्किल हो रहा था। भयंकर मानसिक संघर्ष और ऊहापोह के बाद दृढ़ संकल्प से उन्होंने कांग्रेस छोड़ी थी। उन्हें गांधी जी के सपनों को चरितार्थ करना था, अस्सी प्रतिशत उत्पीड़ित ग्रामवासियों की गरीबी मिटा कर देश को सशक्त बनाना था। उनका रास्ता साफ था। वे उस लक्ष्य की ओर निष्ठापूर्वक बढ़ निकले।

उत्तर प्रदेश के विरोधी दल चौधरी साहब को अपना नेता बनाने के लिए उछल कर उनके पास दौड़े। भानमती के पिटारे में क्या निकले, उसकी क्या सम्भावनाएं हों, यह ठीक–ठीक जानना कठिन था। उनकी मांग को स्वीकार करना उससे भी अधिक कठिन था। चौधरी चरण सिंह को बहुत सोचना–समझना पड़ा। कांग्रेस एक लम्बी अवधि से चली आ रही ऐतिहासिक संस्था थी। उसमें चौधरी चरण सिंह को जब इतना संघर्ष झेलना पड़ा, तब विभिन्न दलों के सम्मिश्रण में जाने उन्हें क्या भुगतना पड़े। लेकिन मूल सवाल कांग्रेस के कुशासन का विकल्प प्रस्तुत करना था। कांग्रेस साढ़े तीन दशक की लम्बी अवधि में गरीबी, अशिक्षा, बीमारी, अंधविश्वास मिटा सकने में असमर्थ रही। कांग्रेस के कर्णधार अब ऐसे थे जो उसके मूल उद्देश्य – सेवा को भूल चुके थे। वे अहर्निश चुनाव के दंगल की तैयारी में जुटे रहते थे। उनकी राजनीति बनी कि धोखाधड़ी, छल–कपट, घूस–पक्षपात जैसे हो जनता की आंखों में धूल झोंक कर उनकी कुर्सी कायम रहे। इससे दलगत राजनीति का अत्यन्त ही वीभत्स रूप गांवों तक जा फैला। दो राष्ट्र के सिद्धान्त वालों का जिन्होंने समर्थन किया था तथा जिससे देश का बंटवारा हुआ था उन्हें बढ़ावा दिया जाने लगा। इससे एक नयी साम्प्रदायिकता फूटी। उसकी परवाह नहीं की गयी। जवाहर लाल नेहरू के भावनात्मक एकता के सिद्धान्तों को शब्दों में ही सीमित रखा गया। इस अधोगति के खिलाफ स्वच्छ, ईमानदार और देश के भविष्य से खेल न करने वाले विकल्प दल को बनाने की कोशिश यदि सफल नहीं भी हुई तो श्लाघ्य होगी, यह सोच कर और उसके हर पहलू को सांगोपांग जांच कर विभिन्न दलों के साथ उन्नीस मुद्दों के संयुक्त कार्यक्रम की एक योजना बनी। उसी कार्यक्रम के आधार पर संयुक्त विधायक दल गठित हुआ। चौधरी चरण सिंह सर्व सम्मति से उसके नेता चुने गये। प्रशासनिक कार्य की सुगमता और विभिन्न योजनाओं के कामों का समन्वय करने के लिए दलों की एक सम्पर्क समिति नियुक्त की गयी। इस तरह ३ अप्रैल सन् १९६७ को चौधरी चरण सिंह के नेतृत्त्व में संयुक्त विधायक दल के मंत्रिमंडल ने शपथ ग्रहण की।

यहां एक उल्लेख जरूरी है कि श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बाद में अपने एक सार्वजनिक भाषण में चौधरी चरण सिंह पर यह आरोप लगाया कि मुख्य मंत्री बनने के लिए ही चौधरी साहब ने कांग्रेस छोड़ी। ऊपर के विवरण से यह बिलकुल साफ है कि आरोप नितांत थोथा है। कांग्रेस पार्टी ने स्वयं चौधरी साहब को मुख्यमंत्री बनाने की अथक कोशिश की। अगर मुख्यमंत्री ही बनना उनका उद्देश्य होता तो कांग्रेस दल के ही मुख्यमंत्री बन गये होते। उन्होंने तो विरोधी दलों के आग्रह को भी पहले अमान्य कर दिया था। अपने ८–१–७७ के पत्र में (परिशिष्ट स) पर श्रीमती गांधी को उन्होंने साफ–साफ लिखा है कि उनका गांधीवादी आर्थिक दृष्टिकोण कांग्रेस की पूंजी–मूलक अर्थनीति से कभी मेल नहीं खा पाया और कांग्रेस में व्याप्त भ्रष्टाचार, बेईमानी चतुर्दिक फैली अनैतिकता से निराश होकर उन्होंने कांग्रेस छोड़ी। यह परिस्थितियों से उत्पन्न क्रांतिकारी और साहसिक कदम था। सन् १९६९ के चुनावों के बाद बंगाल, बिहार और हरियाणा में संयुक्त विधायक दल की सरकारें बन चुकी थीं। बंगाल के श्री अजय मुखर्जी, बिहार के बाबू महामाया प्रसाद सिन्हा, मध्य प्रदेश के श्री तख्तमल जैन, राजस्थान के श्री कुम्भाराम आर्य और सुप्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय हुमायूं कबीर ने कुछ दिनों पहले जन कांग्रेस की स्थापना की थी। चौधरी चरण सिंह का दल भी पहले जन कांग्रेस कहलाया। बाद में नवम्बर १९६७ में इन्दौर में भारतीय क्रान्ति दल का गठन हुआ। यह दल कांग्रेस के विरुद्ध अभिनव क्रांन्ति का आह्वान था। जन कांग्रेस और क्रान्ति दल के मूल सिद्धान्त को यों व्यक्त किया गया था कि मौजूदा कांग्रेस पार्टी बुनियादी कांग्रेस के उन सभी सिद्धान्तों के विपरीत तथा विरोध में है जो स्वाधीनता के पहले बुनियादी कांग्रेस की रीढ़ थी।

चौधरी चरण सिंह के मुख्यमंत्री बनते ही उत्तर प्रदेश में प्रसन्नता की लहर एक छोर से दूसरे छोर तक बह गयी। उत्तर प्रदेश के बाहर भी उसका अपार स्वागत हुआ। यह सोचा कि कांग्रेस का एक जोरदार विकल्प तो निकला। उत्तर प्रदेश में संविद सरकार का शासन लाखों–लाखों कष्टों की तुमुल हर्षध्वनि से शुरू हुआ। जन–जन का हृदय नयी क्रान्ति की ज्वाला से दमक उठा। संविद सरकार के विभिन्न घटकों की सदस्य संख्या निम्न थी – जन कांग्रेस–१७, जनसंघ–९९, संसोपा–४५, कम्युनिस्ट (मा)–१, कम्युनिस्ट दल–१४, स्वतंत्र पार्टी–११, प्रसोपा–११, रिपब्लिकन–७, निर्दलीय–१६, सोशलिस्ट–१ तथा हिन्दू महासभा–१।

घटकों ने सरकार को बड़े उत्साह से चलाने की शुरुआत की। लेकिन राजनैतिक अनुभव की कमी के कारण सभी घटक छोटे से छोटे भी, अपना राग तीव्रतम स्वर में इस तरह अलापने लगे कि दूसरों का राग

दवा रहे। सभी घटक उन्नीस मुद्दों के कार्यक्रम को अपने–अपने ढंग पर कार्यान्वित करने लगे। कुछ दिनों में वे मुद्दों को भूल कर अपने प्रभाव को बढ़ाने में ही लग गये। जनसंघ अखिल भारतीय दल के रूप में उभर रहा था। उसके संसदीय दल के नेता उप मुख्य मंत्री बनाये गये थे। यह दल अपने को सर्वोपरि मान कर चलता था। तब कांग्रेस के विरोध में एक दल बनाने की भावना उतने प्रबल रूप में नहीं पनपी थी, जितनी आपातकाल के अत्याचारों के बाद उभरी। घटकों के भिन्न–भिन्न रागों को एक स्वर में सजाना चौधरी चरण सिंह जैसे महान व्यक्तित्व को भी सुलभ नहीं हो सका। उल्टे मुख्य मंत्री के रूप में उनकी दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती ख्याति को प्रमुख घटक सह नहीं पाये। सच तो यह है कि उनकी उच्चस्तरीय प्रतिभा और प्रशासनिक दक्षता से वे उनसे ईर्ष्या करने लगे। केन्द्र की कांग्रेस सरकार और राज्य का कांग्रेस विधायक दल, जिसकी संख्या संयुक्त विधायक दल के सदस्यों से कुछ ही कम थी, संयुक्त विधायक दल के घटकों में फूट डालने और उसकी सरकार को गिराने की हर सम्भव चेष्टा कर रहे थे। तोड़–फोड़ और दल–बदल की कांग्रेसियों ने वह परम्परा चलायी जो सार्वजनिक राजनैतिक जीवन में लज्जा और क्षोभ का अभूतपूर्व कारण बनी। इससे संविद सरकार की नींव हिल गयी। अभी साढ़े दस महीने भी नहीं बीते थे कि आपसी ईर्ष्या और कलह से सरकार के टूटने की नौबत आ पहुंची।

उसके विघटन का एकमात्र कारण उसमें शामिल घटकों की घोर हठवादिता थी। प्रायः सभी घटक उन्नीस मुद्दों में शामिल अपने दल के कार्यक्रमों को एकदम कार्यान्वित करना चाहते थे। भारतीय क्रान्ति दल की यह दलील कि एक बारगी सभी काम नहीं किये जा सकते, उन्हें पसन्द नहीं आई। वे उन कामों की सही प्राथमिकता करने से भी कतराये। उनका उद्देश्य अपनी–अपनी घोषित योजनाओं का प्रचार कर अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाना था। वे मुख्य मंत्री की सार्वजनिक रूप से अनर्गल टीका–टिप्पणी करने लगे। कम्युनिस्ट पार्टी हड़ताली राज्य कर्मचारियों और मजदूरों के खिलाफ शासनात्मक कार्यवाही को समाप्त कर सम्बन्धी मुकदमों को वापिस ले लेने की मांग पर मंत्रिमंडल से अलग हो ही चुकी थी। संसोपा के मंत्री अपने दल के गया अधिवेशन में पारित प्रस्तावों को (१) ६१/४ एकड़ जोत पर लगान माफ हो, (२) सब राजनैतिक कैदी तत्काल रिहा कर दिये जायें तथा (३) शासन का सौ फीसदी काम हिन्दी में हो, तत्काल लागू करने पर बेहद जोर दे रहे थे। संसोपा के मंत्रियों ने दिल्ली के हिन्दी आन्दोलन में कानून भंग कर अपने को गिरफ्तार कराया था और वहां की जेल में बन्दी बन कर भी उत्तर प्रदेश के अपने विभागों का काम मंत्री

के रूप में चलाने की हास्यास्पद कोशिश की थी। उन्होंने यह एलान भी किया था कि केन्द्र के किसी मंत्री के उत्तर प्रदेश आने पर उसे गिरफ्तार कर लिया जायेगा। प्रधान मंत्री इन्दिरा गांधी उन्हीं दिनों वाराणसी और रायबरेली के दौरे पर आने वाली थीं। संसोपा ने उनका घेराव कर उन्हें गिरफ्तारी में ले उन्हें तथाकथित जनता की अदालत में पेश करने की घोषणा की थी। उधर संविद का संख्या में सबसे बड़ा घटक जनसंघ हाल ही में हुए मंत्रियों के विभागों में परिवर्तन से चौधरी चरण सिंह के खिलाफ ताल ठोंक कर विष वमन कर रहा था। जनसंघ विधायक दल के नेता श्री राम प्रकाश, उप मुख्य मंत्री थे, उन्होंने संसोपा के साथ मिलकर चौधरी चरण सिंह को संविद के नेता पद से हटाने की खुल्लमखुल्ला मांग की।

इस विस्फोटक खींचातानी में चौधरी चरण की दशा बहुत विपन्न थी। उन्होंने इस विरोधी वातावरण में अदम्य साहस से मुख्य मंत्री के कर्त्तव्य को निबाहा। तारीख २ व ३ जनवरी १९६८ को प्रधान मंत्री के रायबरेली के दौरे में वह स्वयं उनके साथ रहे। वहां प्रधान मंत्री के खिलाफ संसोपा के उग्र प्रदर्शनकारियों को उन्होंने लाठी चार्ज और आंसू गैस से तितर–बितर कराया। वाराणसी भी वे प्रधानमंत्री के साथ गये और वहां शान्ति व्यवस्था कायम रखने के लिए संसोपा के नेताओं को एहतियाती कार्यवाही में गिरफ्तार करा लिया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में, जहां प्रधान मंत्री का कार्यक्रम था, उन्होंने पुलिस और पी० ए० सी० दल को शान्ति तथा सुव्यवस्था को कायम रखने के लिए पांच दिन तक तैनात रखा। संसोपा मुख्य मंत्री की सफल नीति पर और क्षुब्ध हुआ।

संसोपा और जनसंघ दोनों यह जानते थे कि चौधरी चरण सिंह के महान व्यक्तित्व के निर्देशन के बिना संविद ताश के महल की तरह भरभरा कर बिखर जायेगा। उन्हें शासन का कोई अनुभव नहीं था। वे यह नहीं जानते थे कि ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री चर्चिल ने द्वितीय महायुद्ध की इंग्लैण्ड की मिलीजुली राष्ट्रीय सरकार को लक्ष्य कर संयुक्त प्रणाली से काम करने का एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। उन्होंने कहा कि प्रधान मंत्री सब मंत्रियों के बराबर होते हुए भी नम्बर एक पर होता है। दूसरे सभी मंत्री दो, तीन या चार पर होते हैं। इन सबके लिए एकजुट होकर काम करने का यह तरीका है कि दो, तीन या चार अपना काम सम्पन्न करते समय नम्बर एक – टीम के कप्तान के दृष्टिकोण का सर्वोपरि ध्यान रखें। विभिन्न दलों के मंत्री ठीक इसका उल्टा आचरण कर रहे थे। चौधरी चरण सिंह ने संविद के सदस्यों को दिनांक २५ जनवरी सन् १९६८ को एक पत्र सम्बोधित किया, जिसमें अपनी मानसिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा कि "विगत अप्रैल में नेता पद ग्रहण करने

के बाद से मुझे एक सप्ताह का भी चैन नहीं मिला, जिसमें आज एक तो कल दूसरे घटक ने कोई न कोई समस्या न खड़ी कर दी हो।" दोषी राज कर्मचारियों, अपराधी राजनैतिक बन्दियों तथा सरकार में शामिल होकर अपनी ही सरकार के खिलाफ सत्याग्रह या दूसरे आन्दोलन खड़ा करने पर उन्होंने लिखा कि "कानून का पालन सभ्य समाज का मूल आधार है और उसके बिना अराजकता फैल जाएगी।" चौधरी साहब जैसे महान जनसेवक में उत्सर्ग की शक्ति थी, अराजकता फैलाने की नहीं। संसोपा, जनसंघ और दूसरे घटकों को उपर्युक्त तर्क ग्राह्य नहीं हुए। संसोपा ने परिस्थिति का लाभ उठा कर ६१ एकड़ लगान की माफी के सवाल पर भी भारी बावेला मचाया। जनसंघ ने इस मांग के विरोध में उतना ही ऊंचा शोर मचाया। संसोपा ने समन्वय समिति की बैठकों का बहिष्कार किया।

आपसी खींचातानी में कांग्रेस को सत्ता में वापस न आने देने का ध्यान भी लुप्त हो गया। चौधरी चरण सिंह इस आपस की खींचातानी से बहुत मर्माहत हुए। कोई घटक यह नहीं चाहता था कि चौधरी चरण सिंह नेतृत्व पद से इस्तीफा दें। उस ऊंचाई का सर्व दक्ष नेता मिलता कहां? संसोपा की उग्र राजनीति ने परिणाम की कल्पना भी नहीं की थी। कहीं उनके मन में भी छिपा था कि चौधरी चरण सिंह त्याग पत्र नहीं देंगे। चौधरी चरण सिंह ने किन्तु विवश होकर १७ अप्रैल सन् १९६८ को मुख्य मंत्री पद से अपना त्यागपत्र राज्यपाल के पास भेज दिया। दूसरे दिन 18 अप्रैल को बजट का सत्र शुरू होने वाला था। प्रदेश की जनता और संविद के सभी घटक स्तंभित रह गये। वे कांग्रेसी प्रचार के भ्रम में थे कि चौधरी साहब मुख्य मंत्री पद नहीं छोड़ेंगे।

चौधरी साहब निश्चय ही संविद सरकार को भंग नहीं करना चाहते थे। किसी तरह तो कांग्रेस के विकल्प की रूप रेखा उभरनी शुरू हुई थी। उन्होंने अपने त्यागपत्र में राज्यपाल को साफ–साफ लिखा था कि संविद के नये नेता को वे अपना समर्थन देंगे। उन्होंने यह भी लिखा था कि अगर नया नेता न चुना जा सके तो विधान सभा को भंग कर मध्यावधि चुनाव कराया जाय। नेता न चुने जाने की संभावना इसलिए उभरी कि विभिन्न घटक शायद किसी भी व्यक्ति विशेष को नेता स्वीकार करने को तैयार नहीं थे जिससे उनका राग मन्द न पड़े। ठीक यही स्थिति सामने आयी। घटकों की पहली प्रतिक्रिया चौधरी चरण सिंह को पुनः नेता पद पर लौटाने की हुई। उन्होंने चौधरी साहब से बड़ी विनम्रता से इसके लिए अनुनय किया। चौधरी चरण सिंह को विभिन्न घटकों के कार्य–कलाप का तीखा अनुभव हो चुका था। कम्युनिस्ट पार्टी और संसोपा के मंत्री पहले भी त्याग पत्र दे चुके थे। संसोपा के मंत्रियों ने मंत्री की हैसियत से

कानून तोड़ा था। उन्होंने प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को उत्तर प्रदेश में गिरफ्तार करने की असफल कोशिश की थी। इन सबसे चौधरी साहब इतने खिन्न थे कि उन्होंने त्यागपत्र देने के बाद एक वक्तव्य में कहा था कि "मेरी दशा उस जानवर की सी हो गयी थी, जो बोझ ढोते ढोते आजिज आ गया था और हरी घास चरने की स्वतंत्रता के लिए लालायित था।" उन्होंने नेता पद पर लौटने से इनकार कर दिया। घटकों ने इसकी भी आशा नहीं की थी। वे चौधरी चरण सिंह को कितना कम जानते थे? निराश होकर उन्होंने श्री राम चन्द्र विकल को नेता चुना। श्री विकल बहुत ही सीधे–सादे इंसान थे। चौधरी साहब और उनका दल उनके लिए इसलिए तैयार नहीं था कि उग्रवादी दल उनसे उल्टे सीधे काम करा कर प्रशासन और विकास के कार्यों को ठप्प कर देंगे। चौधरी चरण सिंह ने राज्य के हित में अपना मत राज्यपाल को सूचित कर दिया। घटकों में खलबली मच गयी और नये नेता की तलाश दुबारा शुरू हुई। राज्य को कांग्रेसी कुशासन में लौटाने को कोई तैयार नहीं था, चौधरी साहब भी नहीं। तब बदायूं के एक विधायक, जो जिला न्यायाधीश के पद से अवकाश प्राप्त कर सार्वजनिक जीवन में आये थे, नेता चुना गया। चौधरी चरण सिंह और उनके दल ने उन्हें पूरा समर्थन दिया। राज्यपाल ने किन्तु संयुक्त विधायक दल कि बहुमत के विपरीत और नये नेता के सर्वसम्मति से चुने जाने पर भी राज्य में १५ अप्रैल सन् १९६८ को राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया। निश्चय ही ऐसा केन्द्र के इशारे पर किया गया। संविद के घटकों की आंखें आश्चर्य से कोटरों के बाहर निकल आयीं। कांग्रेस पार्टी अपनी प्रसन्नता छिपा नहीं सकी। राज्य का जन साधारण दुःखी हुआ। उसे कांग्रेस के आजादी के बाद से चले आ रहे लम्बे कुशासन से त्राण मिला था। चौधरी चरण सिंह का नेतृत्त्व उनके लिए, किसान मजदूर सबके लिए वरदान था। उन्होंने अपना सिर ठोक लिया–नया सूरज निकला ही था कि घनघोर काली घटाओं ने उसे ढंक लिया।

संविद के अल्पकालीन अवधि में चौधरी चरण सिंह के शासन ने प्रत्येक विभाग और जनता जर्नादन में स्वच्छ और दक्ष प्रशासन की बिजली जला दी। घटकों में समर्पित भावना से काम करने का अलख भी जागा। वे टकराये दलों के स्वार्थ और राजनैतिक अनुभव की कमी से। अन्यथा सभी विभागों के कार्यकलाप में चौधरी चरण सिंह के नाम की एक नयी हवा बह उठी। सभी घटकों ने अपने–अपने विभागों का काम बड़ी दक्षता और तत्परता शुरू किया। ऊंचे राजपत्रित अधिकारियों और कर्मचारियों के विरुद्ध जहां कठोर कार्यवाही की गयी, वहां मंत्रियों, विधायकों, जिला परिषदों और दूसरी स्वायत्त इकाइयों के अध्यक्षों के खिलाफ प्राप्त आरोपों

पर पहले अध्यादेश, बाद में कानून द्वारा जांच कराने की स्थायी समिति गठित की गयी। यह भ्रष्टाचार पर तब तक का कठोरतम प्रहार था। इस कदम की जन–जन में सराहना हुई। एक नयी आशा का क्षितिज सबकी आंखों में आ उगा। उन विभागों के जिन्हें जनता के दैनिक सम्पर्क में काम करना पड़ता था, नियमों आदि का सरलीकरण कर उन्हें प्रखर रूप में जनोप–योगी बनाया गया। इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया कि लाल फीताशाही – काम के निस्तारण में अकारण की देरी–बिलकुल मिट जाय। विभागों में प्रत्येक स्तर पर उत्तरदायित्व निर्धारित किया गया, जिससे किसी अस्पष्टता या द्विअर्थी बात से बेईमानी को शरण न मिले। शासकीय विभागों के बाहर वाणिज्य, व्यापार तथा दूसरे आर्थिक विनिमय के कार्य–कलापो में होने वाले अपराधों के बारे में गुप्त सूचना इकट्ठा करने तथा उस पर समुचित कार्यवाही करने का एक संगठन बनाया गया। यह सर्वथा नया प्रयोग था। इससे राजनयिकों, राज कर्मचारियों, व्यापारियों आदि में ईमानदारी और नैतिकता का वातावरण विकसित हुआ। गरीब जनता को भी एक हद तक तात्कालिक त्राण मिला। शोषित और पीड़ित जन समुदाय प्रसन्नता से विह्वल हो उठा। ये कदम, यह प्रणाली, अभूतपूर्व थे। उसे चौधरी चरण सिंह जैसा धरती का लाल और तपोनिष्ठ ही सफलता से सम्पन्न कर सकता था। स्वच्छ, दक्ष और जनता जर्नादन के उत्थान में समर्पित शासन प्रणाली बड़े वेग से चौधरी चरण सिंह के मुख्यमंत्रित्व काल में उत्तर प्रदेश में पहली बार प्रभावित हुई।

चौधरी चरण सिंह के काम करने की यह विशेषता रही है कि उनकी दृष्टि से छोटी से छोटी बात भी ओझल नहीं हो पाती है और उनकी बौद्धिकता उसके पक्ष–विपक्ष के मूल को सहज ही हृदयंगम कर लेती है। अवैतनिक मजिस्ट्रेटों की परिपाटी अंग्रेजों ने सामन्तशाही बढ़ाने और अपना दबदबा कायम रखने के लिए चलायी थी। अवैतनिक मजिस्ट्रेट न्याय पद्धति में कालक्रम से भ्रष्टाचार के गढ़ भी बन चुके थे। उससे जनता को न कोई लाभ था और न वह प्रजा के सहयोग पर आधारित था। अपने अल्पकालीन मुख्यमंत्रित्व काल में चौधरी चरण सिंह ने अवैतनिक मजिस्ट्रेटों की प्रथा को समाप्त कर दिया। कांग्रेस पार्टी की सरकार भी इस प्रथा को दुबारा चालू नहीं कर सकी।

हर विभाग में विभागीय सतर्कता संगठन स्थापित किए गये और विभागाध्यक्षों को शासकीय भ्रष्टाचार की जड़ को उखाड़ फेंकने के लिए जिम्मेदार ठहराया गया। विभागाध्यक्षों का ध्यान इस ओर मुड़ने से विभागों को स्वच्छन्द बनाने में अल्पकाल में ही अपेक्षाकृत सफलता भी मिली।

गांव और वहां की जनता चौधरी चरण सिंह की प्राण की नसें हैं।

कृषि उत्पादन बढ़ाने की सारी सम्भव सुविधायें गांवों तक प्राथमिकता से पहुंचायी गयीं। लघु सिंचाई योजनाओं तथा दूसरे उत्पादक कार्यों के लिए ऋण देने को सुगम और सरल बनाने के लिए नियमों में सुधार किए गये। किसानों की पैदावार, खास कर गन्ना और गुड़ आदि अर्थकरी उपजों की उचित कीमत दिलाने के लिए ठोस कदम उठाये गये। एक अप्रैल सन् १९६७ को भूमि भवन कर समाप्त कर दिया गया। साढ़े छः एकड़ तक की जोत पर लगान आधा कर दिया गया, दो रुपये तक का लगान बिलकुल माफ कर दिया गया। खेती के हर साधन को किसानों के दरवाजे तक पहुंचाने की विशेष व्यवस्था की गयी। प्राथमिकता और सच्चाई से किये गये इन कामों से खेती ही नहीं किसान भी लहलहा उठे।

उसी तरह राज्य कर्मचारियों के अनुशासन और कार्य कुशलता पर जोर दिया गया। पुलिस की दक्षता, अनुसंधान और निगरानी को भी कुशल बनाने पर विशेष बल दिया गया। पुलिस को बड़े–बड़े नगरों में रेडियो सेल पहली बार प्रदान किए गये। थानेदारों की सक्षमता की गति बढ़ाने के लिए उनको घोड़ों की जगह मोटर साइकिल रखने के लिए ऋण देने का प्राविधान किया गया। थानेदारों के चुनाव में शारीरिक सुदृढ़ता और खेलकूद की प्रवीणता को भी शामिल किया गया। वर्षों से बड़ी–बड़ी मिलों और उद्योगों पर बकाया चल रहे सरकारी ऋण की वसूली नियमित ढंग पर करायी गयी। एक अत्यन्त महत्त्व का काम, जो चौधरी चरण सिंह के मुख्यमंत्रित्व काल में सम्पन्न हुआ, वह न्यायपालिका का कार्यपालिका से पृथक करना था। किसी भी आजाद देश में कार्यपालिका जो अपराधों का अनुसंधान कर उनके निवारणार्थ मुकदमे न्यायालयों में चलाती है, स्वयं न्यायिक मजिस्ट्रेट बन कर उसका फैसला नहीं करती है। यह परिपाटी भी अंग्रेजों की अपने दबदबे और हिन्दुस्तानियों को गुलाम रखने के लिए चलायी हुई थी। चौधरी चरण सिंह ने उसे २ अक्तूबर ६७ को, गांधी जी के जन्म दिन पर, समाप्त कर न्यायपालिका को पृथक कर दिया। इससे न्याय का सच्चा महत्त्व बढ़ा और लोगों में न्याय पद्धति पर विश्वास बढ़ा। राज्य में सरकारी काम–काज में हिन्दी का प्रयोग शत–प्रतिशत कर दिया गया, विश्वविद्यालय स्तर पर बी० ए० के पाठ्यक्रम में सामान्य अंग्रेजी स्वैच्छिक बना दी गयी, उर्दू को प्रोत्साहन दिया गया और जिलों के मुख्यालयों के साथ–साथ तेईस तहसीलों में उर्दू में सरकारी गजट उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी। एक विशिष्ट काम यह भी हुआ कि जाति से जुड़े शिक्षा संस्थाओं को अनुदान न देने का निश्चय किया गया।

दस महीने की अल्प अवधि में इतना कुछ मौलिक और दूरगामी प्रभावों का काम कर लेना स्वयं में एक विशिष्टता थी। चौधरी चरण सिंह की

संविद सरकार सुशासन और लोक कल्याण के कार्यों को भ्रष्टाचार मुक्त और निपुण बनाने के लिए कृत संकल्प थी। उसने अथक कोशिश की और प्रदेश ही नहीं देश भर में अभिनव कौंध की चमक जाग गयी। ऐसे उत्साह से शासन का कार्य पहले कभी नहीं चला था। यह सोच और लगन पहले होती तो देश की दशा आज दूसरी होती–पचास प्रतिशत लोग आज गरीबी की रेखा के नीचे जीवन नहीं बिताते। राजकीय कर्मचारियों में वेतन की असमानता कम नहीं थी। आर्थिक दृष्टिकोण से वे फिर भी देश के बहुसंख्यक गरीब किसानों मजदूरों की तुलना में सुरक्षित थे। उनमें आर्थिक विषमता के कारण असंतोष का होना स्वाभाविक था। लेकिन आर्थिक रूप से सुरक्षित होकर उनमें सम्पत्ति बटोरने के लिए भ्रष्टाचार का होना नितान्त निदनीय था। चौधरी चरण सिंह के मुख्य मंत्रित्व काल में उन्हें आत्म निरीक्षण और भ्रष्टाचार के पाप से मुक्त होने के लिए विवश किया। उद्योगपतियों, व्यापारियों, पेशेवालों जैसे वकील, डॉक्टरों की अतुल कमाई भी सर्वथा न्यायोचित नहीं थी। लेकिन उनके कारण राज कर्मचारी धन कमाने के लिए भ्रष्टाचारी बनें, यह देश के लिए बड़े खतरे की सूचक थी। राज्य कर्मचारियों को भ्रष्टाचार मिटाने के लिए सोचना पड़ा। भ्रष्टाचार का पूंजीवादी व्यवस्था में मिटना के आसान कदापि नहीं, लेकिन वह रोका और कम किया जा सकता है। चौधरी साहब नाम से भ्रष्टाचार के खिलाफ जो हवा वही, भ्रष्टाचार जिस तरह दुबक कर छिपने लगा, वह उनके व्यक्तित्व का इस संबंध में भविष्य के लिए दिशा निर्देश था। चौधरी चरण सिंह ईमानदार प्रशासन और गरीबी के पाप को गांधी जी के सिद्धान्तों के अनुरूप मिटाने के प्रयासों में देश भर के प्रेरणा बने। एक शिक्षित किन्तु अभावग्रस्त उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले के किसान ने ताल ठोंक कर कहा था – "सारे राज्यों में एक–एक चरण सिंह पैदा करो। गरीबी मिट जाएगी और भ्रष्टाचार का भूत भाग जाएगा।" उसकी बात सोलह आना सच थीं।

चौधरी चरण सिंह ने हिन्दुस्तान के सबसे बड़े राज्य में ईमानदार प्रशासन व्यवस्था की नींव डाली। उन्होंने अनुसूचित जाति के एक सदस्य को पहले पहल राज्य लोक सेवा आयोग का सदस्य नियुक्त किया। उनके मंत्रिमंडल में हरिजनों के अतिरिक्त पिछड़े वर्गों में से चार मंत्री बनाये गये। उनमें पासी समाज का एक प्रतिनिधि पहले–पहल मंत्रिमंडल में आया ओर मंत्री बना था। गरीब, हरिजनों और पिछड़े वर्गों को उन्होंने इस तरह पहले–पहल व्यापक प्रोत्साहन दिया।

उनकी प्रतिभा का प्रभाव ऐसा था कि उनके मुख्य मंत्री का कार्य भार संभालते ही महंगाई में गिरावट आ गयी। जमाखोर और कालाबाजारिये

व्यापारी उनके नाम से कांपते थे। किसानों को उचित मूल्य दिलाने के लिए उन्होंने गेहूं की सरकारी खरीद शुरू की और प्रति क्विटल गेहूं का दाम ८०/८५ रुपये रखा। खाद्य पदार्थों की अधिप्राप्ति की उन्होंने एक योजना भी बनायी, जिसका राज्य कांग्रेस ने घोर विरोध किया। छः साल बाद केन्द्र सरकार ने इस योजना को अपनाया। बाद में दूसरे राज्यों ने भी उसे अपनाया। चौधरी चरण सिंह ने कृषि की हर उपज का विशेष कर गन्ने का पहले से कहीं अधिक मूल्य दिया।

उनके कार्यकाल में राज्य कर्मचारियों में हर स्तर पर अनुशासन रहा। उन्होंने चौधरी साहब के मुख्य मंत्रित्व काल में कोई हड़ताल नहीं की। इसका कारण भय नहीं था। चौधरी चरण सिंह साधारण स्तर के कर्मचारियों की हर समस्या और कठिनाइयों पर ध्यान देते थे। राज्य कर्मचारी सच्चा निर्देशन पा कर अपना कर्तव्य कुशलता से निभाते थे। चौधरी चरण सिंह को ऊंचा से ऊंचा अधिकारी भी बहका नहीं सकता था। वे विषय वस्तु को पूरी तरह समझ कर ही कोई निर्णय लेते थे। उच्चाधिकारी भी इसलिए सजग रहते थे। राज्य के किसी उद्योग या कारखाने में भी मजदूर संगठनों ने हड़ताल नहीं की। मजदूर संगठन विभिन्न दलों के थे। चौधरी चरण सिंह की कुशल कार्य प्रणाली से प्रभावित होकर उन्होंने कभी हड़ताल नहीं की। इससे औद्योगिक उत्पादन बढ़ा। चौधरी साहब ने उच्च स्तरीय सार्वजनिक व्यक्तियों के विरुद्ध अध्यादेश द्वारा एक स्वतंत्र जांच एजेन्सी का गठन किया। केरल और उड़ीसा सरकारों ने अपने यहां ऐसी एजेन्सियां बनायीं। परन्तु चौधरी चरण सिंह के त्यागपत्र के बाद ही राष्ट्रपति ने उसे रद्द कर दिया।

शिक्षा संस्थाओं की दशा यह हो गयी थी कि विद्यार्थी संघों ने कालेजों, विश्वविद्यालयों को राजनीति का अखाड़ा बना दिया था। साल में हमेशा हड़ताल ही हड़ताल हुआ करती थी। इससे पढ़ाई–लिखाई तो बन्द रहती ही थी, विद्यार्थियों में हिंसा की वृत्ति भी उभरने लगी थी। विद्यार्थियों के विरुद्ध जाना साहस का काम था। चौधरी चरण सिंह ने एक अध्यादेश के अन्तर्गत यह शासकीय व्यवस्था की कि शिक्षण संस्थाओं में छात्र संघ का होना अनिवार्य नहीं, प्रत्युत ऐच्छिक होगा। अधिकांश विद्यार्थी पढ़ने लिखने के प्रेमी थे। छात्र संघों के राजनीति प्रेरक पदाधिकारी ही हड़ताल आदि व्यावधानों को उपस्थित करते थे। ऐच्छिक होकर छात्र संघों की उद्दंडता काफी हद तक मिट गयी। चौधरी साहब के समय में हड़ताल हुई ही नहीं। उन्होंने गुण्डागर्दी रोकने के लिए गुण्डागर्दी नियंत्रण अधिनियम को भी बनाया और उसे सफलता से लागू किया।

एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि राज्य में साम्प्रदायिक दंगों का बिलकुल रुक

जाना था। उन दिनों बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात में गम्भीर साम्प्रदायिक दंगे हुए थे। उनके मुख्य मंत्रित्व काल में उत्तर प्रदेश में कहीं भी साम्प्रदायिक दंगे का न होना उनके अल्प संख्यकों के प्रति सद्भावना और प्रेम का परिचायक है।

उनके अल्प अवधि के मुख्य मंत्रित्व काल में सारा देश उनकी कुशल और दृढ़ प्रशासनिक क्षमता का लोहा मानने लगे। यह दृढ़ता तथा कुशलता इसलिए आई कि एक उच्च गांधीवादी थे और साथ ही सरदार पटेल जैसे कार्य कुशल। चौधरी चरण सिंह के निजी कमरे में चार तैल चित्र अब भी सुशोभित हैं। वे चित्र हैं– महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानन्द और सरदार वल्लभ भाई पटेल के। वही ज्योतिपुंज उनके जीवन के प्रेरणा स्रोत थे।

(२)

राष्ट्रपति शासन को समाप्त करने के लिए १९६९ में उत्तर प्रदेश में मध्यावधि चुनाव हुए। उसमें भारतीय क्रांति दल के ९८ सदस्य विजयी हुए। कांग्रेस को पूर्ण बहुमत नहीं प्राप्त हुआ था। विधायकों की तोड़–फोड़ के बाद श्री चन्द्रभान गुप्त के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार बनी। चौधरी चरण सिंह को मुख्य विरोधी दल की भूमिका निभानी पड़ी। मई सन् १९६९ में राष्ट्रपति डॉक्टर जाकिर हुसेन दिवंगत हो गये। नये राष्ट्रपति के चुनाव पर कांग्रेस की राजनीति ने एक नया मोड़ ले लिया। कांग्रेस दो गुटों में विभाजित होने को अग्रसर हुई। यहीं से पुराने मान्य लीडरों के कांग्रेस से अलग हो जाने से श्रीमती इन्दिरा गांधी के एकतंत्र प्रणाली की शासन पद्धति की शुरुआत हुई है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने पहले श्री नीलम संजीव रेड्डी का नाम राष्ट्रपति पद के लिए प्रस्तावित किया। बाद में वह स्वतंत्र उम्मीदवार श्री वी० वी० गिरि को समर्थन देने लगी। कांग्रेस के पुराने नेताओं ने श्री रेड्डी का समर्थन किया। देश के बुद्धि–जीवियों और स्वतंत्र विचारकों ने तीसरे उम्मीदवार श्री चिन्तामणि देशमुख का समर्थन किया। भारतीय क्रांतिदल ने श्री देशमुख का समर्थन किया। अपनी दूसरी वरीयता का मत दल ने श्री वी० वी० गिरि को दिया। श्री गिरि चुनाव जीत गये। श्रीमती गांधी की दुरंगी चाल कांग्रेस के उच्च कमांड को पसन्द नहीं आई। उन्हें कांग्रेस से निष्कासित कर दिया गया। श्रीमती गांधी ने श्री जगजीवन राम की अध्यक्षता में अलग कांग्रेस बना ली। कांग्रेस के इस विभाजन का उत्तर प्रदेश पर विशेष असर पड़ा। दोनों कांग्रेस के नेता चौधरी चरण सिंह के पास सरकार बनाने का प्रस्ताव लेकर दौड़ने लगे।

१९६९ में हुए अपने कानपुर अधिवेशन में भारतीय क्रांति दल ने ग्राम परक आर्थिक नीति पर देश को शक्तिशाली बनाने के लिए बल दिया था। उस प्रस्ताव में कहा गया था कि कृषि की उपज बढ़ा कर और छोटे–छोटे उद्योगों को गांव में लगा कर शहरों में बढ़ती हुई आबादी के दबाव को रोका जा सकता है। इसीसे बेरोजगारी भी मिटेगी। इस स्पष्ट नीति की घोषणा पर भी कांग्रेस के दोनों दल चौधरी साहब के पास दौड़ रहे थे, क्योंकि यह प्रायः निश्चित था कि श्री चन्द्रभान गुप्त की सरकार ११ फरवरी को प्रारम्भ होने वाले बजट सत्र में गिर जायेगी। श्रीमती इन्दिरा गांधी पंडित कमलापति त्रिपाठी को मुख्य मंत्री बनाना चाहती थीं। श्री गुप्त ने अपनी सही स्थिति का अनुमान लगाकर १० फरवरी को अपनी सरकार का इस्तीफा दे दिया। उन्होंने चौधरी चरण सिंह को मुख्य मंत्री पद के लिए प्रस्तावित किया और क्रांति दल को अपने दल का समर्थन देने का वादा किया। दूसरी ओर श्रीमती गांधी ने अपने प्रतिनिधि श्री द्वारका प्रसाद मिश्र को लखनऊ भेजा। श्री मिश्र जी ने चौधरी चरण सिंह से भारतीय क्रांति दल की सरकार बनाने का आग्रह किया और उन्होंने इन्दिरा कांग्रेस के पूर्ण समर्थन का वादा किया। उन्होंने यह आश्वासन दिया कि चौधरी साहब की आर्थिक नीति में कोई बाधा नहीं उपस्थित की जायेगी। उक्त आश्वासन पर एक साधु की तरह विश्वास करके चौधरी साहब १७ फरवरी सन् १९७० को भारतीय क्रांति दल के नेता के रूप में मुख्य मंत्री बने। उनकी सरकार में मई और जुलाई ७० में इन्दिरा कांग्रेस के मंत्री भी शामिल किए गये। पूरे मंत्रिपरिषद् में १३ इन्दिरा कांग्रेसी थे और १० क्रांति दल के। पं० कमलापति त्रिपाठी इन्दिरा कांग्रेस के प्रान्तीय अध्यक्ष थे। वे मंत्रिमंडल में शामिल नहीं हुए। शायद अपने परिवार वर्ग की सुप्रसिद्धि पर चौधरी साहब के रुख से वे परिचित थे। इसलिए उन्होंने मंत्रिपरिषद् से बाहर रहना ही विवेक माना।

नयी सरकार ने नये उत्साह से संविद के अधूरे कार्यक्रम को पूरा करना शुरू किया। कानून की प्रतिष्ठा और उसमें जनमानस के विश्वास को तत्काल प्राथमिकता दी गयी। पुलिस को चुस्त बनाया गया और गुण्डा विरोधी अभियान को जोरों से चलाया गया।

कृषि की उपज बढ़ाने को फिर सर्वोपरि प्राथमिकता दी गयी। इसके लिए उर्वरकों से बिक्री कर उठा लिया गया। राष्ट्रीय कृत बैंकों से ऋण की अधिक सुविधा दिलायी गयी, भूमि सुधार बैंकों को चुस्त और उपयोगी बनाया गया। इसी क्रम में साढ़ेतीन एकड़ वाली जोत के किसानों का लगान माफ किया गया। इससे आठ लाख जोतों को लाभ पहुंचा। भूमिहीन खेतिहर मजदूरों को खेती योग्य भूमि देने के कार्यक्रम को पुष्ट

किया गया। इतना कि छरू महीनों में ही (जून तक) ६,२६,३३८ एकड़ भूमि के सीरदारी पट्टे और ३१,१८८ एकड़ के आसामी पट्टे दिए गए। सीलिंग से प्राप्त जमीन भी भूमिहीन मजदूरों को जो प्रायः सभी हरिजन वर्ग के थे दी गयी। उन्हीं दिनों श्रीमती गांधी ने देशी रियासतों के राजाओं के "प्रिवी पर्स" को समाप्त करने का संसद में प्रस्ताव किया। चौधरी चरण सिंह ने सरदार पटेल के स्थायी अनुबन्ध को झूठी ख्याति के लिए समाप्त करने का विरोध किया। उनके दल के संसद सदस्यों ने "प्रिवी पर्स" की समाप्ति के विरोध में वोट दिया। प्रस्ताव को निर्धारित बहुमत नहीं प्राप्त हो सका। इससे चिढ़कर श्रीमती गांधी और उनके दल ने उत्तर प्रदेश में सार्वजनिक रूप से चौधरी चरण सिंह की खुल्लमखुल्ला आलोचना शुरू कर दिया। एक अजीब विडम्बना पैदा हुई। इन्दिरा कांग्रेस के लोग मंत्रिमंडल में रह कर राजकाज चला रहे थे और बाहर वे हड़ताल, घेराव और आन्दोलन की धमकियां दे रहे थे। राय बरेली की एक सार्वजनिक सभा में स्वयं श्रीमती गांधी ने चौधरी चरण सिंह के विरोध को प्रोत्साहित किया। एकतंत्री नेता का इशारा पाकर मंत्रियों ने जोर पकड़ा। चौधरी चरण सिंह ने राज्यपाल से संस्तुति की कि कांग्रेस मंत्रियों को तत्काल पदों से हटा दिया जाय। उनकी मान्यता थी कि वे विधान सभा में बहुमत का विश्वास प्राप्त कर लेंगे। लेकिन राज्यपाल ने विधान सभा को भंग कर राष्ट्रपति शासन लागू करने की संस्तुति की। स्वच्छ राजनीति का स्थान घृणित राजनीति ने ले लिया। श्रीमती गांधी ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि विधान सभा का सत्र न हो। उन्हें चौधरी साहब के त्यागपत्र की आशा थी। चौधरी चरण सिंह ने त्यागपत्र देने से इनकार कर दिया। वे अब भी विधान सभा में विश्वास प्राप्त करना चाहते थे। श्रीमती गांधी की सरकार ने तब राज्यपाल से एक रिपोर्ट मंगा कर चौधरी चरण सिंह की सरकार को बर्खास्त करने की अनुशंसा की। राष्ट्रपति उन दिनों रूस, हंगरी आदि देशों की यात्रा पर गए थे। हवाई जहाज से विशेष प्रतिनिधि द्वारा राष्ट्रपति से जनतांत्रिक सरकार को बर्खास्त करने का आदेश प्राप्त करना ऐतिहासिक और अभूतपूर्व घटना थी। राष्ट्रपति के आदेश में कहा गया था कि राज्यपाल की संस्तुति पर राष्ट्रपति ने अपने विवेक से पूरी तरह संतुष्ट होकर राज्य के मंत्रिमंडल को बर्खास्त किया है। २ अक्तूबर को मंत्रिमंडल बर्खास्त किया गया। यह राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की पुण्यतिथि पर उनके प्रति अद्‌भुत श्रद्धांजलि थी।

श्रीमती इन्दिरा गांधी सदस्यों को बहला फुसला कर लालच से अपने दल में लाने की पद्धति को अपना कर सब राज्यों में अपना प्रभाव कायम करना चाहती थीं। उत्तर प्रदेश में चौधरी चरण सिंह ने यह नहीं होने

दिया। संगठन कांग्रेस के सहयोग से उत्तर प्रदेश में श्री त्रिभुवन नारायण सिंह के नेतृत्व में नयी सरकार का गठन हुआ। इस तरह उत्तर प्रदेश में विरोध पक्ष सत्ता पक्ष में आ गया। श्रीमती गांधी का चक्र भी तेजी से घूम रहा था। "प्रिवी पर्सी" को खत्म कर और बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर वे अपने को प्रगतिशील नेता बता रही थीं। अशिक्षित तथा गरीबी के मारे देश पर यह छलावा छा गया। लोग भूल गये कि श्रीमती गांधी के शासन काल में देश में पूंजीवाद इस तेजी से फैला कि उन्हें पूंजीपतियों का पोषक कहना गलत नहीं होगा। श्रीमती गांधी ने लोक सभा को भंग कर ७१ में चुनाव की घोषणा कर दी। चुनावों के पूर्व चौधरी चरण सिंह विरोधी दलों को एक झण्डा, एक मंच और एक निशान पर लाना चाहते थे। विरोधी दलों ने अपने अस्तित्त्व को विलीन करना समुचित नहीं माना। नतीजा, सामने आया। श्रीमती गांधी के "गरीबी हटाओ" नारे से, यद्यपि देश में गरीबी बेतहाशा बढ़ रही थी, वह चुनाव जीत गयीं। विरोधी दल बुरी तरह हारे। सत्ता का नंगा नाच शक्ति के दुरुपयोग से शुरू हुआ। तोड़–फोड़ और दल–बदल की अभूतपूर्व विभीषिका से बौद्धिक जगत त्रस्त हो उठा। इसी आधार पर बहुमत बना कर पं० कमलापति त्रिपाठी को उत्तर प्रदेश का मुख्य मंत्री बनाया गया। वे पुलिस पर नियंत्रण करने में असमर्थ रहे। सन् १९७३ के पी० ए० सी० विद्रोह के कारण उन्हें त्यागपत्र देना पड़ा। कुछ दिनों के अल्पकालीन राष्ट्रपति शासन के बाद नवम्बर ७३ में श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा मुख्यमंत्री बने। फरवरी १९७४ में विधान सभा के चुनाव हुए। भारतीय क्रांति दल, मुसलिम मजलिस और सोशलिस्ट पार्टी संयुक्त रूप से क्रांति दल के हलधर चिन्ह पर चुनाव लड़े। उन्हें १०७ सीटें मिली। चौधरी चरण सिंह ने इस बार भी सभी विरोधी दलों को राष्ट्रीय ध्रुवीकरण के लिए प्रेरित किया था। पांच दल, लोकतान्त्रिक कांग्रेस, स्वतंत्र पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी, लोकतान्त्रिक दल और भारतीय क्रांति दल अपने–अपने अस्तित्व को विलय कर भारतीय लोक दल में एक हो शामिल हुए। संगठन कांग्रेस और जनसंघ भारतीय लोक दल में विलय नहीं हुए। उन्होंने उससे तालमेल कर उसे राजनैतिक क्षेत्र में सशक्त बनने में मदद की।

सन् १९७४ के अन्त और ७५ के शुरू में देशव्यापी असंतोष, जानलेवा महंगाई, घोर भ्रष्टाचार और बढ़ती गरीबी तथा सर्वत्र व्याप्त असामाजिक अव्यवस्था के विरुद्ध के छात्रों ने आन्दोलन छेड़ दिया। उनकी मांग वहां की विधान सभा को भंग गुजरात करना था। गुजरात में इंका का शासन था और मंत्री तथा विधायक और दूसरे कार्यकर्त्ता भ्रष्टाचार के सिरताज बनते जा रहे थे। श्री मोरारजी देसाई ने छात्रों के आन्दोलन के समर्थन में

आमरण अनशन भी किया। इंका सरकार झुकी और विधान सभा भंग कर दी गयी। देश को एक नयी दिशा मिली। बिहार में भी छात्र आन्दोलन शुरू हो गया। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने इन्दिरा गांधी (कांग्रेस) द्वारा देश की दुर्दशा को बढ़ते देख उसे समग्र क्रांति (उत्थान) के लिए छात्रों का पथ–प्रदर्शन किया। श्री जयप्रकाश नारायण गैर राजनीतिक विभूति थे। उनके कारण छात्र आन्दोलन गैर राजनीतिक रहा। जे० पी० के नेतृत्व से देश में एक नयी हलचल प्रारम्भ हुई। बुद्धिजीवियों, विचारकों और बौद्धिकों में जे० पी० की 'समग्र क्रांति' के पक्ष–विपक्ष का विश्लेषण बड़ा जोर पकड़ गया। चौधरी चरण सिंह आन्दोलन के समर्थक नहीं थे। वे स्वतंत्र सत्ता की राजनीति में हड़ताल, घेराव, प्रदर्शन, इत्यादि को अधिक महत्त्व नहीं देना चाहते थे। वे सभी विरोधी दलों को एक दल में खड़ा करने को आतुर थे। वे इस सत्य को जानते थे।

विरोधी दलों में वोटों के बंट जाने के कारण अल्पमत से जीत कर अपना बहुमत बना लेती है। इंका औसत ३२ या ३३ प्रतिशत वोटों के बल पर ही कब से बहुमत में चली आ रही थी। उसके कुशासन से देश को त्राण दिलाने के लिए विपक्ष का एक विकल्प बनाना जरूरी था। चौधरी चरण सिंह के इस चिन्तन के महत्त्व को लोक नायक ने सराहा। इंका के लम्बे कुशासन के बाद समग्र क्रांति लाने के लिए भी विरोध पक्ष का एकीकरण जरूरी था। लेकिन जे० विरोधी पक्षों का एक संघीय दल चाहते थे। जब कि चौधरी चरण सिंह एक दल कुछ विरोधी राजनीतिक संयुक्त मोर्चे को भी प्रश्रय दे रहे थे। वह गुजरात के चुनावों में विफल सिद्ध हुआ। तब एकीकरण के पक्ष में वातावरण बनने लगा। १६ मार्च १९७५ को दिल्ली के लाखों नर–नारियों का एक विराट जुलूस निकला। उसका लोकनायक जयप्रकाश नारायण, चौधरी चरण सिंह, सरदार प्रकाश सिंह बादल, नाना जी देशमुख और श्री राज नारायण ने नेतृत्व दिया। "सिंहासन खाली करो कि जनता आती है" का ऐसा गगनभेदी नारा दिल्ली में गूंजा कि सत्ता कांग्रेसी भयभीत हो गये। इसी बीच श्रीमती इन्दिरा गांधी के विरुद्ध श्री राजनारायण द्वारा दाखिल की गई चुनाव याचिका पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने रायबरेली के चुनाव को अवैध घोषित कर दिया और श्रीमती गांधी को चुनाव में भ्रष्ट तरीकों को अपनाने के लिए छः वर्ष के लिए चुनाव लड़ने के अयोग्य घोषित कर दिया। २५ जून को दिल्ली के रामलीला मैदान में विशाल जनसभा में लोक नायक जयप्रकाश नारायण ने श्रीमती गांधी के त्यागपत्र की मांग की। अपने सत्ता जाते देखकर २६ जून, १९७५ को श्रीमती गांधी ने मंत्रिमंडल की पूर्व स्वीकृति के बिना आपात स्थिति घोषित कर दी। सभी राष्ट्रीय नेता रातों–रात गिरफ्तार कर लिए गये।

वृद्ध और बीमार लोकनायक भी गिरफ्तार कर लिए गये। समाचार पत्रों की स्वतंत्रता इस हद तक छीन ली कि गिरफ्तारियों की सही खबर न छपे। इसके लिए दिल्ली के राष्ट्रीय दैनिक पत्रों की रात में बिजली काट दी गयी। जे० पी० की गिरफ्तारी पर सारा देश क्रुद्ध हो उठा। असंख्य देशभक्तों को जेल में ठूंस दिया गया। उन्हें कानून का दरवाजा खटखटाने का भी अधिकार नहीं था। वह यह भी नही पूछ सकते थे कि उनका अपराध क्या है? उन्हें बाद में संसद के एक प्रश्नोत्तर से पता चला कि जीने की भी स्वतंत्रता नहीं रही।

चौधरी चरण सिंह को कैदी बनाकर तिहाड़ जेल में बन्द कर दिया गया।

सत्ता का मोह किसी भी कम नजर वाले को आततायी बना देता। ऐसा आततायी कि वह जय प्रकाश नारायण को भी गिरफ्तार कर ले, विशुद्ध तानाशाह ही हो सकता था। आज भी यह सवाल लाखों की जबान पर है कि अगर गांधी जी जीवित रहे होते और भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए न्यायपालिका के निर्णय के अनुरूप आचरण करने की मांग करते तो क्या वे भी गिरफ्तार नहीं कर लिए गये होते?

अध्याय ९

भादों की अमावस्या

अष्टग्रह

स्वतंत्र भारत के इतिहास में २६ जून १९७५ का काला दिन कभी भुलाया नहीं जा सकेगा। जालियांवाला बाग के जनरल डायर के पाशविक हत्याकाण्ड के बाद ऐसा दिन हिन्दुस्तान के अर्वाचीन इतिहास में दूसरा नहीं बीता था। उस दिन केवल कुर्सी पर बने रहने के लिए लोकतंत्र की हत्या कर दी गयी तथा पुलिस और सेना के बल पर देश पर तानाशाही थोंप दी गयी। विभाजित हिन्दुस्तान के दूसरे भाग में फौजी तानाशाही पहले से चल रही थी। पाकिस्तान से स्वतंत्र हुए बांग्ला देश और बर्मा में फौजी जनरलों का एकतंत्रीय शासन था। उत्तरी पड़ोसी नेपाल में राजतंत्र था ही। उसके आगे तिब्बत में चीनी साम्यवादी आ धमके थे। बाहर अफ्रीका और मध्य एशिया के कितने देशों में तानाशाही शक्तियां उभर रही थीं। उनका सबसे निकृष्टतम उदाहरण उगांडा में ईदी अमीन की तानाशाही था। इसे अगर वातावरण का प्रभाव नहीं तो महान आश्चर्य ही मानना पड़ेगा कि महात्मा गांधी के देश में पंडित जवाहर लाल नेहरू की सुपुत्री ने तानाशाही की काली अमावस्या ला दी। देश की उससे भारी अप्रतिष्ठा और दुर्गति हुई। श्रीमती इन्दिरा गांधी को उदार – शिक्षा पाने का सुअवसर नहीं मिला था। फिर भी उनकी घरेलू शिक्षा पंडित जवाहर लाल नेहरू की देखरेख में हुई थी। जवाहर लाल जी ने दासता काल के संघर्ष के दिनों में साफ–साफ कहा था कि "जो सरकार मीसा और क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेंट एक्ट पर निर्भर हो, जो समाचार पत्रों और साहित्यिक प्रकाशनों पर प्रतिबन्ध लगाती हो, जो अनेकानेक संस्थाओं को अवैध घोषित कर काम से रोकती हो, तथा जो नागरिकों को बिना न्यायाधिकरण में मुकदमा चलाये जेलों में बन्द रखती हो, वह एक दिन भी रहने योग्य नहीं।" हिन्दुस्तान के बौद्धिक तथा राजनीति विशारद ही नहीं, संसार भर के सभी प्रमुख राजनीति–शास्त्री इस आश्चर्य से सुन्न रह गये। हिन्दुस्तान विश्व का अप्रतिम प्रजातंत्र था। अनादि काल से यहां पंचायत की परम्परा चली आ रही थी। जातीय पंचायतों की वह प्राचीन परम्परा दासता काल में भी टूटी

नहीं। अचानक मानों एक सनक ने उस सनातन परम्परा को चकनाचूर कर दिया। जब पंचायत राज की जड़ पर ही कुठाराघात हुआ, तब रामराज्य की ओर देश की यात्रा की ललक ही कहां शेष रहती!

हुआ यह कि बारह जून को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के विरुद्ध श्री राजनारायण की चुनाव याचिका को स्वीकार कर उनका चुनाव अवैध घोषित कर दिया। साथ ही चुनाव में भ्रष्ट तरीके अपनाने का अपराध सिद्ध हो जाने के कारण श्रीमती गांधी को 6 वर्षों तक सार्वजनिक चुनाव में भाग लेने से बहिष्कृत कर दिया गया। श्रीमती गांधी एक दशक से अधिक वर्षों तक प्रधान मंत्री रह कर एकतंत्रीय बन गयी थीं। पुरानी राष्ट्रीय कांग्रेस उन्हीं के कारण कई नामों में बंट चुकी थी। सत्ता ने उन्हें निरंकुश बना दिया था। वह येन–केन–प्रकारेण प्रधान मंत्री पद पर बनी रहना चाहती थीं। उदार शिक्षा की कमी से वह ठीक अंग्रेजों की तरह भेदभावपूर्ण नीतियों का अनुसरण कर देश के दूरगामी हितों के खिलाफ अपना "वोट बैंक" बढ़ाने के लिए तरह–तरह का नाटक किया करती थीं। देश के प्रबुद्ध विचारकों की सहानुभूति वह खो चुकी थीं। उनके विरुद्ध उच्च न्यायालय के आदेश से देश भर में खुशी की लहर वह गयी। प्रबुद्ध विचारकों और विरोधी दलों ने श्रीमती इन्दिरा गांधी से उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार प्रधान मंत्री पद से हट जाने की मांग की। न्यायोचित रास्ता भी यही था कि श्रीमती गांधी अपने दल के किसी वरिष्ठ सदस्य को अपने स्थान पर निर्वाचित कराकर प्रधान मंत्री पद से हट जाती तथा उच्च न्यायालय के निर्णय से अगर वे संतुष्ट नहीं थी तो उच्चतम न्यायालय में अपील करती और अपील जीतने पर दुबारा अपने दल का नेतृत्व सम्भाल लेतीं। उन्होंने श्री चेन्ना रेड्डी को एक ऐसे ही निर्णय के विरुद्ध अपील करने के बाद भी केन्द्रीय मंत्री पद से त्यागपत्र देने को बाध्य किया था। प्रधान मंत्री पद के लिए तो अदालत का निर्णय होते ही त्यागपत्र दे देना जरूरी था। इस सही प्रक्रिया से देश उस कलंक की विभीषिका से बच जाता, जो उसे अकारण ही सहना पड़ा। श्रीमती इन्दिरा गांधी को ऐसा लगता है कि अपने दल पर भी विश्वास नहीं था कि एक बार कुर्सी छोड़ने पर वह उन्हें वापिस ले या नहीं। उन्होंने प्रधान मंत्री पद से त्यागपत्र देने की कोई चेष्टा नहीं की। उल्टे चाटुकार विदूषकों ने उनके निवास पर उनके द्वारा कुर्सी न छोड़ने का हो–हल्ला मचाया। उनका कुर्सी को न छोड़ने का इरादा भांप कर २५ जून को दिल्ली के राम लीला मैदान में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में एक अभूतपूर्व विराट प्रदर्शन हुआ। उसमें देश के जनमत ने एक स्वर से श्रीमती गांधी से कुर्सी छोड़ने की मांग की। निश्चय ही

जनमत के उस अपार प्रदर्शन से श्रीमती गांधी भयभीत हो गयीं। उसी तारीख को आधी रात बीतते–बीतते उन्होंने आपात स्थिति (इमरजेंसी) लागू करने की घोषणा कर दी। अपनी घबराहट में वह यह भी भूल गयीं कि सन् १९७१ में पाकिस्तानी आक्रमण पर लागू की गयी आपात स्थिति अभी तक हटायी नहीं गयी थी। वह उसी को सक्रिय बना सकती थीं। लेकिन प्रधानमंत्री की कुर्सी से चिपके रहने के लिए उन्होंने नयी इमरजेंसी लगाना जरूरी माना। इस तरह अकारण ही उन्होंने लोकतंत्र की हत्या कर दी। आपातकाल की घोषणा शुद्ध तानाशाही थी, क्योंकि श्रीमती गांधी ने मन्त्रिमंडल की पूर्व सहमति के बिना ही वह घोषणा की। परिस्थितियों से यह आभास मिलता कि तत्कालीन राष्ट्रपति को भी एक प्रकार से आपात स्थिति लागू करने के लिए विवश किया गया। संविधान में आपात स्थिति घोषित करने का अनुच्छेद ३५२ में यह विधान है – "अगर राष्ट्रपति संतुष्ट है कि हिन्दुस्तान या हिन्दुस्तान के किसी भी भाग में कोई जोखिम है या किसी युद्ध, आक्रमण या आन्तरिक शान्ति भंग से कहीं अव्यवस्था पैदा हो रही है, तब वह आपात स्थिति (इमरजेंसी) घोषित कर सकता है।" देश भर में ऐसी कोई बात नहीं थी। आपात घोषणा का न तब कोई औचित्य था न बाद में उत्पन्न हुआ। उस अप्रत्याशित और अवांछनीय घोषणा से सारा देश ही नहीं, श्रीमती गांधी के मन्त्रिमंडल के सदस्य भी स्तब्ध रह गये। देश भर में अभूतपूर्व आतंक छा गया। दिल्ली में उस आतंक को और अधिक गहरा बनाया गया। घोषणा के साथ ही समाचार पत्रों और समाचार एजेन्सियों की बिजली काट दी गयी, जिससे कहीं सही समाचार नहीं पहुंचे। रात को घोषणा की गई और उसके सबेरे आतंकित केन्द्रीय मंत्रि–मण्डल की बैठक बुलाकर आपात काल की स्वीकृति ली गयी। यह सर्वथा असंवैधानिक प्रक्रिया थी, जैसा कि शाह कमीशन ने बाद में निर्णय दिया। उसी रात देश के सर्वोच्च नेता जिन पर किसी देश के इतिहास को चिरकाल गर्व रहेगा, और जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए महात्मा गांधी के कदम से कदम मिलाकर संघर्ष किया था, गिरफ्तार किए गये। लोकनायक जयप्रकाश बन्दी बना लिये गये। जे० पी० महात्मा गांधी के बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू से कम सुविख्यात और श्रेष्ठकोटि के देशभक्त नहीं थे। हिन्दुस्तान ही नहीं संसार भर के राजनीतिज्ञों में उनका एक विशिष्ट स्थान था। श्रीमती गांधी के त्यागपत्र की मांग करते हुए उन्होंने सार्वजनिक रूप से यह कहा था कि सेना और पुलिस के जवानों का यह कर्तव्य है कि वे अन्यायपूर्ण और गलत आदेशों को न मानें। श्रीमती इन्दिरा गांधी की तत्कालीन मानसिकता में उनके द्वारा ऐसा किये जाने की अपेक्षा हो गयी थी। सैनिक कानून में भी

गलत आदेशों को न मानने का उल्लेख है। हर सभ्य राष्ट्र की सेना और पुलिस में यह अधिकार सार्वजनिक हित में प्रदत्त किया गया है। अंग्रेजों ने सेना के कानून में यह विधान रचा था। जे० पी० ने आजादी के बाद से किसी हिंसात्मक उपद्रव का समर्थन नहीं किया था। वे "संपूर्ण क्रांति" के प्रतिपादक थे, देश के महानतम समाजवादी विचारक थे। श्रीमती गांधी जे० पी० के नेतृत्व में कुछ दिनों पहले हुए छात्र आन्दोलन से उनके खिलाफ थीं। उस आन्दोलन में बिहार सरकार ने जे० पी० पर लाठी वर्षा की थी, जैसा अंग्रेजी शासन ने लाला लाजपत राय पर किया था। जे० पी० के अतिरिक्त उसी रात मोरार जी देसाई और चौधरी चरण सिंह को भी बन्दी बना लिया गया। मोरार जी देसाई के नेतृत्व में गुजरात में छात्र आन्दोलन हो चुका था। उसके बाद गुजरात में चुनाव हुए थे, जिसमें इन्दिरा गांधी की पार्टी को हार खानी पड़ी थी। श्री देसाई ने संसद में गुजरात आन्दोलन के समर्थन में भूख हड़ताल की थी। चौधरी चरण सिंह के विरुद्ध ऐसी कोई साधारण सी बात भी नहीं थी। उनका तो सिद्धान्त रहा है कि स्वतंत्रता के बाद राजसत्ता के विरुद्ध सत्याग्रह, भूख हड़ताल, घेराव आदि अनुचित कदम हैं। राज सत्ता प्रजातंत्रात्मक शासन प्रणाली से ही बदली जानी चाहिए। किन्तु उन्हें भी २६ के सवेरे उत्तर प्रदेश निवास, दिल्ली में गिरफ्तार कर लिया गया, जहाँ वे लखनऊ से आकर ठहरे थे। इस तरह देश के स्वतंत्रता संघर्ष और उसके बाद के तीनों सर्वोच्च नेता जेलों में ठूंस दिए गये। उनके अतिरिक्त देश भर के सभी वे राजनैतिक नेता, जो श्रीमती गांधी की नीतियों से मतभेद रखते थे, बन्दी बना लिए गये। संसद और विधान सभाओं के सदस्यों को भी रातोंरात पकड़ लिया गया। उन सरकारी कर्मचारियों को भी नहीं बख्शा गया, जो यूनियन आदि के पदाधिकारी थे या जिनका किसी भी विरोधी दल या संस्था से किंचित भी सम्पर्क था। साहित्यकार, विद्वान और पत्रकारों को भी, जो जे० पी० की सम्पूर्ण क्रांति या विरोधी दल के सिद्धान्तों के पक्षधर थे, गिरफ्तार कर लिया गया। अंग्रेजी काल के अत्याचारों के बाद ऐसा जघन्य अत्याचार आजाद भारत में कभी भी नहीं हुआ था। बांग्लादेश (तब पूर्वी पाकिस्तान) में बुद्धिजीवियों के प्रति पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री भुट्टो ने ऐसा पाशविक अत्याचार किया था। सन् १९४२ में "भारत छोड़ो आन्दोलन में विदेशी सरकार के अनुसार कुल साठ हजार आदमी बन्दी बनाकर जेलों में रखे गये थे। आपात काल में संसद में दिये गये सरकारी बयान के मुताबिक एक लाख बीस हजार आदमी बन्दी बनाये गये। ऐसे मान्य कांग्रेसी भी बन्दी बनाये गये, जो श्रीमती गांधी के विरोधी नहीं थे, किन्तु जिन्होंने उन्हें पत्र लिखकर आपात काल हटाने की मांग की। पंजाब

के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता तथा भूतपूर्व मुख्य मंत्री श्री भीमसेन सच्चर को जो देश के राजदूत और राज्यपाल रह चुके थे, ऐसा ही पत्र लिखने के कारण नजरबन्द कर दिया गया। अंग्रेजी काल की तरह आपात काल में गिरफ्तार लोग किस जेल में रखे गये हैं, यह उनके परिवारों को भी नहीं बताया गया। यह भी नहीं बताया गया कि उनका अपराध क्या था? मीसा (मेन्टिनेंस ऑफ इन्टरनल सिक्योरिटी एक्ट) में गिरफ्तार लोगों को पहले अदालत में याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार था। मीसा में संशोधन करके वह अधिकार छीन लिया गया। संविधान में मूल अधिकारों में प्रदत्त उच्च अथवा उच्चतम न्यायालय में भी मीसाबन्दी या उसके परिवार का सदस्य उसकी गिरफ्तारी के विरुद्ध याचिका नहीं प्रस्तुत कर सकता था। बन्दी जन के परिवारों को काफी दिनों तक किसी प्रकार का जीवन–निर्वाह भत्ता भी नहीं दिया गया। उन सरकारी कर्मचारियों के परिवारों और बच्चों का अनुमान लगाइये, जो बन्दी बना लिए गये थे। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के मौलिक अधिकारों को निलम्बित कर दिया गया। कोई प्रतिवाद तक नहीं कर सकता था। यहां तक कि अगर पुलिस का कोई अधिकारी अपने व्यक्तिगत कारणों से बन्दूक या पिस्तौल से किसी को मार डाले या उसकी चोट खाकर कोई मर जाए तो वह उसका कारण नहीं पूछ सकता था। भारत सरकार ने अपने एटार्नी जनरल द्वारा उच्चतम न्यायालय में यह बहस करायी थी। इससे अधिक तानाशाही और निरंकुशता क्या हो सकती थी। जे० पी० महान के संग जेल में दुर्व्यवहार और एकान्तवास पाशविकता की हद मानी जाएगी।

अखबारों की आजादी छीन ली गयी। आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशन निषेध अधिनियम १९७६ जैसा समाचार विरोधी कानून अंग्रेजी शासन के सन् १९२० के इसी नाम के अधिनियम से कहीं कठोर और जालिम था। इतना क्रूर सेंसर अंग्रेजी काल में भी नहीं लगा था। सरकार की साधारण से साधारण आलोचना भी बन्द कर दी से भूल गयी। पूर्व स्वीकृति के बिना कोई समाचार छप ही नहीं सकता था। किसी ने भी उल्लंघन किया तो उसे सीधे जेल में डाल दिया गया। श्री बी० जी० वर्गीज, 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक को पत्र के मालिक बिड़ला से बर्खास्त कराया गया। सुप्रसिद्ध पत्रकार कुलदीप नैय्यर, तब 'इण्डियन एक्सप्रेस' के सम्पादक को गिरफ्तार कर लिया गया। 'फाइनेन्सियल एक्सप्रेस' में कविगुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर के प्रसिद्ध गीत... "वह देश जहां मस्तिष्क में किसी कारण भय नहीं समाता" को छपने से मना कर दिया गया। श्री जवाहर लाल नेहरू ने आजादी के पहले समाचार पत्रों की निर्भीकता और स्वतंत्रता को प्रजातंत्र की रीढ़ बताया था। उन्होंने कहा था श्लाख बेहतर होगी, समाचार पत्रों

की स्वतंत्रता भी, जिससे सरकार विशेष के लिए खतरा उत्पन्न हो, बनिस्बत उन पर सेंसर लगाने के उनकी पुत्री यह सीख कतई भूल गयीं।

एक पूरी फिल्म इसलिए बन्दी कर दी गयी कि उसकी नायिका की चाल श्रीमती गांधी की चाल से कुछ मिलती जुलती थी। संजय गांधी ने सुप्रसिद्ध सिने गायक श्री किशोर कुमार के गायन को रेडियो पर बन्द करा दिया, क्योंकि श्री कुमार ने इमरजेंसी का प्रचार करने से मना कर दिया था। वही कवि सम्मेलन और मुशायरे हो सकते थे, जो इमरजेंसी और संजय गांधी के चार सूत्री कार्यक्रम पर आधारित हों। गरीब लेखकों और साहित्यकारों का हाल मत पूछिए। 'इस्टर्न इकोनोमिस्ट' में महात्मा गांधी की एक तस्वीर छपी। वह नोआखाली यात्रा की थी। वह सेंसर हो गयी कि उसका आपात विरोधी अर्थ न निकाला जाय। इससे भी हास्यास्पद एक दूसरा उदाहरण सुनने में आया। पटना में गंगा घाट पर एक साधू "नारायण, नारायण" का जाप किया करता था। किसी कम पढ़े लिखे खुफिया इंस्पेक्टर ने उसे जयप्रकाश नारायण का जाप समझा। उस साधू को पकड़कर जेल में बन्द कर दिया गया। तानाशाही शेर की सवारी है। तानाशाह इतना भयभीत रहता है कि वह शेर से कभी उतरता नहीं कि उतरने पर कहीं उसे शेर ही न खा जाय। तानाशाही से भी अधिक खतरनाक तानाशाही की प्रवृत्तियां होती हैं। जन मानस को वह भयंकर से भयंकर अत्याचारों से भी दबा नहीं पाता। मगर उसकी यही कोशिश रहती है। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने तो हद कर दी जब संविधान में यह संशोधन कराया, जिसके द्वारा चुनाव याचिका हारने के बाद प्रधान मंत्री के विरुद्ध चुनाव की याचिका दाखिल करने की सारी प्रक्रिया पूर्व काल से बदल दी गयी। कानून यह बना कि प्रधान मंत्री के विरुद्ध चुनाव की याचिका अदालत में हो नहीं सकती। इस तरह उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ श्रीमती गांधी की अपील पर यह निर्णय दिया गया कि उपरोक्त कानून में उन्हें अपील सुनने का अधिकार ही नहीं। यह ऐतिहासिक कुकृत्य हुआ। नतीजा यह है कि इलाहाबाद हाईकोर्ट का फैसला वाद बिन्दुओं पर अपील से अब तक रद्द नहीं हुआ। संशोधित कानून के बाद श्रीमती गांधी को उसे रद्द कराने की जरूरत ही नहीं पड़ी। चौधरी चरण सिंह ने अपने ऐतिहासिक सिंहनाद में (परिशिष्ट–स) इसकी चर्चा करते हुए कहा है कि "संसार भर में ऐसी कोई दूसरी मिसाल नहीं।"

शाह कमीशन ने जांच के पश्चात् इस विषय पर जो रिपोर्ट दी वह पढ़ने से सम्बन्ध रखती है। श्री शाह भारतवर्ष के जाने माने भूतपूर्व प्रधान न्यायाधीश थे। उन्होंने आपात काल की घोषणा की सारी कार्यवाही को असंवैधानिक और निरंकुशता का प्रहार बताया। उस रिपोर्ट का प्रचार–प्रसार

श्रीमती गांधी ने दुबारा सत्ता में आकर रोक दिया। लेकिन उन फाइलों को इतिहास की आंखों से कब तक छिपा कर रखा जा सकेगा?

तानाशाह अपने को राष्ट्र का प्रतीक मान बैठता है। उसकी मानसिकता विकृत हो जाती है। अपने विरुद्ध साधारण से साधारण बात को वह राजद्रोह समझता है। वह यह सच्चाई मानने लगता है कि वही राष्ट्र का रक्षक तथा उद्धारक है। श्री एच० एन० बहुगुणा के अनुसार श्रीमती गांधी – "पैरोनाइया" नामक रोग से ग्रसित हैं। इस रोगी के मन में यह धारणा सांस की तरह रहती है कि सभी उसके खिलाफ षड्यंत्र रच रहे हैं। हर तानाशाह में यह रोग उभरता है। यह प्रवृत्ति कुछ काल पहले प्रकट हुई थी, जब इन्दिरा कांग्रेस के अध्यक्ष श्री देवकान्त बरुआ ने यह घोषणा की थी कि "इन्दिरा इज इण्डिया और इण्डिया इज इन्दिरा।" हिटलर जैसे तानाशाह के बड़े से बड़े विदूषक ने ऐसी उक्ति नहीं कही होगी। देश किसी भी व्यक्ति से, चाहे वह देव–दूत ही क्यों न हो, बहुत बड़ा होता है।

दूसरे देशों में जहां अपरिहार्य कारणों से आपात स्थिति की घोषणा की गयी, वहां एक महीने या अधिक से अधिक दो महीने के लिए की गयी। यहां वह साल भर से ऊपर लागू रही। विकृत मानसिकता के अतिरिक्त इसका दूसरा क्या कारण हो सकता है? ऊपर से झूठा दावा किया गया कि आपात काल में काम चतुर्दिक अच्छा हुआ। चौधरी साहब ने अपने सिंहनाद से इस खोखले दावे को बेनकाब कर दिया। इस विषय में यहां इतना ही कहना समीचीन होगा कि देशभक्त राष्ट्रनायक गुलाब के फूल की तरह शुरू से आखिर तक, बल्कि बहुत बाद तक अपना सौरभ बिखेरता है। उसके लिए किसी विशेष परिस्थिति की जरूरत नहीं। कागज के फूलों से खुशबू नहीं आ सकती। विशेष परिस्थितियों का औचित्य विदूषक और घमण्डियों के लिए है, जैसे यह दावा कि "मेरे पिता नेहरू जी साधू पुरुष थे, राजनीतिज्ञ मैं हूं।" इस घनी घोरी देश की विश्व विश्रुत संस्कृति में यह दावा इतना निकृष्ट है कि इस पर कोई भी टिप्पणी अक्षम्य होगी। केवल इतना कहना जरूरी है कि किसी देश में सुव्यवस्था और सच्चा अनुशासन सहयोग और हार्दिकता से आता है, आतंक से कदापि नहीं। आपात काल में आतंक जरूर व्याप्त रहा। औरंगजेब ने अपने बड़े भाई दारा शिकोह का कत्ल कर ऐसा ही भय पैदा किया था। उससे मुगल साम्राज्य का ही विनाश हो गया।

तो चौधरी चरण सिंह तिहाड़ जेल में बन्द कर दिये गये। वह महात्मा गांधी के अनुयायी हैं और उन्हीं की तरह नैतिकतावादी। ऐसे आदर्श मानव और देश गौरव जननायक को अपनी विचित्र मानसिकता में श्रीमती

गांधी जेल की यातना न पहुंचाती तभी आश्चर्य होता। लोकनायक जे० पी० और मोरार जी देसाई को एकान्तवास में घुलाया गया। जे० पी० अस्वस्थ थे, उनकी पीड़ा दारुण साबित हुई। उन्होंने अपने पुराने सहायक की मांग की तो वह मांग भी अस्वीकृत कर दी गयी। जे० पी० के संग जो अमानुषिक व्यवहार किया गया, वह उन्हीं के शब्दों में यह है– " नजरबन्दी के चार महीने मैं बिलकुल अकेला रहा। यह अकेलापन ही मुझे सबसे अखरने वाली बात थी। इस दृष्टि से इन्दिरा सरकार का मेरे साथ व्यवहार विदेशी अंग्रेजी सरकार से बुरा रहा। क्योंकि सन् १९४२ में डा० राम मनोहर लोहिया लाहौर में लाये गये तो हर दिन एक घंटे तक उनसे मिलने और बातचीत करने की इजाजत मुझे मिली थी। ... अचानक २६ सितम्बर को पैर में भयानक दर्द हुआ। ऐसा कभी नहीं हुआ था। सरकार ने १२ नवम्बर को घबराकर मुझे तब रिहा किया, जब उन्हें विश्वास हो गया कि रोग असाध्य है और मैं थोड़े ही दिन जीवित रहने वाला हूं। मेरे गुर्दे बेकार हो गये। पहले कोई रोग नहीं था।"

चौधरी चरण सिंह को भी तिहाड़ जेल के "बी – क्लास" श्रेणी के एक कमरे में रखा गया, जिसमें हवा के आने–जाने के लिए खिड़की या झरोखा नहीं था। कमरा १०x१६ फीट का था। गुसलखाना भी निहायत छोटा 4 फीट x ६ फीट का था। बाहर से हवा न आने के कारण उस कमरे में गर्मी और शीत का भयंकर प्रकोप था। अस्वास्थ्यकर और बीमारी से ग्रसित हो जाने की वहां पूरी सम्भावना थी। गर्मियों में हवा इतनी गर्म हो जाती थी कि उसमें रहा ही नहीं जा सकता था। कमरे से लगा बरामदा नहीं था, जिससे बरसात में बड़ा कष्ट होता था। कमरे की छत भी टूटी–फूटी थी। जेल के अधिकारी चौधरी साहब के प्रति श्रद्धा आदर का भाव रखते थे, लेकिन वे विवश थे। तत्कालीन राज्यपाल श्री संजय गांधी के चंगुल में थे। जेल के अधिकारी बहुत कुछ कर नहीं सकते थे। टूटे–फूटे प्लास्टर की थोड़ी बहुत उन्होंने मरम्मत करा दी। चौधरी चरण सिंह शिकायत करने वाले व्यक्ति थे नहीं। लेकिन स्थिति से परेशान होकर दिल्ली के उप–राज्यपाल को उन्होंने उसके विषय में लिखा। उन्होंने यह साफ कह दिया था कि चूंकि वे सजायाफ्ता कैदी नहीं थे, इसलिए उन्होंने वह पत्र लिखा। तिहाड़ जेल में राजनैतिक बन्दियों की दशा जानबूझ कर खराब रखी जाती थी। राजनैतिक कैदियों ने अपनी स्थिति को सुधारने के बारे में मांग की तो उन पर लाठियों की वर्षा हुई। चौधरी चरण सिंह ने क्षुब्ध होकर जेल में दिनांक 3 अक्तूबर से तीन दिन का प्रतीकात्मक अनशन किया।

जेल के एकान्त और सूनेपन में कितने महान राजनीतिज्ञों ने असाधारण प्रतिभा का काम किया है। लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी और पण्डित

जवाहर लाल नेहरू ने अपनी विश्व विश्रुत किताबें जेलों में ही लिखीं। चौधरी चरण सिंह ने भी अपनी 'इकानामिक नाईटमेयर आफ इण्डिया' की रूपरेखा जेल में ही परिमार्जित की। उसके परिच्छेदों को उन्होंने वहीं लिखना शुरू किया। जेल में उनके साथ दिल्ली नगर निगम के माननीय सदस्य श्री पी० एन० सिंह भी राजनैतिक कैदी थे। उन्होंने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि चौधरी साहब की मुख्य व्यस्तता जेल के अन्दर किताब लिखने की थी। एक किताब को वे जेल जाने के पूर्व चुके थे। उसे लिखने में वह अपना अधिक समय लगाया करते थे। लिखने का कार्य प्रातः ५ बजे से आठ बजे तक और शाम को आठ बजे के बाद। उस किताब को लिखने के लिए वह बहुत सी सामग्री बाहर से मंगाया करते थे। किताब अंग्रेजी भाषा में लिख रहे थे। वह गांधीवादी अर्थनीति पर उनकी विवेचना थी। जब भी परिवार के लोग आते थे, लिखा हुआ भाग टाइप करने को बाहर भेज देते थे। यह क्रम जब तक वे जेल में रहे बराबर चलता रहा।

जेल में चौधरी साहब ज्योतिष विषयक साहित्य भी मंगाकर पढ़ा करते थे। ज्योतिष शास्त्र में उन्हें अगाध विश्वास नहीं तो दिलचस्पी हमेशा रही है। श्री पी० एन० सिंह के उक्त संस्मरण के अनुसार वे कहा करते थे कि वे दीर्घायु होंगे और उनकी मनोकामना एक बार इस देश को नील नदी से लेकर तिब्बत के उत्तरी छोर तक तथा श्रीलंका के तट से लेकर कश्मीर के अन्तिम छोर तक देखने की थी। उनकी बृहत्तर अखण्ड भारत की कल्पना सच हो चाहे नहीं, वह उनकी देशाभिमान की उत्कट लालसा को व्यक्त करती है।

इसी तिहाड़ जेल में ८ फरवरी १९७६ को चौधरी चरण सिंह ने जेल के अपने दूसरे साथियों सरदार प्रकाश सिंह बादल, सरदार आत्मा सिंह, जयपुर के राजकुमार भवानी सिंह, नाना जी देशमुख, मदरलैण्ड के सम्पादक श्री मलकानी, राजमाता महारानी सिन्धिया आदि से विचार–विमर्श कर इस योजना को रूप दिया कि सभी विरोधी दलों को मिलाकर एक नया दल बनाया जाय। जेल में एक दूसरे से मिलने की सुविधा नहीं थी। फिर भी दूसरे से तीसरे और तीसरे से चौथे तक यह बात पहुंचायी गयी। परिकल्पना ने जोर पकड़ा। इसकी पहली बैठक तिहाड़ जेल के "बी" श्रेणी के वार्ड नं० १४ में चौधरी साहब की अध्यक्षता में हुई। विचार का बीज बोया गया। सब अपने–अपने ढंग से इस सोच में लगे।

'एमनेस्टी इंटरनेशनल' के सुझाव पर मार्च १९७६ को वह जेल से अचानक रिहा कर दिए गये। उनके परिवार वर्ग को नया जीवन मिला। परिवार वर्ग को सन्देह था कि उच्च नेताओं को अलक्षित रूप से धीरे–धीरे जेलों में विष दिया जा रहा था।

अध्याय १०

जनता पार्टी का जन्म

सन् १९६७ में कांग्रेस पार्टी से अलग होते ही चौधरी चरण सिंह ने कांग्रेस की एक विकल्प पार्टी बनाने पर गम्भीरता से सोचना शुरू कर दिया था। २३ अप्रैल सन् १९६७ को अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था कि "कांग्रेस की नेता – मंडली में अब कोई ऐसा आदमी नहीं रह गया है, जो गलत काम करने वाले आदमियों पर लगाम लगा सके।" इसी मानसिकता के साथ उन्होंने संयुक्त विधायक दल का नेतृत्व स्वीकार कर पहली बार उत्तर प्रदेश में मुख्य मंत्री का पद सम्भाला। उनकी निश्चित राय थी कि कांग्रेस देश के विकास में बुरी तरह असफल ही नहीं हो रही थी, वह पंजीपरक नीतियों का अनुसरण कर भारत की आबादी के अस्सी प्रतिशत ग्रामवासियों का धड़ल्ले से अनादर कर रही थी। सन् १९६७ के आंकड़ों के अनुसार देश में गरीबी, बेरोजगारी और आर्थिक असमानता आजादी के समय से कहीं अधिक बढ़ गयी थी। इसका मुख्य कारण देश के कर्णधारों द्वारा जो गांव के निवासी नहीं थे, कृषि के उत्पादन तथा श्रम–पूरक घरेलू कुटीर उद्योगों पर अपेक्षित ध्यान नहीं देना था। उस समय के सुप्रसिद्ध राजनैतिक विचारक डा० राममनोहर लोहिया ने भी उन्हीं दिनों यह सिद्ध ान्त प्रतिपादित किया था कि कांग्रेस चालीस प्रतिशत से कम मतों के बल पर शासन व्यवस्था सम्भाल लेती है। शेष साठ प्रतिशत वोट विभिन्न विरोधी दलों में बंट जाते है। डा० लोहिया के सिद्धान्तों के अनुरूप सन् १९६७ के आम चुनाव में विरोधी दलों ने मोर्चा बनाने की कुछ कोशिश की, जिसके फलस्वरूप देश के आठ राज्यों में विरोधी दलों की संयुक्त विधायक दल के रूप में सरकारें बनीं। उत्तर प्रदेश में भी चौधरी चरण सिंह ने संयुक्त विधायक दल का कालक्रम से नेतृत्व किया। वह सरकार विभिन्न घटकों की अनुभवहीनता के कारण अल्पकाल तक ही चल पायी। लेकिन तब तक की वह सर्वश्रेष्ठ, कल्याणकारी और प्रशासन में समर्थ सरकार साबित हुई। सच तो यह है कि विभिन्न दलों की आपसी स्पर्धा के साथ–साथ कांग्रेस के दुरभि–संन्धि के कारण वह जल्दी ही भंग हो गयी। तब चौधरी चरण सिंह को और सोचना पड़ा। उन्होंने कांग्रेस के राष्ट्रीय विकल्प के बारे में तेजी से काम करना शुरू किया। उनके प्रयत्न के

फलस्वरूप ११ नवम्बर १९६७ को इन्दौर में विभिन्न राज्यों के कई प्रमुख भूतपूर्व कांग्रेसी नेता मिले और वहां भारतीय क्रान्ति दल का जन्म हुआ। इसके पहले ये लोग जन कांग्रेस नाम के तत्त्वावधान में काम कर रहे थे। जन कांग्रेस शब्द में सड़ान्ध "कांग्रेस" की बू थी। इसलिए उसको त्याग कर क्रान्ति दल नाम रखा गया– वह दल जो देश में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सके। सभी चाहते थे कि दूरदर्शी और शक्तिशाली नेता चौधरी चरण सिंह भारतीय क्रान्ति दल के अध्यक्ष बनें, लेकिन चौधरी साहब ने बिहार के सुप्रसिद्ध समाजवादी कांग्रेसी श्री महामाया प्रसाद सिंह को सर्वसम्मति से अध्यक्ष निर्वाचित कराया। बाद में महामाया बाबू ने त्यागपत्र दे दिया, तब चौधरी चरण सिंह ने २३ मार्च १९६९ को अध्यक्ष का स्थान स्वीकार किया।

सन् ६९ के आम चुनावों में भारतीय क्रान्ति दल को बिल्कुल नया संगठन होते हुए भी उत्तर प्रदेश में ९८ सीटें मिलीं। कांग्रेस को पूर्ण बहुमत नहीं मिला था। बहुत तोड़–फोड़ करने के बाद कांग्रेस की सरकार बन पायी, जो टिकाऊ नहीं साबित हुई। तब तक राष्ट्रपति के चुनावों को लेकर कांग्रेस पार्टी ही भंग हो गयी। बुनियादी कांग्रेस संगठन कांग्रेस बन गयी और श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बाबू जगजीवन राम को अध्यक्ष बना कर अपने नाम की नयी कांग्रेस बनाई। सन् १९७१ में स्थिति यह आई कि दोनों कांग्रेस के नेता चौधरी चरण सिंह को नेता मान कर उत्तर प्रदेश में सरकार बनाने की पहल करने लगे। अन्ततः इन्दिरा कांग्रेस के सहयोग से उन्होंने सरकार बनायी। इन्दिरा कांग्रेस की यह चाल थी। इन्दिरा कांग्रेस ने शीघ्र ही क्रान्ति दल के इन्दिरा कांग्रेस में विलय का प्रस्ताव किया। उसे चौधरी साहब ने इन्कार कर दिया। उन्होंने विकल्प दल के अपने प्रयत्न में ढील नहीं दी थी। २९ अगस्त १९७४ को उनके प्रयत्न के बाद नतीजा सामने आया, जब भारतीय क्रान्ति दल, स्वतंत्र पार्टी, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी (राजनारायण), उत्कल कांग्रेस (बीजू पटनायक), राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक संघ (बलराज मधोक), किसान मजदूर पार्टी तथा पंजाबी खेती बारी यूनियन ने अपने–अपने अस्तित्व को विलय कर भारतीय लोक दल को स्थापित किया। चौधरी चरण सिंह नयी पार्टी के सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुन गये। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में यह कहा कि २७ वर्ष की स्वतंत्रता और देश में अपना शासन होने के बावजूद भी देश ऐसी अव्यवस्था में पहुंच गया है कि उसकी प्रतिष्ठा सबसे नीचे स्तर पर पहुंच गयी है। आज बाहर के देश हमारे अन्दरूनी मामलों में दखल दे रहे हैं और अनुशासनहीनता प्रत्येक कार्यालय और संस्था पर अड्डा जमाये हुए हैं। लगभग प्रत्येक वर्ग राष्ट्रीय हित को भुलाकर अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को आगे बढ़ाने में लगा हुआ है। अमीर और गरीब के बीच की खाई और

बढ़ने के साथ बेरोजगारी तेजी से बढ़ती चली जा रही है। आज भारत विश्व की आर्थिक सीढ़ी पर सबसे नीचे है। हमारे देश में करोड़ों लोगों को दो समय का खाना भी मिलना, भले वह रूखा–सूखा क्यों न हो, एक विलासिता की चीज बन गया है। किसी प्रकार आदमी जी रहा है।"

उपर्युक्त क्रान्तिकारी दृष्टिकोण के लक्ष्य पर भारतीय लोक दल की स्थापना कांग्रेस के राष्ट्रीय विकल्प की शुरूआत साबित हुई। लेकिन प्रमुख राजनैतिक दल अभी भारतीय लोक दल से बाहर थे। उन्हें लोक दल में विलय कराने के लिए चौधरी साहब प्रयत्नशील हुए। आपातकाल की घोषणा तक वे पूरे मनोयोग से इस काम में लगे रहे।

आपातकाल की घोषणा के कुछ समय पहले कांग्रेसी भ्रष्टाचार के खिलाफ गुजरात की विधान सभा को भंग करने की मांग ने एक आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया। उसको नेतृत्व दिया भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने। उन्होंने इसके लिए दिल्ली में आमरण भूख हड़ताल भी की। दिल्ली का सिंहासन डोल गया। विधान सभा भंग हुई और वहां नया चुनाव हुआ। चुनाव में कांग्रेस के खिलाफ एक संयुक्त मोर्चा बनाया गया। उसमें सफलता मिली पर, उतनी नहीं, जितनी आशा थी। मोर्चे की अनुपयोगिता देखकर एक दल बनाने का चौधरी साहब ने फिर आह्वान किया। विपक्ष के कई प्रधान दल जैसे पुरानी कांग्रेस, जनसंघ, समाजवादी पार्टी आदि एक विरोधी दल बनाने पर सहमत नहीं हुए थे। पुरानी कांग्रेस के नेता मोरारजी भाई का यह तर्क था कि पुरानी कांग्रेस ही राष्ट्रीय कांग्रेस की सही उत्तराधिकारी है। उसके अन्तर्गत कितने ट्रस्ट तथा संस्थाएं हैं, जिनका अपना विधि–विधान है। इसलिए उसका विलय किसी नई पार्टी में कानून सम्भव नहीं। शायद उनके मन का यह चोर था कि सभी पुरानी कांग्रेस में ही विलय करें। दूसरी प्रमुख संस्था जनसंघ थी। वह सुसंगठित थी तथा सुनिश्चित आदर्श को लेकर काम करती थी। उसके हर स्तर पर कार्यकर्त्ताओं का संगठन शक्तिशाली था। अधिकांश कार्यकर्त्ता राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से प्रशिक्षित थे। वे विशद्ध भारतीयता के हामी थे। कांग्रेस की समझौतावादी और दिखावे की राजनीति से उनका तालमेल बैठना कठिन था। समाजवादी दल का राज – नारायण गुट पहले से ही लोकदल में शामिल हो चुका था। शेष अपने को डाक्टर लोहिया का कट्टर अनुयायी बताकर किसी भी ऐसे दल में, जिसे वह दक्षिणपंथी समझते थे, विलय के सर्वथा विरोध में थे। कम्युनिस्ट पार्टी के बाहर यही प्रधान दल थे। चौधरी चरण सिंह कम्युनिस्टों के अतिरिक्त दूसरे सभी दलों को, दायें–बायें वालों को मिलाकर, एक दल बनाने को बहुत उत्सुक थे। उन्होंने लोकनायक जयप्रकाश नारायण से

अनुरोध किया कि संगठन कांग्रेस, जनसंघ तथा पूरी सोशलिस्ट पार्टी को। वह भारतीय लोक दल में शामिल करा कर उसका नेतृत्व ग्रहण करें। जे० पी० भी तब तक विरोधी दलों के एक संघीय दल के गठन के पक्ष में ही थे। यह मोर्चे वाली बात ही थी, जो गुजरात में बहुत सफल नहीं हुई थी। फिर भी दलगत राजनीति से सर्वथा अलग की अपनी "सम्पूर्ण क्रान्ति" की विचारधारा में जे० पी० ने एक दल बनाने पर उस समय बहुत जोर नहीं दिया। वे बिहार छात्र आन्दोलन द्वारा "सम्पूर्ण क्रान्ति" को ही जीवन्त रूप देने में व्यस्त रहे। उनका स्वास्थ्य भी क्षीण था। ऊपर से पटना में छात्र आन्दोलन के एक जलूस का नेतृत्व करते समय पुलिस ने उन पर बर्बर लाठी चार्ज किया था। इससे उनका स्वास्थ्य और अधिक खराब हो चला था। लेकिन तब तक घटना क्रम तेजी से एक नये मोड़ पर पहुंचा, जिसका जिक्र पिछले परिच्छेद में विस्तार से किया जा चुका है। अपनी कुर्सी को न छोड़ने के लिए श्रीमती गांधी ने २५ जून १९७५ को आपातकाल की घोषणा कर दी और देश के सभी शीर्षस्थ नेताओं को रातोंरात गिरफ्तार कर जेल में ठूंस दिया। इससे विकल्प दल बनाने का चौधरी चरण सिंह का प्रयत्न उस समय रुक गया।

७ मार्च १९७६ को 'एम्नेस्टी इन्टरनेशनल' की रिपोर्ट पर अशोक मेहता आदि नेताओं के साथ चौधरी चरण सिंह भी तिहाड़ जेल से अचानक रिहा कर दिए गये। जेल में उन्होंने विरोधी दल के गिरफ्तार कांग्रेसी नेताओं के साथ, जिनमें अकाली दल के श्री प्रकाश सिंह बादल और जनसंघ के श्री नानाजी देशमुख थे, दिनांक ८ फरवरी ७६ को विकल्प दल की एक योजना की बैठक की ही थी। पिछले परिच्छेद में उसे अंकित किया गया है। बाहर आकर वे विकल्प दल की स्थापना में जी–जान से गये। उनका निश्चय था कि कांग्रेस का विकल्प अगर अब नहीं बना तो देश इंका की कुनीतियों से रसातल को पहुंच जायेगा। आपात काल की यातनायें तो वह भुगत ही रहा था। चौधरी साहब हैरान थे कि विभिन्न राजनीतिज्ञों को राष्ट्रीय संकट की घड़ी में भी देश से अधिक अपने संकीर्ण स्वार्थों की चिन्ता थी।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण मरणासन्न अवस्था में दिनांक १२ नवम्बर १९७५ को जेल से पैरोल पर छोड़ दिए गये थे। कहा जाता है कि उनकी अन्त्येष्टि की तैयारी पटना में सरकारी तौर पर कर दी गई थी। जे० पी० जेल से निकल कर सीधे अस्पताल पहुंचे। चौधरी चरण सिंह ने जेल से छूटने के बाद एक बैठक बुलायी, जिसमें विकल्प दल बनाने के लिए एक समिति का गठन किया गया। श्री एन० जी० गोरे उस समिति के संयोजक मनोनीत किए गये। श्री शान्ति भूषण,

श्री ओ० पी० त्यागी सदस्य थे। श्री एच० एम० पटेल भी सदस्य थे। उस समिति ने लोकनायक जे० पी० से सम्पर्क स्थापित कर एक दल बनाने के लिए उनका आशीर्वाद भी प्राप्त किया। जे० पी० ने आशीर्वाद दिया, यद्यपि तब भी उनकी मानसिकता संघीय दल के पक्ष में ही थी। दिनांक ४–५ अप्रैल को चौधरी चरण सिंह ने भारतीय लोक दल की एक बैठक बुलायी। उसमें दल ने निश्चय किया कि वह विकल्प का एक दल बनाने के लिए अपना सर्वस्व त्यागने को तैयार है। २२–२३ मई को बम्बई में इस संबंध में प्रमुख नेताओं की दूसरी बैठक हुई। उसमें भी एक दल बनाने पर सबकी सहमति नहीं हो सकी। चौधरी चरण सिंह ने तब लोकनायक से वस्तु स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए एक दल बनाने का जोरदार अनुनय किया। जे० पी० ने २६ मई को प्रमुख दलों के विलय की प्रस्तावना तैयार की और जून के अन्त में उनका एक सम्मेलन बुलाया। ३०–३१ मई को भारतीय लोक दल की कार्यकारिणी ने जे० पी० से दुबारा अनुरोध किया कि शेष दलों से विलय के लिए और जोर दें। उधर संगठन कांग्रेस की गुजरात शाखा तथा पश्चिम बंगाल शाखा ने श्री बाबू भाई पटेल और श्री प्रताप चन्द्र चन्दर के निर्देशन में विलय के विरोध में प्रस्ताव पारित कर दिया। यही स्थिति बिहार, उड़ीसा और आसाम में आई। तब ८ जुलाई १९७६ को चौधरी चरण सिंह ने दिल्ली में एक बैठक बुलायी, जिसमें एन० जी० गोरे, ओ० पी० त्यागी, अशोक मेहता, भानु प्रताप सिंह आदि ने भाग लिया। उस बैठक में भी कोई निर्णय नहीं लिया जा सका। यह कहा गया कि बहुत से नेता अभी जेलों में बन्द हैं और उनके बिना विलय पर कोई निर्णय सम्भव नहीं है। चौधरी चरण सिंह का यह सुझाव कि जेलों से उनकी राय लिखित रूप में मंगा ली जाय, स्वीकार नहीं किया किया गया। ८ जुलाई की शाम को चौधरी चरण सिंह ने दिशा–निर्देशन समिति के अध्यक्ष श्री एन० जी० गोरे को यह लिखाः

"मैं यह बात दुहराना चाहता हूं कि समय का बहुत महत्त्व है, यद्यपि कुछ दलों के लोग इस दबाव को मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ समझते होंगे, आप उन्हें विश्वास दिलायें कि नये दल का मैं नेतृत्व किसी तरह स्वीकार नही करूंगा। जैसे ही नये दल का गठन हो जायेगा, यदि मैं स्वयं को राजनीतिक नेता होने के अयोग्य पाऊंगा, तो सदा के लिए राजनीति से संन्यास ले लूंगा। लेकिन प्रजातंत्र की सफलता के लिए कांग्रेस का प्रजा–तान्त्रिक विकल्प बनाना अत्यावश्यक है।"

घटनाक्रम से बिल्कुल साफ था कि जहां दूसरे दल विकल्प पार्टी के लिए अनिश्चितता की स्थिति से गुजर रहे थे? वहां दूरदर्शी चौधरी चरण सिंह विकल्प के लिए व्याकुल थे। उन्होंने अब भी अपना प्रयास ढीला

नहीं किया। १६–१७ दिसम्बर को नई दिल्ली में एक महत्त्वपूर्ण बैठक हुई। उसमें संगठन कांग्रेस ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि अपने ट्रस्ट सम्पत्ति आदि के बारे में वह जनरल बॉडी की बैठक बुलाकर कोई निश्चित राय ले सकते हैं। संगठन कांग्रेस ने यह भी सुझाव दिया कि नये दल का, अगर वह बनता है, नाम जनता कांग्रेस रखा जाय। समाजवादी दल और जनसंघ अब तक विलय के लिए सहमत हो चुके थे। उन्होंने प्रस्तावित नाम पर सहमति भी प्रकट की। चौधरी चरण सिंह को "कांग्रेस" शब्द पर घोर आपत्ति थी। "कांग्रेस" उनकी राय में भ्रष्टाचार का पर्याय बन चुका था। इस नाम के सुझाव से यह भी ध्वनि व्यक्त हुई कि मोरार जी भाई देसाई दल का अध्यक्ष बनना चाहते हैं। चन्द्रशेखर अभी तक जेल में थे। वे मोरार जी के नेतृत्त्व पर किसी तरह सहमत नहीं हो रहे थे। चौधरी चरण सिंह ने १६ जनवरी १९७७ को जे० पी० को एक पत्र में पुनः आग्रहपूर्वक लिखाः

"नये दल का गठन हो सकेगा, यह विश्वास जनता को हम नहीं दे पा रहे हैं। संगठन कांग्रेस वाले रोड़ा अटका रहे हैं। यदि वह सहमत भी हो जाय, तो फरवरी गुजर जायेगी, जबकि आम चुनाव सम्भावित है। अतः दल का गठन चुनाव से पूर्व हो जाना आवश्यक है, क्योंकि चुनाव घोषणा के बाद का वह प्रभाव नहीं बन पायेगा, जो पहले बनने से होगा।"

अचानक श्रीमती इन्दिरा गांधी ने १८ जनवरी १९७७ को चुनाव कराने की घोषणा कर दी। विरोधी पक्ष इससे बड़े असमंजस में पड़ा। १९ जनवरी को मोरार जी भाई देसाई जेल से छोड़ दिए गए। श्री पीलू मोदी जो विकल्प दल बनाने में चौधरी चरण सिंह की बड़ी मदद कर रहे थे, मोरार जी से मिलने उनके निवास पर गये। मोरार जी भाई ने मोदी से तपाक से कहा कि "अच्छा हुआ चुनाव घोषित हो गया, विलय के पाप से बच गये। अब मोर्चा बनाकर लड़ लिया जायेगा"। इसे सुन कर चौधरी साहब ने कहा, "विलय हमारा एक सूत्री कार्यक्रम है, कोई मोर्चाबन्दी नहीं होगी।" उसी रात मोरार जी के नयी दिल्ली वाले निवास ५ डूप्ले रोड पर सभी प्रमुख दलों के नेताओं की बैठक हुई। उसमें चौधरी चरण सिंह, अटल बिहारी वाजपेयी, सुरेन्द्र मोहन, पीलू मोदी, नानाजी देशमुख, एन० जी० गोरे और अशोक मेहता शामिल हुए। श्री मोरार जी देसाई ने स्वयंमेव उस बैठक की अध्यक्षता कर ली। बैठक में मोरार जी भाई ने मोर्चा बनाने पर ही जोर दिया। चौधरी चरण सिंह तथा एन० जी गोरे ने उत्तेजित होकर विलय की मांग की। तब मोरार जी देसाई नयी पार्टी के अध्यक्ष पद के लिये अड़ गये।

भारतीय लोक दल ने विकल्प का दल बनाने के लिये अथक प्रयास

किया था। वह चौधरी चरण सिंह को अध्यक्ष बनाने के पक्ष में था। क्योंकि चौधरी चरण सिंह का व्यक्तित्व भारतीय जनमानस पर अक्षुण्ण प्रभावकारी था। लोक दल चौधरी चरण सिंह के अनुरोध को भी कि मोरार जी भाई अध्यक्ष मान लिये जायें, तब सुनने को तैयार नहीं था।

चौधरी चरण सिंह ने ऐसे मोड़ों पर हमेशा महान देशभक्ति का परिचय दिया है। महज अध्यक्ष पद के कारण एक दल न बन सके यह हास्यास्पद था। उन्होंने अस्वस्थ जे० पी० से दिल्ली आने का आग्रह किया। दिल्ली आकर जे० पी० ने स्थिति को समझ कर ऐलान किया कि "एक दल नहीं बनाया जाता तो मैं चुनाव प्रचार नहीं करूंगा।" मोरार जी भाई अध्यक्ष पद के अतिरिक्त कुछ भी स्वीकार करने तैयार नहीं थे। वे उम्र में जे० पी० से बड़े थे। जे० पी० ने निर्णय दिया, "मोरार जी नये दल के अध्यक्ष, चौधरी चरण सिंह उपाध्यक्ष होंगे। क्योंकि चौधरी चरण सिंह का उत्तर भारत पर सर्वाधिक प्रभाव है। अतरू वहां के चुनाव प्रचार, प्रत्याशियों का चयन और समस्त रणनीति वही तय करेंगे।"

चौधरी चरण सिंह ने अपनी विकल्प की दल बनाने की आशा को फलीभूत होते देख लोक दल को जे० पी० के निर्णय के पक्ष में राजी कर लिया। इस तरह उनका तीन साल लम्बा प्रयत्न अपने लक्ष्य में सफल हुआ। २३ जनवरी सन् १९७७ को मोरार जी भाई के निवास पर जनता पार्टी के गठन की घोषणा विधिवत कर दी गयी।

आपातकाल के नादिरशाही अत्याचारों तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी के स्वांग से पीड़ित कई दल चुनावों का बहिष्कार करने का भी सोच रहे थे। चौधरी साहब ने उन्हें समझा कर अनिश्चितता के इस वातावरण को समाप्त कर दिया। सभी दल नवगठित जनता पार्टी के तत्त्वावधान में चुनाव लड़ने को तैयार हो गये। चुनाव आयोग ने नवगठित पार्टी को मान्यता नहीं दी। अतः चुनाव भारतीय लोक दल के नामांकन पत्र व सदस्यता तथा झंडे पर ही लड़ा गया। उत्तर भारत में चौधरी चरण सिंह ने चुनावों का नेतृत्व किया। उत्तर भारत में इन्दिरा कांग्रेस चारों खाने चित्त हुई। दक्षिण–पश्चिम भारत में भी जनता का पक्ष प्रबल रहा। वहां के चुनावों का नेतृत्व अध्यक्ष श्री मोरार जी देसाई कर रहे थे। जनता पार्टी के पास धन की कमी थी, जबकि इन्दिरा कांग्रेस को पंजीपतियों ने धन बटोरने में हर सम्भव मदद की, जिससे उन्होंने चुनाव में धन पानी की तरह बहाया। फिर भी जनता पार्टी को मुख्यतया चौधरी चरण सिंह के कारण अभूतपूर्व सफलता मिली। इस कारण २६ मार्च १९७७ को जनता पार्टी के शासन की स्थापना हुई। कांग्रेस की कुनीतियों के केन्द्र की नींव स्वदेश की आजादी के बाद पहली बार डगमगायी।

अध्याय ११

जनता पार्टी और सरकार का विघटन

जनता पार्टी के विघटन की कहानी बड़ी मार्मिक और दुःखभरी है। पार्टी के संसद सदस्यों और प्रमुख नेताओं ने केन्द्र सरकार बनाने के पहले दिनांक २६ मार्च १९७७ को महात्मा गांधी की समाधि पर समवेत रूप में शपथ ली थी कि वे किसी भी हालत में पार्टी को टूटने नहीं देंगे। चौधरी चरण सिंह उन दिनों अस्पताल में बीमार थे। शपथ समारोह में उपस्थित नहीं हो सके थे, वे फिर भी अपने को उस शपथ से प्रतिभूत मानते थे।

उसी दिन संसदीय दल के नेता का निर्वाचन भी होने वाला था। विभिन्न दलों से आये संसद सदस्यों और नेताओं ने पुराने घटकों की आपसी प्रतिस्पर्धा से बचने के लिए लोकनायक जयप्रकाश और आचार्य जे० बी० कृपालनी पर नेता का मनोनयन सौंप दिया था। उत्तर भारत में लोकनायक के व्यापक निर्देशन में चौधरी चरण सिंह ने चुनावों में तानाशाही को चारों खाने चित्त कर दिया था। यहां तक कि श्रीमती इन्दिरा गांधी भी रायबरेली से चुनाव बुरी तरह हार गयी थीं। चौधरी चरण सिंह से कहीं अधिक भूतपूर्व लोक दल के लोगों की तीव्र आकांक्षा थी कि किसानों का यह मसीहा जनता सरकार का नेतृत्व करे, जिससे सर्वाधिक शोषित देश की आबादी के अस्सी प्रतिशत ग्रामवासियों को सुखी और समृद्ध बना कर भारत को शक्तिशाली बनाने की नयी क्रांतिकारी नीति का उद्‌भव हो। संसद सदस्यों में गुप्त मतदान से नेता का निर्वाचन होता तो यही हुआ होता। लेकिन बहुमत पार्टी के अध्यक्ष श्री मोरार जी भाई देसाई उम्र में चौधरी चरण सिंह से बड़े थे, भारत सरकार में पहले प्रधान मंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू के समय से ही, एक अल्प अवधि को छोड़कर, उप–प्रधान मंत्री रहे थे। जवाहरलाल जी के बाद उनको प्रधान मंत्री का पद न देकर उनसे कनिष्ठ श्री लाल बहादुर शास्त्री और बाद में श्रीमती इन्दिरा गांधी को उस पर आसीन किया गया। इस बारे में उनके क्षोभ को सभी जानते थे। दक्षिण–पश्चिम भारत में वे चुनावों के इन्चार्ज थे। जनता पार्टी के अध्यक्ष वे थे ही। दक्षिण भारत में आपात काल के अत्याचार उतने पाशविक नहीं हुए थे, जितने उत्तर भारत में। शायद इसीलिए श्रीमती इन्दिरा गांधी कांग्रेस को दक्षिण भारत में वह विकट हार नहीं मिलीं,

जैसी उत्तर भारत में हुई। पश्चिम में गुजरात और महाराष्ट्र में जनता को बहुमत जरूर मिला। आपात काल में कैद किए जाने पर मोरार जी भाई ने जेल के एकांतवास में अभिनव आत्मविश्वास और आत्मबल का परिचय दिया था। जेल से बाहर आते समय उनकी प्रतिष्ठा बहुत ऊंचाई पर थी। वे सोच ही नहीं सकते थे कि उनके नेतृत्व को कोई चुनौती दे सकेगा।

जनता पार्टी के तीसरे दिग्गज नेता बाबू जगजीवन राम थे। वे हरिजन कुल के थे और आजादी के साल से ही देश के हरिजनों के बड़े नेता माने जाते थे। आजादी के बाद से वह केन्द्रीय सरकार में लगातार वरिष्ठ मंत्री रहे थे। उनकी कुशाग्र बुद्धि और राजनैतिक सूझ–बूझ उच्चकोटि की मानी जाती थी। बांग्ला देश को भारतीय सेना ने वहां की मुक्ति वाहिनी की मदद कर जब स्वतंत्र कराया, तब वह हिन्दुस्तान के रक्षा मंत्री थे। उनके विरुद्ध एक महत्वपूर्ण तर्क यह था कि श्रीमती इन्दिरा गांधी के आपात स्थिति लागू करने के विधेयक को संसद में उन्होंने ही पेश किया था। लेकिन जे० पी० जैसे महान स्वतंत्रता सेनानी, अन्य शीर्षस्थ नेताओं तथा दूसरे निरपराध नागरिकों पर आपात काल में इतना जघन्य अपराध होगा, इसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। जे० पी० को गिरफ्तार कर जेल में एकांतवास की यातना देना अनहोनी बात हो गयी। फ्रांस में जनरल डि – गॉल ने भी आपात स्थिति लागू की थी। वहां भी आपात स्थिति के खिलाफ सोचने भर पर ही नागरिकों को जेलों में ठूंस दिया जाता था। फ्रांस के सुप्रसिद्ध दार्शनिक और साहित्यशिल्पी ज्याँ पॉल सार्त्र आपात स्थिति लागू करने के लिए डी – गॉल के विरुद्ध धुंआधार कड़े भाषण और वक्तव्य दे रहे थे। उन्हें घोर पातकी बताते थे। प्रशासन ने जनरल डी – गॉल से सार्त्र को गिरफ्तार करने की अनुमति मांगी। जनरल डी – गॉल ने कहा, "नहीं, सार्त्र फ्रांस के रोमां रोलां हैं।" वह गिरफ्तार नहीं किए गये। यहां यह विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि कुर्सी को बचाने के लिए महात्मा गांधी को भी कैद में लिया गया होता। उदार शिक्षा की कमी के कारण ऐसा करने में श्रीमती इंदिरा गांधी को किंचित् हिचक नहीं होती। इन सब कारणों से बाबू जगजीवन राम ने अपना नया दल सी० एफ० डी० (लोकतांत्रिक कांग्रेस) श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा के सहयोग से बनाया था। आपात स्थिति के खिलाफ जनता का जोश देखकर चुनावों के घोषित होते ही श्री जगवीवन राम अपने दलबल समेत जनता पार्टी में आ मिले। कुछ लोग आज तक इसे शुद्ध अवसरवादिता मानते हैं। जो हो, उपरोक्त तीनों विशिष्ट नेता जनता सरकार और देश को गौरवपूर्ण नेतृत्व देने में समर्थ थे। इन तीनों में किसी एक को चुनना भी सरल काम नहीं था।

गुप्त मतदान से अगर नेता का चुनाव किया गया होता, तो बहुमत

की प्रतिष्ठा हर एक के मन की गांठ कुछ दिनों में जरूर मिट जाती। प्रजातांत्रिक प्रणाली भी यही थी। लेकिन आजादी के समय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने बहुमत समर्थित सरदार पटेल की जगह श्री जवाहरलाल नेहरू को जो प्रधान मंत्री पद के लिए मनोनीत किया था, उसी परम्परा को पकड़ा गया। जवाहरलाल स्वप्नद्रष्टा थे, सरदार ठोस धरती के यथार्थवादी। स्वप्नद्रष्टा के आदर्श से देश में जो समस्याएं उभरी, जैसे पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर, चीन अधिकृत उत्तरी हिमालय और पूर्वी हिमालय के भारतीय भू–भाग, उसे सभी जानते हैं। घरेलू और कुटीर उद्योगों का भारी उद्योगों के सामने विकास एकदम रुक गया, जिससे बेरोजगारी बढ़ी और कृषि उत्पादन बढ़ाने पर वह ध्यान नहीं दिया गया, जो कृषि प्रधान देश में अपेक्षित था। सरदार पटेल ने देश के लिए ऐतिहासिक काम किए। प्रधान पद से वे जाने कितना अधिक करते। शायद जनता के विभिन्न परस्पर विरोधी घटकों के तनावपूर्ण वातावरण में लोकनायक और आचार्य कृपलानी को मनोनयन वाली परिपाटी अपनानी पड़ी। इसे दुःसंयोग ही माना जायेगा कि वे श्री मोरार जी भाई और बाबू जगजीवन राम के नामों पर विचार करते रहे। चौधरी चरण सिंह ने जनता पार्टी को बनाया था, उत्तर भारत में उसे शत प्रतिशत विजय दिलायी थी, उनकी आर्थिक और प्रशासनिक प्रतिभा का लोहा भी सभी मानते थे। फिर भी प्रधान मंत्री पद के लिए उनके नाम को वह वरीयता नहीं मिली, जो प्रजातांत्रिक प्रणाली में होनी चाहिए थी।

महात्मा गांधी की समाधि पर हुए शपथ समारोह के बाद ही भूतपूर्व समाजवादी नेता श्री राजनारायण ने अस्पताल में चौधरी चरण सिंह को वस्तु स्थिति से अवगत कराया। चौधरी साहब ने श्री राजनारायण के हाथ एक नोट लिखकर भेज दिया कि वे मोरार जी देसाई के सहयोगी के रूप में ही काम कर सकेंगे। कतिपय तत्कालीन राजनैतिक पर्यवेक्षकों का मत है कि जे० पी० और आचार्य कृपलानी बाबू जगजीवन राम की ओर अधिक झुके थे। ऐसा इसलिए था कि वे एक हरिजन को प्रधान मंत्री बना कर नयी क्रांति का सूत्रपात करना चाहते थे। चौधरी साहब के नोट ने दुविधा मिटा दी। उन्होंने मोरार जी को प्रधान मंत्री पद के लिए मनोनीत कर दिया। चौधरी चरण सिंह के विरोधियों का कहना है कि केवल आपातकाल का विधेयक संसद में पेश करने के कारण चौधरी साहब ने बाबू जगजीवन राम का विरोध नहीं किया। उनके विरोध का कारण यह एहसास भी था कि वे बाबू जगजीवन राम से उम्र में बड़े थे और उत्तर भारत में उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली थी। उधर जे० पी० और आचार्य कृपलानी ने मोरार जी को नेता मनोनीत करते समय पत्रकारों से

यह दिया कि अगर दो प्रधान मंत्री हो सकते थे, तो वे दोनों को नामजद करते। यह गम्भीरता से नहीं प्रत्युत औपचारिक रूप से कहा गया था, लेकिन मनों में गांठ डालने के लिए यह काफी था, विशेषकर जब भारतीय लोकदल के भूतपूर्व सदस्य क्षुब्ध थे।

उपर्युक्त मानसिकता के साथ जनता पार्टी की सरकार ने केन्द्र में २६ मार्च १९७७ को शपथ ग्रहण की और कार्यभार सम्भाला। अपने प्रति किए गये अप्रत्याशित सौहार्द्र से मोरार जी ने चौधरी चरण सिंह को दूसरे नम्बर की वरिष्ठता तथा गृह मंत्री का शक्तिशाली पद प्रदान किया। कांग्रेस की कुनीति और आपात काल के जघन्य अपराधों एवं अत्याचारों के बाद इतनी सक्षम और स्वच्छ सरकार पाकर देश में एक कोने से दूसरे कोने तक प्रसन्नता की अभिनव लहर बहने लगी। चौधरी चरण सिंह को दूसरे नम्बर पर गृहमंत्री देखकर उत्तर भारत में खुशी के आंसू बहने लगे। सबने यह सोचा कि आपातकाल की ज्यादतियों का प्रतिकार होगा और ज्यादती करने वालों को बख्शा नहीं जाएगा। यह विश्वास भी बढ़ा कि किसानों और खेतिहर मजदूरों की दशा में अब सचमुच सुधार सम्भव हो सकेगा तथा प्रशासन लोक कल्याण की भावनाओं से तत्परता से जनता की सेवा करेगा। शासन के विभिन्न विभागों ने बड़े उत्साह से प्रशासनिक कामों का शुभारम्भ भी किया। लेकिन जनता पार्टी में विलय करके भी कोई घटक अपना पिछला रूप नहीं भूल सका। इतनी जल्दी वह भूलता भी नहीं। हर ग्रुप अपना प्रभाव बढ़ाने में लगा। हर में एक प्रधान मंत्री पद का छिपा प्रत्याशी था। वे सोचते थे कि जब श्रीमती इंदिरा गांधी बिना किसी त्याग, तपस्या या विशिष्ट के इतने दिनों तक प्रधान मंत्री रहीं, तो वे क्यों नहीं हो सकते, सब प्रकट–अप्रकट अपनी गोट बिछाने लगे।"

प्रधान मंत्री श्री देसाई ने अपने सार्वजनिक जीवन में ऐसा वातावरण कम देखा था। उन्होंने अपने लम्बे प्रशासनिक तथा सार्वजनिक जीवन के विविध अनुभवों से अपने लिए एक विशिष्ट कार्य–पद्धति और सोच की लीक बनायी थी, जिस पर दृढ़ता से वे अडिग रहते थे। इससे उनका स्वभाव हठी बन गया था। उनका अहम् भी काफी प्रबल था। उन्होंने लोकनायक जयप्रकाश नारायण से मिलने जाने को भी मना कर दिया था। क्योंकि जे० पी० उनसे उम्र में छोटे थे। अपने पूर्वाग्रहों के कारण वे निरन्तर बदलते प्रगतिशील युग में न समाजवादी थे, न साम्यवादी, न ही गांधी जी की तरह समानतावादी। अपने इकलौते पुत्र श्री कान्ति देसाई के संसर्गों के कारण तथा संगठन कांग्रेस के परिवेश में उन्हें पूंजीवादी परम्परा का माना जाता था। इस मान्यता का उन्हें एहसास था, क्योंकि वे भयंकर भाग्यवादी थे। अपनी वरिष्ठता और लम्बे अनुभव पर

जैसे वे स्वयं कट्टर लीकवादी थे, वैसे ही दूसरों के भी होने की उनकी अपेक्षा थी। प्रधान मंत्री पद पर यहीं उनकी मूलगत चूक हुई। वे विभिन्न मत–मतान्तरों, तथा घटकों की रीति–नीति का सामंजस्य नहीं कर सके, जितना लचीला उन्हें होना चाहिए था, नहीं हो सके। उल्टे मंत्रिमंडल बनाते समय ही उन्होंने अपने भूतपूर्व संगठन कांग्रेस दल के सात सदस्यों को पूर्ण सक्षम मंत्री बनाया। दूसरे प्रधान दल भूतपूर्व जनसंघ और भारतीय लोक दल से तीन–तीन मंत्री बनाकर उन्होंने समानुपात तोड़ा। इससे भूतपूर्व घटकों में क्षोभ का बढ़ना स्वाभाविक था।

उधर श्री चन्द्रशेखर को जनता पार्टी का अध्यक्ष बनाने में और गुल खिलाया। चौधरी चरण सिंह और उनके निकट के अनुयायी श्री कर्पूरी ठाकुर या श्री पीलू मोदी को अध्यक्ष बनाने के पक्ष में थे। श्री मोरार जी भाई और कतिपय दूसरे इससे सहमत नहीं थे। तब चौधरी चरण सिंह ने श्री राजनारायण को चन्द्रशेखर का नाम प्रस्तावित करने को कहा। श्री चन्द्रशेखर कांग्रेस के किसी गुट विशेष से नहीं आये थे। यह भी विश्वास किया जाता था कि वे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से सम्बंधित जनसंघ के सदस्यों पर समुचित नियंत्रण रख सकेंगे। श्री चन्द्रशेखर का कोई जनाधार नहीं था। उनकी एकमात्र उपलब्धियां यह थी कि वे "युवा तुर्क" की हैसियत से कांग्रेस में अग्रणी रह चुके थे, जहां कांग्रेस के सभापति और कार्यकारिणी के सदस्यों के खिलाफ कार्य समिति का चुनाव जीत चुके थे। आपातकाल में कैद किए जाने पर जेल में वह गेरुआ वस्त्र धारण किये थे। लोकनायक के वे निकट भी माने जाते थे। इन सबसे उनकी आकांक्षायें बांसों उछलने लगी थीं। वे भी प्रधान मंत्री बनने का सपना मन ही मन पाल रहे थे। श्री चन्द्रशेखर और दूसरे पदाधिकारी अस्थायी तौर पर मनोनीत थे। आगामी नवम्बर में संगठन का विधिवत् चुनाव होना तय हुआ था।

विधिवत चुनावों की तैयारी में जनसंघ ग्रुप ने बड़ी दिलचस्पी दिखायी। उन्होंने जनता पार्टी के संगठन के चुनाव में हर स्तर पर अपने कार्यकत्ताओं को पदासीन करने के लिए सभी राज्यों में बेशुमार सदस्य बनाये। व्यापारियों से इसके लिए उन्होंने चंदा भी उगाहा। कहा जाता है कि लाखों की संख्या में सदस्य बनाये गये। योजना यह थी कि मंडल, जिला से लेकर उच्चतम स्तर तक उनके कार्यकर्त्ता पदाधिकारी बन जाएं और नाना जी देशमुख को पार्टी का अध्यक्ष बनाया जाय। चौधरी चरण सिंह को यहीं भूतपूर्व जनसंघियों की नीयत पर अविश्वास पैदा हुआ। उनके भूतपूर्व लोक दल के अनुयायी तो रोष से भरे ही जा रहे थे। सवाल अल्पसंख्यकों का भी था कि उनकी आंखों में जनता पार्टी की छवि भूतपूर्व जनसंघी सदस्यों को संगठन के पदों पर देख कर क्या उभरेगी?

अध्यक्ष चन्द्रशेखर कुछ दिनों तक राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की दोहरी सदस्यता के विरुद्ध वक्तव्य भी देते रहे। लेकिन जब उन्होंने देखा की संगठन पर भूतपूर्व जनसंघी दल हावी हो जायेगा, तब अपना अध्यक्ष पद सुरक्षित रखने के लिए वे दोहरी सदस्यता की अपनी तीखी आलोचना भूल कर उनकी ओर झुकने लगे। यह खतरे की घंटी थी। चौधरी चरण सिंह इससे सशंकित हुए और भूतपूर्व समाजवादी श्री मधु लिमये और राजनारायण जनसंघी ग्रुप के विरुद्ध ताल ठोंक कर खड़े हो गये। जनसंघी ग्रुप ने भी उत्तर दिया। इस तरह जनता पार्टी के घटकों की अन्दरूनी राजनीति और कलह धोबी पछाड़ बनकर बाहर प्रकट होने लगी। समाचार पत्रों में यह खबरें शीर्ष लाइनों में छपने लगीं।

उधर आठ राज्यों में विधान सभा के चुनाव कराये गये थे। उसमें जनता पार्टी बहुमत में निर्वाचित हुई। चौधरी चरण सिंह के भूतपूर्व लोक दल ग्रुप और जनसंघ ग्रुप के सदस्य अधिक चुने गये थे। दोनों घटकों ने अपने प्रभाव क्षेत्र के अनुसार तालमेल बैठा कर राज्यों के मुख्यमंत्री पदों पर समझौता कर लिया। हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार और उड़ीसा में लोक दल ग्रुप के मुख्यमंत्री बने और हिमाचल प्रदेश, राजस्थान तथा मध्य प्रदेश में जनसंघ ग्रुप के। बिहार में भूतपूर्व जनसंघ के निर्वाचित सदस्य अधिक संख्या में थे। लेकिन जनसंघ ने वहां श्री कर्पूरी ठाकुर का समर्थन किया, जो लोकदल से आये थे। इस तर्क का उल्लेख करते हुए श्री लालकृष्ण अडवाणी ने, जिन्होंने जनता सरकार के भंग होने के बाद चौधरी चरण सिंह के खिलाफ 'विश्वासघात' नामक पुस्तक में विष वमन किया, लिखा है कि "वास्तविकता यह है कि जो भी व्यक्ति मुख्यमंत्री बने, उनका चुनाव स्वाभाविक रूप से और विधायकों द्वारा स्वतंत्र रूप से किया गया था। यह धारणा कि मुख्यमंत्री पद बांट लिए गये असत्य है।"

जो भी हो, उक्त समझौते से भूतपूर्व संगठन कांग्रेस वाले बहुत चिढ़े, यद्यपि प्रधानमंत्री मोरार जी भाई ने ही केन्द्रीय मंत्रिमंडल में सबसे पहले समानुपात का सिद्धान्त तोड़ा था। अध्यक्ष चन्द्रशेखर पहले ही उत्तर प्रदेश विधान सभा के प्रत्याशियों की लिस्ट में भारी मनमानी कर चुके थे। अब संगठन में उन्होंने हरियाणा को छोड़। कर कहीं भी भूतपूर्व लोक दल के सदस्यों को राज्य संगठन का अध्यक्ष नहीं नामांकित किया। राज्य के चुनाव पैनलों में भी उन्हें अपेक्षित स्थान नहीं दिया गया। बंगाल, बिहार और राजस्थान में संगठन कांग्रेस ग्रुप के लोग अध्यक्ष बनाये गये। दिल्ली, पंजाब ग्रुप को और मध्य प्रदेश में भूतपूर्व जनसंघी अध्यक्ष बने। शेष राज्यों में समाजवादी अध्यक्ष पद मिला। जिलों की तदर्थ समितियों में भी भूतपूर्व लोक दल ग्रुप के कम लोग लिए गये। इससे उन राज्यों में जहां, लोक

दल ग्रुप के मुख्यमंत्री थे, काफी अव्यवस्था और अराजकता फैली। चौधरी चरण सिंह अपने पुराने अनुयायियों की इतनी उपेक्षा पर नहीं चिढ़ते, तभी आश्चर्य होता। उन्हें लगा और बड़ी दूर तक यह सम्भव भी था कि श्री चन्द्रशेखर इस नीति को अपना कर पद ही नहीं सुरक्षित रखना चाहते थे, उनकी निगाह अपनी छिपी आकांक्षा की मूर्त रूप देने के लिए अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने पर भी टिकी थी।

उधर संगठन कांग्रेस के भूतपूर्व सदस्यों की ईर्ष्याग्नि गृहमंत्री चौधरी चरण सिंह की बढ़ती हुई ख्याति से धधक रही थी। चौधरी साहब ने आपात काल के अत्याचारों ओर अन्यायों की विधिवत् जांच करा कर दोषी पाये जाने वाले लोगों को दण्ड दिलाने के लिये कई जांच आयोग नियुक्त कराये। इनमें सबसे प्रमुख भारत के भूतपूर्व प्रधान न्यायाधीश श्री शाह का शाह आयोग था, जो श्रीमती इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री की हैसियत से किये गये अवैध कामों और अत्याचारों की जांच कर रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त किया था। श्रीमती इंदिरा गांधी ने स्वार्थान्धता से आपातकाल को अवैध रूप से लागू किया था और ऐसे जघन्य अत्याचारों को प्रश्रय दिया था, जो दासता काल में अंग्रेजों द्वारा किये गये नृशंस अत्याचारों से भी अधिक पाशविक थे। संसद में एक प्रसंग में उन्होंने एक बयान दिया था कि विरोधी दल मुझे स्वेच्छाचारी कहते हैं। अब सबको मालूम होगा कि स्वेच्छाचार क्या है? उसके कारण देश की निरीह जनता आतंकित जरूर हुई, यह चौधरी चरण सिंह जैसे दृढ़ तथा कुशल प्रशासक का ही बूता था, जो श्रीमती इंदिरा गांधी को उनकी सही जगह दिखा सकता था। वे चाहते थे कि श्रीमती गांधी को मीसा में ही गिरफ्तार कर उसी एकान्त कक्ष में कैद किया जाय, जहां उन्होंने लोकनायक जयप्रकाश नारायण को या राजमाता सिन्धिया को रखा था। प्रधान मंत्री देसाई इससे सहमत नहीं थे। वह श्रीमती गांधी के प्रति शिष्टता बरतना चाहते थे। यहां तक कि शाह आयोग की रिपोर्ट प्राप्त होने पर उन्होंने श्रीमती गांधी के "ट्रायल" के लिए स्पेशल कोर्ट नहीं बनाया। वे साधारण अदालतों द्वारा उनकी कार्यवाही कराना चाहते थे, जिसमें न जाने कितना समय लगता।

श्रीमती इंदिरा गांधी अपने अपराधों को जानती थी। अपने से अधिक वे अपने स्वर्गीय संजय गांधी के अपराधों से चिन्तित थी। वे सब के पास दौड़ी। मोरार जी भाई ने यह कहा जाता है, उन्हें उनके लिये आश्वस्त कर दिया था, उनके पुत्र संजय के लिये नहीं। गुप्ता आयोग ने संजय के विरुद्ध आर्थिक अनियमितताओं और भ्रष्टाचार की रिपोर्ट दी थी। चौधरी चरण सिंह शिष्टता के स्वयं बड़े कायल हैं। शिष्टाचार पर उन्होंने एक विचारपूर्ण पुस्तक भी लिखी है। लेकिन श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक लाख

से ऊपर लोगों को जेल भेजा था, उनके परिवारों को सताया था, देश के महान स्वतंत्रता सेनानियों को अकारण एकान्त कोठरियों में सड़ाया था। यहां तक कि लोकनायक जयप्रकाश नारायण को उनके अस्वस्थ होते हुए भी एकान्तवास में कैद रखा था। ऐसे व्यक्ति को क्षमा करने का यह अर्थ था कि कानून भी ऊंच और नीच के लिए बराबर नहीं। इस सिद्धान्त का प्रधानमंत्री श्री देसाई द्वारा सही प्रतिपादन न होते देख चौधरी चरण सिंह को हार्दिक दुःख हुआ। शायद इसी शिष्टता की लहर में मजिस्ट्रेट ने श्रीमती गांधी को अपराध की जांच के दौरान पुलिस रिमाण्ड मांगे जाने पर छोड़ ही नहीं दिया, उन्हें निरपराधी भी घोषित कर दिया। रिमाण्ड न देना, विशेष कर जब उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व प्रधान न्यायाधीश के जांच आयोग से अपराध होने की संस्तुति हुई थी, कानून के सर्वथा विरुद्ध था। वर्तमान न्याय–पद्धति के इतिहास में ऐसा कभी हुआ नहीं था। बहुतों को विश्वास है और चौधरी चरण सिंह को भी इधर कुछ जानकारी मिली है कि मजिस्ट्रेट ने वह गलत काम प्रधानमंत्री श्री देसाई के इशारे पर किया था। इतना तो विस्मयकारी सच है कि रातोंरात एक मजिस्ट्रेट से दूसरे मजिस्ट्रेट के पास वह मुकदमा बदल दिया गया था। यह भी सच है कि जिस मजिस्ट्रेट ने श्रीमती गांधी को रिमांड न देकर छोड़ दिया, वह सिक्किम में आज उच्च न्यायाधीशों के समकक्ष पद पर न जाने कितनों की वरिष्ठता का उससे अतिक्रमण कराया गया है। जो हो, सच्चाई का

अनुमान लगाना ही सम्भव है अनुमान सच इसलिए लगता है कि प्रधानमंत्री श्री देसाई श्रीमती इंदिरा गांधी को आश्वस्त ही नहीं कर चुके थे, वे चौधरी चरण सिंह की उत्तरोत्तर बढ़ती ख्याति से चिढ़े से थे। श्री जगजीवन राम, श्री चन्द्रशेखर और श्री बहुगुणा भी चौधरी साहब के विरुद्ध प्रचार कर रहे थे। शायद इन्हीं कारणों से चौधरी साहब ने कान्ति देसाई के आरोपों के सत्यासत्य के जांच की मांग की। प्रधानमंत्री देसाई और चौधरी चरण सिंह के बीच दरार का पड़ना स्वाभाविक था। प्रधान मंत्री का संगठन कांग्रेस ग्रुप चौधरी चरण सिंह से गृह विभाग हटाने की मंत्रणा करने लगा। प्रधानमंत्री का दृष्टिकोण कितना गलत था, वह एकतंत्र और वंशतंत्र के नंगे नाच से स्वयं सिद्ध हुआ। काश, प्रधानमंत्री जो आपात काल की यातनाओं के स्वयं भुक्तभोगी थे, चौधरी चरण सिंह की दूरदर्शिता पर पूरा ध्यान देते। तब दोनों के बीच वह दरार नहीं फटी होती।

इन्हीं दिनों श्री राजनारायण की ओर से जबर्दस्त मांग हुई कि अस्थायी अध्यक्ष की जगह कोई दूसरा अध्यक्ष बनाया जाय। संगठन के चुनावों को भूतपूर्व जनसंघ की तैयारियों के कारण सभी घटक स्थगित

करना चाहते थे। वह स्थगित हो गया। लेकिन आपसी तनाव और विवाद में अस्थायी अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर ही अध्यक्ष बने रहे। चन्द्रशेखर ने भारतीय लोक दल के पुराने कार्यकर्त्ताओं की संगठन में जानबूझ कर उपेक्षा की थी। लोक दल ग्रुप उनके अध्यक्ष बने रहने से नाराज हुआ।

प्रधानमंत्री मोरार जी देसाई १० जून को लम्बी विदेश यात्रा पर चले गये। अपनी अनुपस्थिति में वे मन्त्रिमंडल के दूसरे नम्बर के सदस्य चौधरी चरण सिंह को अपने कार्य का पूरा दायित्व दे गये। उसे वह चौधरी साहब और नम्बर तीन। बाबू जगजीवन राम को बांट गये। यह भी एक प्रकार का अविश्वास था। साथ ही नम्बर दो और नम्बर तीन के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ाने वाला कदम था। आश्चर्य की बात है कि श्रीमती इंदिरा गांधी को अच्छी तरह जानते हुए भी प्रधानमंत्री श्री देसाई जनता के विभिन्न घटकों के बीच तनाव बढ़ाने में ज्ञात या अज्ञात रूप से सहायक हो रहे थे, जैसे अध्यक्ष चन्द्रशेखर जानबूझ कर कर रहे थे।

चौधरी चरण सिंह मानसिक रूप से इतने क्लान्त हुए कि वे बीमार पड़ गये। 28 जून को वे सूरजकुण्ड (हरियाणा) के निरीक्षण भवन में स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे, जब प्रधानमंत्री श्री देसाई विदेश के दौरे से लौटे। विदेशों में उन्हें विभिन्न घटकों की प्रतिस्पर्धा और खींचातानी से अवगत कराया जाता रहा था। हवाई अड्डे पर जहाज से उतर कर स्वागत के लिए गये स्वास्थ्य मंत्री श्री राजनारायण को उन्होंने सरे आम डांटा। ऐसी बड़ी शिष्टता का अनुमान ही लगाया जा सकता है?

अपने निवास पर पहुंच कर वे चौधरी चरण सिंह के एक वक्तव्य को पढ़ कर बौखला गये। चौधरी चरण सिंह ने संयोग से उसी दिन एक बयान दिया था कि श्रीमती गांधी के अपराधों के खिलाफ समुचित कार्यवाही न होते देख जनता सरकार को शासन करने के अयोग्य तथा नपुंसकों का समूह समझती है। उस बयान में इशारा यह भी था कि जनता सरकार में भी उच्च स्तरों पर भ्रष्टाचार—वाद पनप रहा है, जिसे सहा नहीं जा सकता। बयान कड़ा था, यद्यपि उसमें ऐसा कुछ भी नहीं था, जिससे मंत्रिमंडल के संयुक्त उत्तरदायित्व को चुनौती हो या मंत्रिमंडल का कोई भेद प्रकट हो। जनता श्रीमती गांधी के विरुद्ध तत्परता से कार्यवाही न करने को क्या समझ रही है, बयान में इसी का इशारा था। वयोवृद्ध नेता आचार्य कृपलानी ने भी अपने एक पत्र में कुछ ऐसा ही कहा था। प्रधानमंत्री श्री देसाई जो इस बात के आदी थे कि उनके इशारे के विपरीत भी कोई न बोले, बेहद चिढ़ गये। उन्होंने मंत्रिमंडल के सदस्यों की राय लेकर इसी बात पर चौधरी सिंह का त्यागपत्र मांग लिया। उधर श्री राजनारायण ने, जो तब तक अपने को चौधरी चरण सिंह का 'हनुमान'

बताते थे, शिमला में रिज पर एक सभा को सम्बोधित कर दिया था। कहा जाता है कि उक्त सभा धारा १४४ लगी होते हुए वहां जानबूझ कर की गयी थी। प्रधानमंत्री ने उनका त्यागपत्र भी मांग लिया। बस जनता पार्टी में आग लग गयी। चौधरी चरण सिंह ने तीन पंक्तियों के सीधे सादे जवाब के साथ अपना त्यागपत्र भेजा। उनके 'हनुमान' ने चार पन्नों के बहुत बड़े पत्र के साथ त्यागपत्र भेजा। उस पत्र की भाषा भी कड़ी थी और उसमें लगाये गये आरोप भी असंयत थे।

श्री लालकृष्ण अडवानी ने अपनी पुस्तक 'विश्वासघात' में यह लिखा है कि श्री मधु लिमये ने चौधरी साहब से उस बयान के कारण को पूछा था। श्री आडवानी ने। चौधरी साहब द्वारा श्री मधु लिमये को दिए गये जवाब का भी उल्लेख किया है कि चूंकि श्री राजनारायण को मंत्रिमंडल से निकालने की साजिश थी, इसलिए उन्होंने वह बयान दिया था, जो सत्य से विपरीत नहीं था और जिसमें कुछ भी आपत्तिजनक नहीं था। चौधरी चरण सिंह श्री मधुलिमये से इस बातचीत को इन्कार करते हैं।

यहां यह सवाल उठता है कि चौधरी चरण सिंह से जो मंत्रिमंडल में नम्बर दो थे, तथा स्वास्थ्य मंत्री श्री राजनारायण से भी पहले स्पष्टीकरण क्यों नहीं मांगा गया? निष्कर्ष केवल यही निकलता है कि प्रधानमंत्री श्री देसाई जिद में थे। उच्च स्तर के भ्रष्टाचार वाली उक्ति में उन्हें कान्ति देसाई के खिलाफ जांच के मांग की गन्ध मिली थी। चौधरी साहब जैसे दिग्गज को वे सबक सिखाना चाहते थे। यह ठीक है कि मंत्रिमंडल के किसी सदस्य ने सिवा श्री बीजू पटनायक के, प्रधानमंत्री की कार्यवाही का विरोध नहीं किया। मगर चौधरी चरण सिंह जैसे जनप्रिय नेता को इस तरह अपमानित करना सर्वथा विवेकहीनता थी विशेषकर जब श्री मोरार जी को प्रधानमंत्री बनाने में चौधरी चरण सिंह ने भारी सहयोग किया था। क्या यह सम्भव नहीं था कि चौधरी चरण सिंह जनता पार्टी से अलग होकर भारतीय लोक दल को पुनः जीवित कर देते? प्रधानमंत्री की एक धारणा यह थी कि जहां जनता दल में विलीन हर घटक का नेता प्रधानमंत्री पद प्राप्त करना चाहता है, वहां चौधरी चरण सिंह जल्दी से जल्दी प्रधानमंत्री पद पर आसीन होना चाहते थे। यह नहीं कि चौधरी चरण सिंह की यह महत्त्वाकांक्षा नहीं थी, लेकिन तत्कालीन परिस्थितियों में उनके लिए ऐसा करना घोर अदूरदर्शिता होती जो अन्ततः श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा स्वेच्छा से उनके प्रधानमंत्रित्व को सहयोग स्वीकार करने पर वस्तुतः हुई। चौधरी चरण सिंह ने महात्मा गांधी से साध्य ही नहीं, साधन की पवित्रता को भी सीखा था। अपने त्यागपत्र पर संसद में बयान देते समय उन्होंने बताया कि प्रधानमंत्री श्री देसाई उनसे ११ मार्च से ही चिढ़े थे, जिस दिन उन्होंने कान्ति देसाई के भ्रष्टाचार के

सत्यासत्य की सम्यक् जांच की मांग उठायी थी। प्रधानमंत्री कान्ति देसाई के विरुद्ध तब तक जांच कराने को तैयार नहीं थे, जब तक आधार सहित कान्ति देसाई के विरुद्ध कोई शिकायत निरूपित न हो। मोरार जी भाई जैसे अनुभवी और वरिष्ठ नेता से यह दलील सराहनीय नहीं मानी जाएगी। उन जैसे सर्वोच्च पद के व्यक्ति को जांच कराकर सत्यासत्य को सार्वजनिक रूप से प्रकट करना ही विवेक होता। इससे उनकी प्रसिद्धि में चार चांद लग जाते। ऐसा उन्होंने किया नहीं। सच यही लगता है कि कान्ति देसाई वाले प्रकरण से चिढ़ कर ही प्रधानमंत्री ने चौधरी चरण सिंह का त्यागपत्र मांग लेने की अदूरदर्शिता की।

भारतीय जनता पार्टी के सुप्रसिद्ध नेता श्री लालकृष्ण अडवानी ने, जो उस समय सूचना एवं प्रसारण मंत्री थे, अपनी पुस्तक 'विश्वासघात' (हिन्दी) में इस विषय में यह सवाल उठाया है कि चौधरी साहब ने कान्ति विषयक मामले पर प्रधानमंत्री से पहले बातचीत क्यों नहीं की? एक वृद्ध व्यक्ति की अकेली संतान के बारे में ऐसी बातचीत से विशेषकर जब पिता का पूर्वाग्रह प्रकट हो, क्या लाभ होता? और पत्र लिखने में क्या आपत्ति थी? उक्त आरोप का सच्चा निराकरण जांच कराने से ही हो सकता था। प्रधानमंत्री ने इस प्रक्रिया को अन्ततः स्वीकार भी किया।

उक्त परिस्थिति के लिए प्रधानमंत्री श्री देसाई के अहम् और हठ को ही दोषी माना जा सकता है। इससे मनों की दरार चौड़ी होती गयी, घटकों की प्रतिस्पर्धा बढ़ती गयी, सभी अपना–अपना दांव लगाने लगे और जे० पी० के महान आशीर्वाद से बनी कांग्रेस कुशासन की विकल्प जनता पार्टी की नींव हिलने लगी।

जनता के महल को एकाएक ढह पड़ने से बचाने का प्रयत्न श्री मधु लिमये ने प्रारम्भ किया। उन्होंने चौधरी साहब को तत्काल मंत्रिमंडल का फिर से सदस्य बनाने का प्रधानमंत्री देसाई से आग्रह किया। उनका सबसे अधिक साथ दिया भूतपूर्व जनसंघ के श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने। कोई ग्रुप पार्टी का विघटन नहीं चाहता था। श्री चन्द्रशेखर हमेशा अपनी सुरक्षा को सुनिचिश्त कर पक्ष–विपक्ष में जाने का साहस करते थे। संगठन कांग्रेसी चौधरी चरण सिंह के वापस लिए जाने के घोर विरोधी थे। प्रधानमंत्री संगठन कांग्रेस से आये थे। समझौते की कोई सूरत उन्हें पसन्द नहीं आ रही थी। अन्त में वे इस बात पर राजी हुए कि चौधरी साहब को वे मंत्रिमंडल में ले लेंगे, मगर श्री राजनारायण को कदापि नहीं। चौधरी साहब को भी वह गृह विभाग नहीं सौंपेंगे। चौधरी चरण सिंह को श्री राजनारायण की अप्रतिष्ठा कब स्वीकार होती? गतिरोध बना रहा।

चौधरी चरण सिंह के समर्थकों ने विशेष कर हरियाणा के मुख्य मंत्री

चौधरी देवी लाल ने सत्रह जुलाई को दिल्ली में एक किसान रैली को आहूत किया। भूतपूर्व लोक दल के सदस्यों में प्रधानमंत्री के प्रति भारी आक्रोश था। वे जनता पार्टी इसलिए नहीं छोड़ रहे थे कि चौधरी चरण सिंह ने पार्टी को नहीं छोड़ा। चार कनिष्ठ मंत्रियों ने उनका त्यागपत्र स्वीकार होते ही मंत्रिमंडल से विरोध स्वरूप इस्तीफा दे दिया था। लेकिन चौधरी चरण सिंह ने स्पष्ट घोषित किया था कि वे जनता पार्टी में हैं। वे कदापि नहीं चाहते थे कि जनता पार्टी टूटे, यद्यपि प्रधानमंत्री तथा पार्टी के अध्यक्ष ने उन्हीं के समर्थन से बन कर भी उन्हें और उनके अनुयायियों को कमजोर करने में कोई कोर कसर बाकी नहीं छोड़ी थी। समझौता कराने वालों ने अपने प्रयत्नों में ढील नहीं आने दी। किसान रैली के व्यापक महत्त्व को सभी जानते थे। वह रद्द करायी गयी। श्री देवी लाल ने रैली को आहूत करते समय यह बयान दिया था कि चौधरी चरण सिंह को मंत्रिमंडल से निकालने का प्रधानमंत्री का कान्ति देसाई की जांच के मांग के कारण पहले से ही सुनियोजित षडयंत्र था। उनके इस बयान के कारण चौधरी देवी लाल से जनता संसदीय दल ने मुख्य मंत्री पद छोड़ देने को कहा था। यह बयान वापस ले लिया गया। संसदीय दल ने भी हरियाणा में नया नेता चुनने की बैठक रद्द कर दी। चौधरी साहब ने जनता कार्यकारिणी समिति से इस्तीफा दे दिया था। उसे वापस ले लिया। समझौता कराने वालों ने चौधरी साहब को चन्द्रशेखर की जगह पार्टी का अध्यक्ष बनाने का प्रस्ताव किया था। संगठन कांग्रेस ग्रुप के संग–संग बाबू जगजीवन राम और श्री बहुगुणा का लोकतान्त्रिक कांग्रेस (सी० एफ० डी०) इस प्रस्ताव के घोर विरोध में खड़ा हो गया। श्री चन्द्रशेखर ने प्रकट रूप में विरोध नहीं किया, लेकिन वह आसानी से प्राप्त अपना पद कब छोड़ना पसन्द करते? अतः समझौते का यह तरीका भी स्वीकृत नहीं हुआ। चौधरी चरण सिंह ने तब पहले दलों को पुनर्जीवित कर एक संघीय दल बनाने का सुझाव वयोवृद्ध समाजवादी नेता श्री एस० एम० जोशी इससे दुःखी हुए। उन्हें लगा कि जनता पार्टी का विघटन अब दूर नहीं। उन्होंने जे० पी० से एक बयान दिलाया कि पूर्व दलों को पुनर्जीवित करना राष्ट्रीय विकल्प बनाने के अब तक के प्रयासों पर पानी फेरना होगा। जे०पी० ने प्रधानमंत्री को भी चौधरी चरण सिंह को मंत्रिमंडल वापस लेने को लिखा।

प्रधान मंत्री ने जे०पी० की सलाह नहीं मानी। चौधरी चरण सिंह ने संघीय दल बनाने का विचार छोड़ दिया और २२ दिसम्बर को संसद में अपने त्यागपत्र से सम्बन्धित बयान दिया। उसमें उन्होंने कहा कि ११ मार्च को कान्ति देसाई की जांच का मामला उन्होंने एक पत्र में उठाया था, तभी से प्रधान मंत्री उन्हें मंत्रिमंडल से बाहर करने का मौका ढूंढ रहे

थे। अपने बयान में उन्होंने जनता की अपेक्षाओं के मुताबिक श्रीमती गांधी के खिलाफ तत्परता से कड़ी कार्यवाही न करने का भी आरोप लगाया। प्रधान मंत्री ने अपने जवाब में आरोपों से इनकार किया। दूसरे दिन २३ दिसम्बर को चौधरी चरण सिंह के जन्म दिन पर किसानों का अभूतपूर्व समागम दिल्ली में हुआ। वहां उपस्थित अपार जनसमूह ने चौधरी साहब के मंत्रिमंडल से बाहर होने पर भारी आक्रोश प्रकट किया और उनसे नया दल गठित करने का आग्रह किया, लेकिन चौधरी साहब जनता पार्टी से अलग नहीं हुए। वह उसे तोड़ना कदापि नहीं चाहते थे।

चौधरी साहब को जनता पार्टी से अलग न होते देख कर उनके लोक दल के अनुयायियों ने समझौता के प्रयत्नों को दुबारा तेज किया। समझौता कराने वालों ने चौधरी साहब की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखने के लिए उन्हें उप–प्रधान मंत्री की हैसियत से मंत्रिमंडल में वापस लाने का सुझाव दिया। उनके जन्म दिन पर किसानों के अभूत–समागम का भी व्यापक प्रभाव पड़ा। प्रधान मंत्री सबको समझौते के पक्ष में देख कर कुछ नरम हुए। उन्होंने यह जरूर कहा कि चौधरी चरण सिंह का मंत्रिमंडल में लौटना निरापद नहीं होगा। यह उनके हठ की संकीर्णता थी। प्रधान मंत्री ने अपनी शर्तों फिर दोहरायी। गृह विभाग नहीं मिलेगा, श्री जगजीवन राम भी उप–प्रधान मंत्री होंगे और कान्ति देसाई के खिलाफ आरोपों को वापस लेना पड़ेगा। अब समझौता कराने वाले चौधरी चरण सिंह को तैयार कराने में जुटे। अन्ततः पार्टी की एकता के हित में चौधरी चरण सिंह २४ जनवरी १९७९ को को उप–प्रधान मंत्री के रूप में वित्त मंत्री बन कर मंत्रिमंडल में लौटे। उन्हीं दिन उन्होंने अपने एक बयान में कहा था कि श्री मोरार जी देसाई उनके नेता हैं और वे कभी उनके खिलाफ नहीं जायेंगे। उनके 'हनुमान' राजनारायण ने जैसा एक पत्रकार ने लिखा है, संजय गांधी से कहा, "कुर्सी की अति पड़ी है। क्या किया जाय?" अगर यह सच है, तो हनुमान ने मर्यादा का ध्यान कदापि नहीं रखा।

श्री राजनारायण वर्तमान भारतीय नेताओं में श्रीमती इंदिरा गांधी को वोट और न्यायालय दोनों में हराने के कारण बहुचर्चित नेता हैं। मूल रूप से वह लोहिया ग्रुप के समाजवादी थे। डॉक्टर लोहिया के बाद उस दल के एक ग्रुप के वह सबसे बड़े

नेता माने गये। हर कुशल नेता की तरह उनमें एक विलक्षण शक्ति है। वे जी जान से किसी की मदद भी करते हैं और बड़े से बड़े को उखाड़ भी सकते हैं। प्रधान मंत्री मोरार जी द्वारा अपनी अवहेलना पर वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। वे क्रुद्ध पहले से ही थे और मोरार जी भाई की सरकार को भंग करने की हर कोशिश कर रहे थे। चौधरी साहब के कारण उनकी चल नहीं रही

थी। संयोग से संजय गांधी उनसे मिलने आ गये।। श्रीमती इंदिरा गांधी को जांच आयोगों द्वारा प्रमाणित अभियोगों के खिलाफ बचाव की एक ही सूरत दिखायी पड़ रही थी– किसी तरह जनता पार्टी को भंग करना। वह जनता पार्टी के घटकों के आपसी तनाव से परिचित थीं। उनकी राय से ही उनके सुपुत्र श्री संजय गांधी राजनारायण से मिलने आये।

मुसीबत में, विचित्र विचित्र परस्पर विरोधी लोग एक साथ हो जाते हैं। श्री राजनारायण जैसा साफ सुथरा और निर्भीक व्यक्ति संजय गांधी जैसे चालू तथा अराजकता पसन्द व्यक्ति से सहयोग भी करे, यह आसानी से समझ में आने वाली बात नहीं। मगर वरूण सेन गुप्ता की किताब 'लास्ट डेज ऑफ मोरार जी राज' ने इस बारे में कोई संदेह नहीं रहने दिया है, श्री संजय गांधी ने हनुमान को जनता सरकार को जल्दी से जल्दी तोड़ कर गिराने का एक रास्ता बताया – जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के खिलाफ प्रगतिशील घटकों का ध्रुवीकरण। श्री मधु लिमये पहले से ही इसी नीति पर ध्रुवीकरण की चेष्टा कर रहे थे। श्री राजनारायण ने भी यह कौल उठा लिया। वे जनसंघ ग्रुप और श्री चन्द्रशेखर पर विष उगलने लगे। जनसंघ या राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने अखण्ड भारत के नारे के अलावा ऐसा क्या किया है कि उन्हें साम्प्रदायिक माना जाय? यह गंभीरता से पूछा जा सकता है कि क्या अल्पसंख्यक समुदाय भारत की अखण्डता नहीं चाहते, क्या वे भारत के प्रति निष्ठा से समर्पित नहीं हैं? श्रीमती इंदिरा गांधी तो जनसंघ को सोते जागते कोसती ही थीं, श्री मधु लिमये और श्री राजनारायण भी वही बेसुरा राग अलापने लगे। श्री मधु लिमये ने एक जगह कहा है कि वे इस नीति पर काम कर रहे थे कि सन् १९८२ के बाद जनता पार्टी को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ समर्थित लोगों पर निर्भर न होना पड़े। उन्होंने इतनी जल्दी नतीजा पाने की आशा नहीं की थी।

जो हो, जिस दिन चौधरी चरण सिंह ने उप–प्रधान मंत्री की हैसियत से मंत्रिमंडल में पुनः प्रवेश किया, उसी दिन उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री रामनरेश यादव ने चार कनिष्ठ मंत्रियों को अपने मंत्रिमंडल से अलग कर दिया। उनमें दो जनसंघ ग्रुप के थे। जनसंघ ग्रुप में कुहराम मच गया। उन्होंने चौधरी चरण सिंह से बात की। चौधरी साहब ने दखल नहीं दिया। प्रधान मंत्री ने उनसे कहा कि चौधरी साहब को वापस लाने का मजा उन्हें मिलता ही। अध्यक्ष चन्द्रशेखर ने मुख्यमंत्री से सीधे बात की। कोई नतीजा नहीं निकला। यहां बहुत उपयुक्त प्रश्न उठता है कि ऐसा क्या श्री राजनारायण के कारण हुआ या चौधरी चरण सिंह का इसमें इशारा था। श्री आडवाणी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि चौधरी साहब ने उनसे

स्वीकार किया मंत्री ने उनसे कतिपय अक्षम्य और कुख्यात मंत्रियों के हटाने की बात की थी। लेकिन चौधरी साहब ने उनसे कहा था कि दो भूतपूर्व जनसंघियों की जगह उन्हीं के ग्रुप के नये लोग लिये जायेंगे। श्री राम नरेश यादव वस्तुतः श्री राजनारायण के अन्यतम सहयोगी रह चुके थे। श्री राजनारायण की विशेष संस्तुति पर ही चौधरी चरण सिंह ने उन्हें उत्तर प्रदेश का मुख्य मंत्री बनाया था। क्या यह सम्भव नहीं हो हो सकता कि श्री राजनारायण के कारण ही जनसंघ के दो मंत्रियों को हटाने की बात श्री यादव ने चौधरी साहब से की हो?

उत्तर प्रदेश की उक्त कार्यवाही की प्रतिक्रिया न होती तभी आश्चर्य होता। जनसंघ ग्रुप के आठ मंत्रियों ने पार्टी के पास अपना इस्तीफा भेज दिया। मुख्य मंत्री ने उनका इस्तीफा सीधे मांगा। उन्होंने तब मुख्य मंत्री को नेता पद से हटाने की मांग की। मुख्य मंत्री ने राज्यपाल से उन्हें बर्खास्त करने की संस्तुति की। इस पर विधायक बिगड़े। विधायक दल की बैठक हुई। मुख्य मंत्री विश्वास प्राप्त करने में असफल रहे। उनके स्थान पर चौधरी चरण सिंह और श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा के सहयोग से श्री बनारसीदास नये नेता चुने गये। श्री बनारसी दास ने जो मंत्रिमंडल बनाया, उसमें एक भी भूतपूर्व जनसंघी को मंत्री नहीं रखा। यहां यह अमान्य नहीं किया जा सकता कि उप–प्रधान मंत्री चौधरी चरण सिंह की सहमति से ही ऐसा हुआ होगा। ऐसा करने का कारण समझ में नहीं आता। यही मानने को बाध्य होना पड़ता है कि यहां से चौधरी साहब ज्ञात अथवा अज्ञात भाव से ध्रुवीकरण का समर्थन करने लगे।

इसकी प्रतिक्रिया दूसरे राज्यों में हुई। बिहार में भूतपूर्व भारतीय लोक दल के कर्पूरी ठाकुर पर अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर श्री राम सुन्दर दास को जो समाजवादी थे और संगठन कांग्रेस में रह चुके थे, नया नेता और मुख्य मंत्री निर्वाचित किया गया। राजस्थान, मध्य प्रदेश और हिमाचल प्रदेश में जनसंघियों को अपदस्थ करने की मांग लोक दल ने नहीं उठायी। हरियाणा में चौधरी देवी लाल को अपदस्थ करने में देर लगी। छः महीने बाद उनके स्थान पर श्री भजन लाल नेता चुने गये। जनता पार्टी के विघटन की प्रक्रिया शुरू हो गयी। अध्यक्ष चन्द्रशेखर भी अपने को सुरक्षित रखने के लिए कभी इधर, कभी उधर से अपना दांव लगाते रहे। पार्टी को समन्वित रखने की क्षमता उनकी थी नहीं।

इन्हीं दिनों देवराज अर्स और श्रीमती इंदिरा गांधी में बिगाड़ हो गया, जिससे में जा अर्स ग्रुप के कर्नाटक राज्य के ग्यारह संसद सदस्य श्री चव्हाण वाले कांग्रेस गुट मिले। इसका प्रभाव संसद में पड़ा। श्री चव्हाण

का दल इंदिरा कांग्रेस की जगह मुख्य विरोधी दल बन गया। श्री मधु लिमये के लिए यह मनचाहा हुआ।

चौधरी चरण सिंह निस्संदेह इन घटनाओं के क्रम से अपरिचित नहीं थे। लेकिन वे उस जनता पार्टी को, जिसको बनाने में उन्होंने कितना परिश्रम किया था, विघटित कदापि नहीं करना चाहते थे। प्रधानमंत्री और पार्टी के अध्यक्ष ने उनको और उनके ग्रुप को कमजोर करने के लिए जो कुछ किया था, उससे क्षुब्ध जरूर थे। उन्हें यह भी मालूम था कि प्रधान मंत्री और पार्टी अध्यक्ष विभिन्न घटकों में समानुपात और समन्वय बनाये रखने में सर्वथा असमर्थ हैं। लेकिन उन्हें यह भी मालूम था कि जनता पार्टी अगर टूटी तो इंका का विकल्प समाप्त हो जायेगा।

श्रीमती इंदिरा गांधी और संजय गांधी जनता पार्टी को तहस–नहस करने के लिए अपनी कोशिश कर ही रहे थे। राजनारायण अपने प्रति किये गये अपमान का बदला चुकाने के लिए मोरार जी भाई को पदच्युत करने के लिए कृत संकल्प थे। पहले वे जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के खिलाफ ही विष वमन करते थे, अब उन्होंने जनता पार्टी पर आक्रमण शुरू कर दिया। जनता पार्टी ने उन्हें अपनी कार्य समिति से १२ जून १९७९ को एक वर्ष के लिए निष्कासित कर दिया। उन्होंने पार्टी से इस्तीफा दे दिया और पार्टी के विरुद्ध धुंआधार प्रचार में जुट गये।

जनता की आन्तरिक कलह पर श्रीमती इंदिरा गांधी और संजय गांधी अपना खेल तेजी से खेलने लगे। चौधरी चरण सिंह को वे जानते थे। उन्हें मालूम था कि चौधरी चरण सिंह किसी हालत में भ्रष्टाचार को नहीं सह सकते। चौधरी चरण सिंह को जवाहर लाल नेहरू से यह बड़ी शिकायत थी कि वे भ्रष्टाचार को जान कर भी क्रोध से उबल नहीं आते थे। श्रीमती गांधी ने अपने सुपुत्र संजय गांधी द्वारा चौधरी साहब की उक्त कमजोरी का लाभ उठाया। श्री संजय गांधी की सास के एक मित्र श्री बाला सुब्रह्मण्यम थे। वह कांति देसाई के भी मित्र थे। श्री बाला सुब्रह्मण्यम।। विदेशी और स्वदेशी बड़े औद्योगिक संस्थानों का अपने सम्पर्क या सिफारिश से काम कराया करते थे। काम कराने के बदले वे संबंधित फर्मों से कमीशन उगाहते थे। उसमें कांति देसाई का भी हिस्सा बताया जाता था। मनमाना पैसा कमाने के लिए वे घटिया से घटिया तरीका भी बिना हिचक अपना लेते थे। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। उन्हें पता चला कि आपातकाल में बड़े–बड़े तस्करी धन्धे वालों को गिरफ्तार करने के वारंट जारी हुए थे, जो बाद में रद्द भी हो चुके थे। संबंधित कितने तस्कर हिन्दुस्तान से बाहर भाग कर दूसरे देशों में रह रहे थे। उन्होंने ऐसे तस्करों की सूची प्राप्त की, विदेशों में उनसे सम्पर्क

स्थापित किया और लाखों नहीं करोड़ों लेकर उन्हें भारत लौटने को इस आश्वासन से प्रेरित किया कि वे उनके विरुद्ध जारी वारंट को श्री कांति देसाई के माध्यम से रद्द करा देंगे। वारंट तो पहले ही रद्द हो चुके थे। श्री बाला सुब्रह्मण्यम ने इस तरह बेहद धन कमाया। उसमें किस–किसका हिस्सा था, इस बात का अनुमान ही लगाया जा सकता है।

बाला सुब्रह्मण्यम कांति देसाई के जरिए मोरार जी भाई का भी सुपरिचित था। करीब अस्सी लाख का चंदा श्री कांति देसाई ने जनता पार्टी के लिए एक अल्प अवधि में इकट्ठा किया था। उतनी बड़ी धनराशि किन–किन सूत्रों से आयी थी, इसका पता जनता पार्टी के कोषाध्यक्ष श्री चन्द्रभान गुप्त को भी नहीं था। श्री मधु लिमये ने इस बारे में पार्टी में सवाल उठाया था। अनुमान है कि बाला सुब्रह्मण्यम के माध्यम से ही इतनी बड़ी रकम की वसूली सम्भव थी। श्री बाला सुब्रह्मण्यम अगाध धनी जरूर था। वह बेहद खर्चीली आदत का भी था, जिससे हमेशा उसे धन उगाहने की जरूरत पड़ी रहती थी। वह दिल्ली में जिस फ्लैट में रहता था, उसके नीचे वाले फ्लैट में संजय गांधी की सास श्रीमती अमितेश्वरी आनंद रहती थीं। दोनों की घनिष्ठता थी।

बाला सुब्रह्मण्यम का निजी सहायक एक कल्याणम् था। वह भी पहले मोरार जी भाई के साथ सहायक के रूप में काम कर चुका था। संजय गांधी ने इस कल्याणम् को चौधरी चरण सिंह से मिलने भेजा या भिजवा दिया। बाला और कल्याणम् में अनबन हो गयी थी।

कल्याणम् ने बाला और कांति के विदेशी और स्वदेशी व्यावसायिक कारनामों की सूचना चौधरी साहब को दी। उसने यह भी बताया कि बाला सुब्रह्मण्यम प्रधान मंत्री की रूस और यूरोपीय देशों की यात्रा पर उनके दल के साथ गया था। वहां से प्रधान मंत्री के सामान का लेबिल अपने ट्रंकों पर चिपका कर वह कुछ ऐसे दूर संचरण के अति आधुनिक उपकरण भारत लाया था, जो बिना सरकारी स्वीकृति के देश में आ ही नहीं सकते। वित्त विभाग ने कल्याणम् की सूचना की यथासम्भव तसदीक करा कर बाला सुब्रह्मण्यम के निवास की 4 जून को तलाशी करायी। कुछ संदेहास्पद कागजों के अलावा वहां कुछ भी नहीं मिला। बाला सुब्रह्मण्यम के आवास के नीचे वाले फ्लैट में श्रीमती अमितेश्वरी आनंद के फ्लैट की भी तलाशी ली गयी। वहां भी कुछ नहीं मिला। आगे जांच पड़ताल के लिए रिपोर्ट दर्ज करा दी गयी। उधर श्रीमती अमितेश्वरी आनंद ने प्रधान मंत्री को तलाशी की शिकायत लिख भेजी। बाला को उन्हीं दिनों किसी रोग के उपचार के लिए जर्मनी जाना था। उसने जाने की इजाजत मांगी। वह इनकार हो गयी। तब वह प्रधान मंत्री के पास पहुंचा। उन्होंने

भी इनकार किया। वह बाला पर बहुत बिगड़े भी। शायद उन्हें बाला के अवैध धंधों के बारे में जानकारी नहीं थी और यह भी नहीं मालूम था कि कांति देसाई का भी उसके लाभांश में हिस्सा है। बाला प्रधान मंत्री से कुपित हो कर वकीलों के पास भागा। कानूनी सलाह पर उसने शपथ पत्र दाखिल किया। उस शपथ पत्र का टेप हुआ। बाला अपनी चाल या अपने शुभेच्छुओं की साजिश से नेपाल के रास्ते देश छोड़ गया।

श्री राजनारायण को इसका पता चला। उन्होंने टेप की प्रतिलिपियां और दस्तावेजों की फोटो कापी रातों–रात जनता तथा विरोधी दलों के प्रमुखों के पास पहुंचा दी। उसमें जर्मनी की एक कम्पनी से प्राप्त दस्तावेज भी थे। वित्त मंत्रालय तथा विरोधी सदस्यों में हंगामा मच गया। संसद के वर्षाकालीन सत्र में प्रधान मंत्री की मुसीबत सुनिश्चित हो गयी।

चौधरी चरण सिंह भ्रष्टाचार के खिलाफ ऐसे गरम हो जाते थे, जैसे बालक खिलौना पकड़ने के लिए लपकता है। उच्च स्तरीय भ्रष्टाचार को पकड़ने का कोई मौका चूकना नहीं चाहते। श्रीमती इंदिरा गांधी के नये मकान में उन्होंने इसीलिए गृहमंत्री के रूप में तलाशी करायी थी। कांति के मामले में वे बाला सुब्रह्मण्यम को बख्श ही नहीं सकते थे। उन्होंने प्रधान मंत्री श्री मोरार जी भाई देसाई के पास टेप और दस्तावेजों की प्रतियां तत्क्षण भेज दी। प्रधान मंत्री ने उनपर समुचित कार्यवाही करने का आदेश देकर उन्हें लौटा दिया। इस बयान और दस्तावेजों से प्रधान मंत्री का वह बयान झूठा पड़ जाता था, जो उन्होंने कई बार दिया था कि कांति देसाई कोई व्यापार नहीं करते। कांति देसाई पहले भी 'बाम्बे इण्डस्ट्री और केमिकल कम्पनी' नाम से व्यापार कर चुके थे, जिसमें परिवार के लोग ही हिस्सेदार थे।

चौधरी चरण सिंह का उपर्युक्त काण्ड में प्रधान मंत्री श्री देसाई को उनके पुत्र कांति देसाई का सही रूप दिखाना तथा उसे उच्च स्तरीय भ्रष्टाचार का भण्डा–फोड़ करना ही उद्देश्य रहा होगा। मगर विवाद बढ़ गया। विरोधी दल और श्रीमती इंदिरा गांधी को एक नया हथियार अनायास मिल गया।

२३ जून को जनता पार्टी की सदस्यता से इस्तीफा देने के बाद श्री राजनारायण ने दिल्ली की एक पत्रिका से साक्षत्कार में यह कहा था कि वे एक नयी जनता पार्टी बनाने का विचार कर रहे हैं, जिसको चौधरी चरण सिंह का सहयोग प्राप्त है। चौधरी साहब ने तत्काल इसका जोरदार खंडन किया। उन्होंने जनता पार्टी को छोड़ा भी नहीं। लेकिन जब तक वे कुछ करें, एक नयी स्थिति उत्पन्न हो गयी।

श्री चव्हाण ने जो अब विरोधी दल के नेता थे, ९ अगस्त को मोरार

जी देसाई मंत्रिमंडल पर अविश्वास का प्रस्ताव लोक सभा को भेज दिया। उसी दिन श्री राजनारायण ने अपना नया दल, जनता (एस) बनाने की घोषणा कर दी। चौधरी चरण सिंह इससे बिलकुल अनभिज्ञ थे। उनकी फाइलों, कागज–पत्रों में मुझे कुछ ऐसा नहीं मिला, जिससे यह प्रकारान्तर से भी साबित हो कि जनता (एस) के गठन में उनका इशारा भी था।

१० जुलाई को श्री राजनारायण के निकट के, लोहिया दल वाले सहयोगी, जो भारतीय लोक दल में शामिल हो चुके थे, जनता पार्टी छोड़ कर जनता (एस) में आ गये। ११ जुलाई तक वह संख्या २५ हो गयी। अब श्री मधु लिमये के साथ श्री बहुगुणा भी मोरार जी देसाई की सरकार के खिलाफ बहुत सक्रिय हो गये। उनकी योजना थी कि जनसंघ को अलग कर जनता पार्टी का नया गठन हो। श्री चन्द्रशेखर ने अब समझौता कराने की कोशिश की। १३ जुलाई को उनके यहां एक बैठक हुई, जिसमें सभी दलों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। उस बैठक में भारतीय लोकदल के सदस्यों ने नेतृत्व परिवर्तन की मांग की। उसी दिन श्री अटल बिहारी वाजपेयी और जार्ज फर्नाण्डिस ने मोरार जी से नेता पद त्यागने के लिए बहुत जोर दिया। मोरार जी ने साफ इन्कार कर दिया, क्योंकि उनकी दृष्टि में बाला सुब्रह्मण्यम काण्ड में कोई महत्त्व की बात नहीं थी, न ही उन्हें बहुमत खोने का डर था। उस बैठक में श्री देसाई के स्थान पर बाबू जगजीवन राम को नया नेता बनाने का कइयों ने दिया। श्री श्री मधु लिमये की राय चौधरी चरण सिंह को नेता बनाने की थी। सुझाव संगठन कांग्रेस मोरार जी के साथ पूरी तरह थी। उन्होंने इसीलिए नेता पद से न हटने का कड़ा रुख अपना लिया। श्री मधु लिमये को छोड़ कर दूसरे समाजवादी नेता बाबू जगजीवन राम के पक्ष में थे। जनसंघ भी उधर झुका। फिर भी प्रधान मंत्री श्री देसाई टस से मस नहीं हुए। श्री देसाई अगर उस समय नेता पद छोड़ने को तैयार हो जाते, तो शायद जनता पार्टी बच गयी होती। उनका हठवाद यहां भी तीव्र रहा।

श्री देसाई के रुख से नाराज होकर उतना नहीं, जितना नये ध्रुवीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए श्री बहुगुणा और श्री जार्ज फर्नाण्डिस ने मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। लोग चौकन्ने हुए। जार्ज ने जिस शाम इस्तीफा दिया, उसी दिन उन्होंने अविश्वास के प्रस्ताव का संसद में इतना तर्कपूर्ण और जोरदार विरोध किया था कि ऐसा लगा अविश्वास प्रस्ताव निस्संदेह फेल हो जायेगा। मगर श्री मधु लिमये का चक्र भी उतनी ही तेजी से चला और जार्ज ने इस्तीफा दे ही दिया। उसी दिन कम्युनिस्ट (मार्क्सवादी) दल ने भी अविश्वास प्रस्ताव का समर्थन करने का अपना निश्चय प्रकट किया। स्थिति की गम्भीरता अब प्रधानमंत्री

पर पूरी तरह प्रकट हुई। उन्होंने १५ जुलाई को राष्ट्रपति को अपना और अपने मंत्रिमंडल का इस्तीफा भेज दिया। इस्तीफा भेजने का कारण कानूनी राय थी कि अगर वे फिर बहुमत बना सके, तो राष्ट्रपति उन्हें दुबारा सरकार बनाने के लिए आमंत्रित कर सकेंगे। अविश्वास का प्रस्ताव पारित हो जाने पर उन्हें बुलाना सम्भव नहीं होगा।

चौधरी चरण सिंह अभी भी जनता पार्टी में थे। मोरार जी भाई और श्री अडवाणी कुछ भी क्यों न कहें, चौधरी चरण सिंह राजघाट के शपथ में उपस्थित न होते हुए भी उस शपथ की रक्षा करते रहे। श्री मधु लिमये तथा श्री राजनारायण के नकारात्मक रवैये के लिए वे कदापि जिम्मेदार नहीं थे। श्री राजनारायण के एक बयान का कि चौधरी साहब अन्दर से और वे बाहर रहकर जनता सरकार को भंग करेंगे, कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं। चौधरी साहब ने श्री राजनारायण के बयान का जोरदार प्रतिवाद भी किया था। मैंने इस बिन्दु पर बड़ी गम्भीरता से फाइलों, कागज–पत्रों और तत्कालीन खबरों में खोजबीन की है। मुझे कोई शक नहीं कि श्री राजनारायण ने अपने बयान में चौधरी साहब को अपना प्रभाव जमाने के लिए तथा आतंक फैलाने के लिए सान लिया था। चौधरी साहब की इतनी चूक मानी जा सकती है कि उन्होंने श्री राजनारायण और श्री मधु लिमये को नियंत्रित नहीं किया। लेकिन क्या वे उन्हें नियंत्रित कर भी सकते थे, या मोरार जी देसाई के अहम् और हठवादिता से वे उनका नेता पद से हट जाना ही जनता के हित में मानते थे। जो हो, जनता पार्टी के टूटने की पूरी जिम्मेदारी उसमें व्याप्त तेज घटकवाद, प्रधानमंत्री श्री देसाई की घटकों में समन्वय न रखने की अक्षमता तथा पार्टी अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर की अवसर के अनुसार पैंतरेबाजी को ही माना जाएगा। श्री मधु लिमये की ध्रुवीकरण की योजना और श्री राजनारायण का इन्तकाम (बदला) भी बहुत निकृष्ट था, लेकिन चौधरी चरण सिंह ने जनता पार्टी के टूट जाने तक कोई ऐसा कदम नहीं उठाया, जिससे उन पर यह दोष मढ़ा जा सके। उनके प्रति तो घटकों ने अन्याय किया, क्योंकि मोरार जी देसाई के बाद वे बाबू जगजीवन राम को नेता बनाना चाह रहे थे। यह उनका सरासर अपमान था। वे उम्र में बाबू जगजीवन राम से बड़े थे, मंत्रिमंडल में नम्बर दो पर थे, उन्होंने जनता पार्टी का निर्माण किया था, जबकि श्री जगजीवन राम ने आपातकाल लागू करने का प्रस्ताव पेश किया था और ७ महीने से अधिक समय तक मंत्री भी बने रहे। श्री अडवाणी का निष्कर्ष कि चौधरी चरण सिंह ने जनता से अपनी दुराकांक्षा के कारण विश्वासघात किया, उनका दृष्टिदोष ही नहीं, उनका घृणित प्रचार था। बाद में श्री अडवाणी और उनका दल चौधरी चरण सिंह का सहारा लेकर रहा।

चौधरी साहब के साथ शुरू से ही जो अन्याय हुआ था, उससे लोक दल ग्रुप निस्संदेह तभी से क्षुब्ध था। जब कम्युनिस्ट (एम०) और दूसरे दलों के अधिकांश सदस्य बिना शर्त उन्हें समर्थन देने को तैयार हो गये थे, तब उनके समर्थक उनके पास इस अनुरोध के साथ आये कि वह जनता (एस) का नेतृत्व करना स्वीकार करें। चौधरी चरण सिंह ने तब भी कहा कि मुझे नहीं मालूम कि आप लोग मुझसे क्या कराना चाहते हैं, लेकिन पुराने सहयोगियों का आग्रह इतना तीव्र था और परिस्थितियां इस तेजी से बदलीं कि उन्हें अन्ततः अन्य दलों के आग्रह पर विचार ने वक्तव्य करना पड़ा। जैसे ही उन्होंने विचार करने की सहमति दी, उनको अनुमान दे दिया कि चौधरी चरण सिंह जनता (एस) का नेतृत्व करने को तैयार हो गये थे।

१८ जुलाई को राष्ट्रपति ने कांग्रेस (एस) के नेता श्री चह्वाण को सरकार बनाने के लिए निमंत्रित किया। २२ जुलाई को चह्वाण ने सरकार बनाने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। इधर मोरार जी भाई नेता पद छोड़ने लिए अब भी तैयार नहीं थे। उन्होंने २२ जुलाई को श्री जगजीवन राम से यह समझौता किया कि अगर वे सरकार बनाने के अपने प्रयास में विफल हो जाने की स्थिति में आयेंगे, तब तत्काल श्री जगजीवन राम के पक्ष में नेता पद छोड़ देंगे। उधर ध्रूवीकरण वाले लोग जिनमें मधु लिमये, राजनारायण और सर्वश्री बहुगुणा प्रमुख थे, जनता (एस) का बहुमत बनाने में जुटे। समाचार पत्रों के अनुसार २३ जुलाई की यह स्थिति थी कि न मोरार जी न ही चौधरी चरण सिंह बहुमत जुटा पा रहे थे। अचानक राष्ट्रपति भवन से दोनों से अपनी–अपनी लिस्ट एक ही समय भेजने की मांग आयी। यह चौंकाने वाली बात थी। राष्ट्रपति को जैसे उन्होंने श्री चह्वाण को बुलाया था, वैसे ही पहले चौधरी चरण सिंह को बुलाना चाहिए था। श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपनी कुटिलता यहां प्रदर्शित की। उन्होंने चौधरी चरण सिंह का बिना शर्त समर्थन का वक्तव्य समाचार पत्रों में प्रकाशित कराया। उनका एकमात्र ध्येय जनता पार्टी को पुनर्जीवित न होने देना था। पहले वह चाहती थीं कि चौधरी चरण सिंह उनसे मिल कर या टेलीफोन से बात कर समर्थन का अनुरोध करें। चौधरी साहब ने ऐसा करने से कड़ाई से इन्कार कर दिया। तब उन्होंने अपने दल द्वारा चौधरी चरण सिंह के समर्थन का वक्तव्य जारी कर दिया।

२५ जुलाई को दोनों नेताओं ने २८० संसद सदस्यों की अलग–अलग लिस्ट राष्ट्रपति को भेजी। श्री राजनारायण के अनुसार जनता (एस) की लिस्ट में जनता (एस) के ९२, समाजवादी १५, कांग्रेस ७५, इंका – ७३, कम्युनिस्ट दल ७, मुस्लिम लीग २, आर० एस० पी० १, अकाली दल –

तथा पी० डब्लू० पी० ७ थे। जनता पार्टी की लिस्ट में उनके सदस्यों के अलावा ए० आई० डी० एम० के० के 18, यू० पी० एफ० के ११ और अन्य ३२ थे। अन्य में कांग्रेस के १५ सांसद थे। इन पन्द्रह श्री देवराज अर्स ने विरोध के पत्र प्राप्त कर राष्ट्रपति को भेज दिये। इससे जनता (एस) की लिस्ट बहुसंख्यक साबित हुई। जनता पार्टी की लिस्ट में गलत नामों से पार्टी को बड़ा धक्का लगा। मोरार जी देसाई को गलत नाम लिस्ट में देने पर अपने सहयोगियों से बहुत आक्रोश हुआ। उन्होंने अब अपने दल के नेता पद से इस्तीफा दे दिया।

राष्ट्रपति ने चौधरी चरण सिंह को सरकार बनाने के लिए २६ जुलाई १९७९ को आमंत्रित किया। श्रीमती इंदिरा गांधी ने चौधरी साहब को टेलीफोन पर मुबारकबाद दिया। लेकिन मां और बेटे ने उसी दिन चौधरी सरकार को भंग करने का निश्चय भी कर लिया। इसका कारण यह था कि अपने अनुयायियों के बहुत कहने पर भी चौधरी साहब श्रीमती इंदिरा गांधी को समर्थन के लिए धन्यवाद देने उनके यहां नहीं गये। श्रीमती गांधी ने श्री भीष्म नारायण सिंह को जगजीवन राम के पास उसी दिन भेजा। उनकी घंटे भर बातें हुई।

२८ जुलाई को नये मंत्रिमंडल के शपथ समारोह का इंका ने बायकाट किया। पत्रकारों को सम्बोधित करते हुए इंका के संसदीय दल के नेता श्री सो० एम० स्टीफन ने एक महा कुटिल बात कही कि इंका ने चौधरी चरण सिंह को केवल सरकार बनाने के लिए समर्थन का वादा किया था। वह बात अब पूरी हो गयी। नयी सरकार ने इसी दुविधा में अपना कार्यकाल आरम्भ किया।

राष्ट्रपति ने चौधरी चरण सिंह को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करते हुए यह शर्त लगा दी थी कि महीने भर के भीतर वे संसद में अपना बहुमत प्रमाणित करेंगे। नये मंत्रिमंडल ने २० अगस्त को संसद की बैठक बुलायी। उसमें विश्वास का प्रस्ताव भी प्रस्तुत होता। श्रीमती इंदिरा गांधी जैसा संजय गांधी के विश्वस्त श्री कमलनाथ की डायरी से प्रकट हुआ, यह चाहती थीं कि उनके आपातकालीन अपराधों के लिए बनायी गयी गई स्पेशल कोर्ट रद्द कर दी जाय और संजय गांधी का मुकदमा उच्चतम न्यायालय से हटा कर दिल्ली के उच्च न्यायालय में भेज दिया जाय। चौधरी चरण सिंह ने अपने निकटतम अनुयायियों को भी ऐसा करने की सलाह को साफ–साफ इंकार कर दिया। इंका ने तब २० अगस्त को सवेरे चौधरी सरकार का समर्थन नहीं करने का प्रस्ताव पारित कर दिया। चौधरी चरण सिंह ने राष्ट्रपति को अपनी सरकार का इस्तीफा तत्क्षण भेज दिया। उन्होंने संसद के समक्ष जाना समीचीन नहीं समझा।

जनता पार्टी के नये नेता बाबू जगजीवन राम ने तत्काल राष्ट्रपति से मिल कर सरकार बनाने का दावा किया। इस परिस्थिति में जनता (एस), ए० आई० डी० एम० के०, सी० पी० आई०, सी० पी० आई० (एम), ने लोक सभा को भंग करने की मांग की। वह भंग नहीं की गयी होती, अगर इंका बाबू जगजीवन राम का समर्थन करती। इंका समर्थन इस शर्त पर देना चाहती थी कि बाबू जगजीवन राम तीन महीने में चुनाव कराने की घोषणा करें। वह चौधरी चरण सिंह की काम चलाऊ सरकार के तत्त्वावधान में चुनाव नहीं कराना चाहती थी। लेकिन बाबू जगजीवन राम ने ऐसा आश्वासन देने से इन्कार कर दिया। उन्हें बहुमत पा लेने का पूरा भरोसा था। बाइस (२२) अगस्त को जनता पार्टी का अष्टग्रह हर तरफ से पूरा उदय हो आया। अध्यक्ष चन्द्रशेखर और बाबू जगजीवन राम राष्ट्रपति से सवेरे मिले और उन्हें आश्वासन दे आये कि अपने समर्थकों की पूरी सूची शाम तक उनके पास भेज देंगे। राष्ट्रपति ने उनसे कहा कि उन्हें कोई जल्दी नहीं है। उनके राष्ट्रपति भवन छोड़ने के कुछ ही घंटों में राष्ट्रपति ने लोक सभा को भंग कर मध्यावधि चुनाव की घोषणा कर दी।

देश के सर्वोच्च पदाधिकारी ने अपने आश्वासन को क्यों नहीं निभाया, उसे इन पृष्ठों में जांचना निरर्थक है। देश के सर्वमान्य कानून विशेषज्ञों और राजनीति विशारदों की राय एकमत थी कि राष्ट्रपति को बाबू जगजीवन राम को अपनी सूची भेजने के लिए पर्याप्त समय देना चाहिए था। राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने की बात भी उठी। लेकिन राष्ट्रपति जो कर चुके थे, उसे अमान्य करने का तरीका नहीं था। जनता पार्टी टूट गयी, जनता (एस) टूट गयी और मध्यावधि चुनावों में जो कदापि नहीं होना चाहिए था, वह हुआ। देश पर अकारण आपात स्थिति थोंप कर ऐतिहासिक कलंक लगाने वाली श्रीमती इंदिरा गांधी की कांग्रेस भारी बहुमत से चुन कर सत्ता में आ गयी। यह निस्संदेह जनता पार्टी की आपसी फूट का परिणाम था।

सारे देश को उसके लिए हार्दिक पश्चात्ताप हुआ, क्योंकि श्रीमती गांधी का स्वभाव बढ़ती उम्र में बदल ही नहीं सकता। देश उनकी नीति और उनके तरीकों के कारण अराजकता और विघटन के कगार पर खड़ा था। विरोधी दल तब भी एकजुट नहीं थे। देश नहीं सबका स्वार्थ सर्वोपरि है।

उपर्युक्त साक्ष्य से यह प्रमाणित था कि जनता पार्टी को तोड़ने की मुख्य जिम्मेदारी प्रधानमंत्री श्री मोरार जी देसाई के विकट अहम् तथा जनता के संगठन के अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर की अवसरवादिता की हुई। वे दोनों पार्टी के घटकवाद को नियंत्रित रख पाने के सर्वथा अयोग्य थे

और ईर्ष्याविश भारतीय लोक दल को कमजोर करने पर तुले हुए थे। श्री मधु लिमये अपनी नकारात्मक राजनीति के लिए अपने पूरे जीवन प्रसिद्ध रहे हैं। आखिर जनसंघ या राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने देश के साथ क्या विश्वासघात किया था कि वे उन्हें जनता पार्टी से निकाल बाहर करना चाहते थे। वे अपनी आदत से मजबूर होकर ध्रुवीकरण की चेष्टा कर रहे थे। इस तरह जाने–अनजाने वे श्रीमती इंदिरा गांधी का खेल खेल रहे थे। श्रीमती गांधी ने सन् सड़सठ के चुनावों के, जिसमें विरोधी दल ने बहुमत पा कर आठ राज्यों में संयुक्त विधायक दल बनाया, बाद से ही जनसंघ का हौवा हल्ला खड़ा करना शुरू कर दिया था। उनको अल्पमत का अपना वोट बैंक बनाना था। श्री मधु लिमये का क्या उद्देश्य था? अगर कोई उद्देश्य था भी तो उन्होंने जनता पार्टी के संगठन के समय ही जनसंघ को पार्टी से बाहर रखने की आवाज क्यों नहीं उठायी?

श्री राजनारायण स्पष्टतः ही बदला लेने (इन्तकाम) की भावना से ग्रसित थे। उनका कहना था कि वे मंत्रिमंडल में शुरू में ही शामिल नहीं हो रहे थे। दावा रहा कि उन जैसे सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि और स्वतंत्र विचारक के लिए शासन तंत्र का सदस्य बनने का समय नहीं आया था। उन्हें, उनका कहना है, मोरार जी भाई ने विवश कर मंत्रिमंडल का सदस्य बनाया। इसके लिए श्री देसाई ने उन पर उनके दीक्षा गुरु से भी जोर डलवाया। उनको मंत्रिमंडल में दुबारा न लेना उनका अपमान था। उद्देश्य भी ओछा था कि इस तरह चौधरी चरण सिंह कमजोर हो जायेंगे। श्री बरुण सेन गुप्ता ने अपनी 'लास्ट डेज आफ मोरार जी' में यह साफ–साफ अंकित किया है।

परिस्थितियों का खेल कोई जान नहीं पाता। एक ही चौराहे से गलत रास्ता भी पकड़ा जा सकता है और सही भी। चौधरी चरण सिंह को परिस्थितियों ने आक्रान्त जरूर किया। लेकिन बहुत खोजबीन पर भी कोई ऐसा साक्ष्य नही मिलता, जिससे उनको जिस पार्टी को उन्होंने अथक परिश्रम से बनाया, उसे भंग करने का दोषी ठहराया जाय। वे अन्त तक जनता पार्टी में बने रहे। उनका दोष उनकी नैतिक आस्था की गरिमा ही मानी जा सकती है, जिसके कारण उन्होंने कांति देसाई के भ्रष्टाचार के सत्यासत्य को जांचने पर जोर दिया। वह जनता सरकार की छवि को हर संदेह से ऊपर रखना चाहते थे। उन दिनों की आम धारणा थी कि अध्यक्ष चन्द्रशेखर ही नहीं, प्रधान मंत्री श्री देसाई भी पूंजीवादी परम्परा और उससे उत्पन्न भ्रष्टाचार के उसी प्रकार पोषक थे, जैसे इंदिरा कांग्रेस के शीर्षस्थ नेता। चौधरी साहब से चूक तब हुई जब जनता सरकार के विघटन के बाद जनता (एस) के नेता के रूप में उन्होंने श्रीमती इंदिरा

गांधी जैसे व्यक्ति के समर्थन का विश्वास किया। श्रीमती गांधी सन् 1967 से ही चौधरी चरण सिंह के खिलाफ हिटलर के प्रचार मंत्री डाक्टर गोएबल्स की तरह सोते जागते विष वमन कर रही थीं कि उन्होंने कांग्रेस मुख्यमंत्री बनने के लिए छोड़ी, जबकि सत्य यह है कि कांग्रेस छोड़ने के पहले उन्होंने श्रीमती गांधी का मुख्यमंत्री बनने का अनुरोध ठुकरा दिया था। महान व्यक्ति को क्षुद्र विरोधियों का कोप सहना पड़ता है।

राजनीतिज्ञों को, विशेषकर मौजूदा हिन्दुस्तान के, गिरगिट की उपमा दी जाती है। चौधरी चरण सिंह निस्संदेह इसके ज्वलंत अपवाद थे। वह साफ, सच्ची और नैतिकवादी राजनीति के समर्थक थे। उनका एक विश्वास था कि भारत के बहुसंख्यक शोषित ग्रामवासियों के दैन्य को गांधीवादी नीतियों से ही मिटाया जा सकता है। उनका यह भी विश्वास था कि उस नीति को सबसे अच्छा वही कार्यान्वित कर सकते हैं। इस परम शुभ अहम् की ईर्ष्या का उन्हें शिकार होना पड़ा। उनके विरोधियों ने आधार प्रचार किया कि जनता पार्टी उनकी महत्त्वाकांक्षा के कारण टूटी। उपर्युक्त विवरण और घटनाक्रम से यह स्पष्ट है कि जनता पार्टी के विघटन में उनकी जिम्मेदारी किंचित् मात्र भी नहीं। सत्य का स्वरूप हमेशा देखने वाले की दृष्टि, दिशा और दूरी पर निर्भर करता है।

अध्याय १२

आने वाला कल

एक साधारण किसान का बेटा अपनी कर्मठता और बौद्धिकता के बल पर गांव की संकरी पगडंडियों और खेतों की मेड़ों पर एकाकी चल कर अपने राज्य तथा देश के राजपथ पर सधे डगों से मुख्य मंत्री के आसन पर बैठा तथा हिन्दुस्तान का प्रधान मंत्री भी बना। फिर भी उनका किसान का सीधा सच्चा रूप अक्षुण्ण रहा। इस असाधारण शौर्य और उत्कर्ष पर बड़े से बड़े रीझ कर भी ईर्ष्याविश उसका हर मोड़ पर विरोध करते रहे। किसी भाव भी भारत के अपरिग्रह की प्राचीन परम्परा में पगी उस प्रतिभा को वे समादृत नहीं होने देना चाहते थे। लेकिन पुष्पराज का सौरभ लाख कौशल से भी क्या कभी मिटा है? वह विशिष्ट प्रतिभा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आह्वान की रूप थी। उसे अमान्य कर भी कोई भूल नहीं सका। वह बापू के संदेश की तरह नगर–नगर, गांव–गांव गूंजी। बापू भारत को राजनैतिक स्वतंत्रता के साथ–साथ आर्थिक स्वतंत्रता दिलाना चाहते थे। राजनैतिक स्वतंत्रता दिला कर ही वह चले गये। आर्थिक स्वतंत्रता लाने के प्रयत्न का भार उठाया उस किसान के बेटे ने, जिसने महात्मा गांधी का केवल दूर से दर्शन किया था और उनका भाषण सुना था, उनके साहचर्य में कभी नहीं रहा था। बापू के बाहर–भीतर की एकरस पवित्रता के सिद्धान्त को उसने अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारंभ में ही अपनाया। उससे तप कर वह ईर्ष्यालु विरोधियों की दुरभिसंधि के बाद भी देश के सर्वोच्च पद पर अथाह – अथाह दरिद्रनारायण की सेवा में समर्पित परम शुभ जाज्वल्यमय नक्षत्र सा चमका। शुभ का विरोधी अशुभ होता है। अशुभ ने कुचक्र किया, जिससे शुभ पर ग्रहण जल्दी लग गया। लेकिन बापू का सपना कि इस सदियों के शोषित देश का प्रधान मंत्री एक किसान और मजदूर हो, निस्संदेह सच होगा। क्योंकि वही आर्थिक स्वतंत्रता के सपने को सच कर सकता है।

उसने जहां–जहां काम किया, अपने लक्ष्य को आंखों से ओझल नहीं होने दिया। उत्तर प्रदेश का जमींदारी उन्मूलन विधेयक उसका कनिष्ठ मंत्री की हैसियत से प्रायः पहला अति दूरगामी प्रभाव वाला महान क्रान्तिकारी काम था। सहस्रों–लाखों खेतिहर मजदूरों तथा भूमिहीनों को

खेती की जमीनों पर स्वामित्त्व और बेदखली के भय से त्राण मिला। संत विनोबा के भूदान यज्ञ की तरह उत्तर प्रदेश का जमीन्दारी उन्मूलन भी गांधीवादी आन्दोलन था। राज्य सत्ता के माध्यम से उसकी उपलब्धि संत विनोबा भावे की भावनात्मक उपलब्धि से निस्संदेह अधिक व्यापक हुई। शायद इसी कारण देश के दूसरे राज्यों ने अपने जमींदारी उन्मूलन विधेयक को उत्तर प्रदेश के सांचे में ढाला। कृषि की भूमि और जल तथा किसान के पशुधन के संरक्षण की ओर भी किसान के बेटे ने बहुत ध्यान दिया। महान सादगी से वही इसे कर सकता था, क्योंकि उसका परिवार और वह पांवों में बेवाई फटने की पीड़ा को जानते थे। वह जब दिल्ली आया, तब लगा कि जैसे गांव की निष्कलुष आत्मा आयी, किसानों का पुरुषार्थ आया। दिल्ली में देहात का यह कदम जिसे चौधरी चरण सिंह कहते हैं, आया तो खामोशी से, लेकिन जलजला बरपा कर रहा। आश्चर्य नहीं कि लोग इसे अपनी मिट्टी का बना देवता मानते थे। वहीं सोंधी मिट्टी की महक, वही सोना उगलने की उसकी क्षमता।

जनता सरकार से देश के बहुसंख्यक अस्सी प्रतिशत ग्रामवासियों को बड़ी आशा थी। उस पर उनकी टकटकी बंध गयी थी। जनता सरकार ने अपनी घटकबाजी के विकराल अन्तर्द्धन्द के होते हुए काम बहुत अच्छा किया। प्रशासन में भारी मितव्ययता, कृषि की उपज बढ़ाने के लिए सिंचाई के साधनों का विकास, उर्वरकों का कम दाम, गांवों में पीने के साफ पानी की व्यवस्था आदि ऐसा और इतना किया जितना पूरे पैंतीस साल में नहीं हुआ था। राजधानियों में कम दाम के नये होटलों की योजना भी चालू की गयी जिससे जन–जन की सुख–सुविधा में विषमता कम हो। ग्रामीण क्षेत्रों में अन्त्योदय और काम के बदले अनाज की योजना चलायी गयी। अजगर सी बढ़ी हुई महंगाई को रोकने के लिये मुद्रास्फीति पर नियंत्रण किया गया। प्रगति की दर को ५.२ प्रतिशत बढ़ाया गया, जो एक रिकार्ड था। रोजगार योजना के अधीन हर जिले में कुटीर और लघु उद्योगों का विभाग स्थापित किया गया। प्रौढ़ शिक्षा की स्कीम और हर गांव में स्वास्थ्य सहायकों के केन्द्र स्थापित किये गये। महात्मा गांधी के आदर्शों के अनुरूप लोक कल्याण की कितनी योजनायें शुरू की गयी। मशीन से ऊपर मानव को प्रतिष्ठित किया गया। यह गरीबी को मिटाने के सच्चे प्रयास का श्रीगणेश था। उस समय के आंकड़े पुकार–पुकार कर तत्कालीन प्रगतिपूर्ण शासकीय प्रयत्नों की सराहना कर रहे हैं। उन आंकड़ों को उद्धृत कर हम इस प्रकरण को लम्बा नहीं करना चाहते। संक्षेप में यही उल्लेख पर्याप्त होगा कि जनता सरकार ने ग्रामों की ओर अपनी नीतियों का मुंह सफलतापूर्वक मोड़ा। उसकी अल्प काल की

उपलब्धियों पर किसी सरकार और देश का गर्व से भर आना स्वाभाविक है। इस उत्कृष्ट कार्य पर चाहे वह किसी विभाग से संबंधित क्यों न हो, उस किसान के बेटे के गम्भीर चिन्तन की छाया थी। उसने अपने विभाग में, गृहमंत्री के रूप में परम निर्भीकता तथा अदम्य साहस से तानाशाही के घोर भ्रष्टाचार, अमानुषिक शोषण और पाशविक अत्याचारों की निष्पक्ष जांच करानी शुरू की, जिससे संविधान के मौलिक अधिकारों को छीनने वालों को उनकी कुकरनी का फल चखाया जा सके। इसी प्रकार आपात काल की स्थितियों का हमेशा के लिए दाह संस्कार हो जाता। वह हो नहीं पाया, पर वैसा करने का सच्चा उपक्रम तो हुआ!

देश अभी महात्मा गांधी वाली बुनियादी कांग्रेस के आकर्षण में था। साथ ही दुर्दान्त गरीबी और अशिक्षा के अन्धकार में पड़ा था। भारी उद्योगों की चमक–दमक की विकास के लिए निस्सारिता को जान कर भी तन–पेट साथ रखने के लिए देश अनबूझ बन गया। उसकी गलती से छलछंद वाली इंदिरा कांग्रेस फिर से सत्ता में आ गयी। उसका सबको – जन–जन को तस्करों, मुनाफाखोरों, चोरबाजारियों और असामाजिक तत्वों को छोड़ कर हार्दिक पश्चात्ताप हुआ। इंका के कर्णधार अठारह अरब रुपया खेल–कूदों पर बिना हिचक खर्च कर सकते थे। मगर राजस्थान की नहर या गांवों में साफ पीने के पानी पर व्यय करने के लिए उनके पास धन नहीं। दुर्नीति से देश की सर्वाधिक पीड़ित जनता नगर और गांव सभी जगह आक्रोश से जल उठी थी। वह आज अपने मसीहा, किसान के बेटे के लिए तड़प रही है, जिससे उसे दो जून की रोटी तो मिले, भले ही वह एक दिन के लिए ढाई हजार रुपये वाले पांच सितारे वाले होटल में न ठहर पाये। जनता जनार्दन अब समझ चुकी थी कि जो गांव में पैदा नहीं हुआ, उसको गेहूं और जौ की बाल का फर्क मालूम नहीं, वह उनका दुःख–दर्द नहीं मिटा सकता। अब किसी छल, प्रपंच, धोखे से उन्हें नहीं लुभाया जा सकता।

उपर्युक्त एहसास के कारण ही किसान के उस महान सपूत के नेतृत्व में जनता का विकल्प फिर उभरा है। वह विकल्प आयेगा और गांव–गांव, जन–जन की व्याधि को मिटा कर हिन्दुस्तान को वह महानता प्रदान करेगा, जिसके बल पर वह कभी संसार का सिरमौर और ज्ञान गुरु था। हिन्दुस्तान का प्राचीन संकल्प है, सर्वे सुखिना भवन्तुः। यहां भी, बाहर भी, सब सुखी होंगे, बराबर होंगे भेदभाव मिटेंगे, जाति–पांति मिटेंगे और मेहनतकश मजदूर तथा उत्पादनकर्त्ता किसान पवित्र भारत भू का उत्कर्ष बन खिल उठेंगे। बापू दरिद्रनारायण के प्रतीक थे, चौधरी चरण सिंह उस प्रतीक की ज्वाला थे। आज जन–जन को छल, फरेब, झूठ और धोखा

सिखाया गया कल व्यक्ति–व्यक्ति स्वतंत्र और पवित्र होगा। अर्थलोलुपता का नंगा नाच ऋषियों के इस पुरातन देश से मिट कर रहेगा। आर्वाचीन युगद्रष्टा कार्ल मार्क्स और महात्मा गांधी के आदर्शों के बीच मध्य मार्ग के प्रणेता चौधरी चरण सिंह का अखिल विश्व के सुन्दर भविष्य के लिए यही शुभ संदेश था।

परिशिष्ट

विविध

राजनीतिक भ्रष्टाचार

चौधरी चरण सिंह

राजनीतिक भ्रष्टाचार के कई रूप हैं। नगद धन हासिल करने के अलावा उद्योग लगाने, आयात–निर्यात व आर्थिक लाभ के अन्य उद्देश्यों के लिए लाइसेंस पाने के इच्छुक व्यापारिक और औद्योगिक प्रतिष्ठानों में मंत्रियों के संबंधियों की नियुक्तियों के जरिये भी भ्रष्टाचार फैल रहा है।

भ्रष्टाचार का एक और रूप सार्वजनिक परियोजनाओं व सुविधाओं को इस तरह आवंटित करने में पद का दुरुपयोग है, जिससे उस क्षेत्र या वर्ग विशेष को लाभ पहुंचे, जिसे मंत्रियों का समर्थन है। समुदाय व समाज कल्याण परियोजनाओं और सिंचाई की सुविधाओं व सड़कें बनाने या सरकारी उद्योग कायम करने में राजनीतिक भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया गया है। कर्ज और आर्थिक मदद ज्यादातर राजनीतिक आधार पर तय की जाती है, जिस कारण न सिर्फ आर्थिक मदद बेकार जाती है, कर्ज की बकाया रकम भी बढ़ती जाती है।

सामान्य नियम और कानून लागू न करना भी भ्रष्टाचार है। जो व्यक्ति किसी दल को या चुनाव के लिए चन्दा देते हैं, वे आयकर न देने के कारण हुए जुर्माने से बच जाते हैं। ग्रामीण विकास सरकारी और स्वशासी संस्थाओं को आर्थिक मदद स्वार्थ के कारण निजी फैसले पर की जाती है।

चुनाव के लिए धन

राजनीतिक शक्ति पाने के लिए सत्ता के भूखे राजनीतिक नेता को हर पांच साल में एक बार चुनाव जीतना पड़ता है, जिसमें काफी धन खर्च होता है। इसलिए वह बेईमान व्यापारियों से सम्बन्ध जोड़ता है। राजनीतिक नेता को धन देने के लिए व्यापारी काला बाजारी करेगा और उस व्यापारी की रक्षा राजनीतिक नेता करेगा, जिससे उसे धन मिलता रहे। इस तरह भ्रष्ट व्यापारी या उद्योगपति और भ्रष्ट राजनीतिक नेता के बीच संबंध कायम हो जाता है और भ्रष्टाचार बढ़ता जाता है।

स्टैनली कारले ने 'वाशिंगटन पोस्ट' में लिखा– "व्यापारियों को लाइसेंसों के लिये धन देना पड़ता है। सरकारी एजेंसियों के निदेशक किसी तरह धन में हेरा–फेरी कर देते हैं। तटकर निरीक्षकों की तस्करों से मिली भगत रहती है। कोई व्यापारी बिना धन दिये अपना काम कराने

की उम्मीद नहीं रख सकता, क्योंकि वह ठीक तरह नहीं जानता कि उसे कितनी अदायगी करनी है और किसे करनी है।"

भ्रष्टाचार के मामले में भारत बदनाम है। एक अमेरिकी पत्रिका ने लिखा कि भारत में अब बच्चे को विद्यालय में भर्ती करने, दूध का कार्ड पाने, यहां तक कि रेल का टिकट पाने के लिए भी घूस देनी पड़ती है।

भ्रष्टाचार बढ़ने से प्रशासन पर जनता का विश्वास उठ गया और ईमानदारी की कोई मिसाल न मिलने से वह निराश हो गयी। उसके दिल में भ्रष्ट अधिकारियों की इज्जत खत्म हो गयी, जो अपनी या अपने रिश्तेदारों की भलाई करने में जुटे थे। राजनीतिक नेताओं के भाषणों का उस पर कोई असर नहीं पड़ता।

चरित्रहीनता

देश में राजनीतिक जीवन में चरित्र और निष्ठा की कमी आ गयी। सत्ता हथियाने या एक बार सत्ता पाकर उसे कायम रखने की लालसा ने राजनीतिक ढांचा खत्म कर दिया, जिसे महात्मा गांधी के नेतृत्व में नेताओं ने विकसित किया था।

एक व्यक्ति के अनुसार, जिसने छठे दशक में भारत का सर्वेक्षण किया, शायद ही कोई मंत्री ऐसा था, जिसने अपना कम से कम एक रिश्तेदार सरकारी या निजी प्रतिष्ठान में नौकरी पर न रखाया हो, जो वहां रहने का हकदार नहीं था। दस बड़ी फर्मों के उच्च अधिकारियों का विश्लेषण करने से पता चला कि उनमें करीब २० फीसदी संसद सदस्यों, १४ फीसदी सरकार के सचिवों और २५ फीसदी अन्य महत्त्वपूर्ण सरकारी अधिकारियों के रिश्तेदार थे। निजी प्रतिष्ठान, अधिकारियों के कृपा पात्र बनने का, यह सबसे अच्छा साधन मानते थे।

पश्चिमी देशों में सत्ता में रहते निजी लाभ उठाने का लालच आम तौर पर खत्म–सा हो गया है। कोई मंत्री जरा भी नैतिकता भंग करे, तो उसकी तुरन्त आलोचना की जाती है और सजा दी जाती है। अमेरिका में 'वाटरगेट कांड' ने समूचे अमेरिकी जनमत को झकझोर दिया।

चरित्र में कमी क्यों है? दिशा–विहीनता और पतन क्यों है? स्वार्थ की शिक्षा कहां से मिलती है? भ्रष्ट व्यक्ति शर्मिन्दा क्यों नहीं होता?

भ्रष्टाचार खत्म करने के लिए क्रांति चाहिए, जो उत्पादन के साधनों या इन्सानों के आर्थिक संबंधों में बदलाव कर लायी जा सकती है।

मेरा पक्का विश्वास है कि सबसे पहले भ्रष्ट मंत्रियों और अधिकारियों को सजा दी जानी चाहिए। व्यापारिक क्षेत्र में बड़ी–बड़ी रिश्वतें देने वालों को भी सजा मिलनी चाहिए।

भारत के गृहमंत्री चौधरी चरण सिंह से एक साक्षात्कार

('परंतप' से साभार)

ऐसा तो कभी नहीं सोचा था कि मैं कभी गृहमंत्री बनूंगा। राजसत्ता केन्द्र में अपने हाथ में आये, यह कुछ धुंधला–सा विचार, कल्पना या उद्देश्य, कुछ भी कह लीजिए, मेरे मन में था। लेकिन गृहमंत्री की बात तो मैंने सोची नहीं थी। न मेरी इस संबंध में किसी से कोई वार्ता ही हुई थी।

पटेल का आदर्श

प्रश्न– गृहमंत्री के रूप में आपका आदर्श राजपुरुष कौन है और इस संबंध में आपकी क्या मान्यतायें हैं?

सरदार पटेल एक सफल गृहमंत्री थे। उनकी समूची नीति ने उनकी प्रशासनिक क्षमता ने, विचारों की उनकी दृढ़ता ने उनकी साफगोई – स्पष्टवादिता ने मुझे प्रभावित किया है। आजादी के बाद जिस तरह से देशी रियासतों का उन्होंने विलीनीकरण किया और सारे देश के मानचित्र को अखण्डता और सार्वभौमिकता प्रदान की, वह कोई साधारण काम नहीं था। एक युग के काम को दो–तीन वर्ष में ही निपटाकर वे चले गये। यह हमारे देश का दुर्भाग्य था कि वे अधिक दिनों तक देश को नेतृत्व नहीं दे सके। सफल प्रशासन के लिए आवश्यक है कि स्पष्ट नीति हो, दृढ़ता से उसका कार्यान्वयन करते हों, जो लोग कार्यान्वयन करते हैं उनका आचरण संदेह – रहित हो, वे किसी प्रलोभन और दबाव से समझौता न करने वाले हों।

दयानन्द और गांधी

प्रश्न– व्यक्तिगत जीवन में आपका आदर्श – पुरुष कौन रहा है, जिसने आपको प्रभावित किया हो?

यों देखें तो गुजरात मेरे लिए पुण्य भूमि है। जहाँ तक सामाजिक और

धार्मिक प्रभाव का ताल्लुक है, वह तो स्वामी दयानन्द का ही रहा, किन्तु राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नों पर मैंने गांधी जी को ही अपना आदर्श माना है और उन्हीं की नीतियों और विचारों ने मुझे प्रभावित किया है।

स्थिति नियन्त्रण से बाहर नहीं

प्रश्न– क्या इमरजेंसी के बाद शान्ति और व्यवस्था की स्थिति ज्यादा बिगड़ी है?

नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है कि स्थिति नियन्त्रण से बाहर हो। इतना जरूर है, इमरजेंसी के कारण सारा देश एक घुटन महसूस कर रहा था। जबान पर ताले थे। अखबार वही छाप सकते थे, जो सेंसर के बाद छापने को दिया जाता था। प्रदर्शन का कोई सवाल ही नहीं था। अब जब सब तरह की आजादी लौट आयी है, तो स्प्रिंग की तरह, कमानी की तरह प्रतिक्रिया हो रही है, इसलिए चारों ओर कुछ न कुछ हलचल है। मैं मानता हूं कि कुछ अवांछनीय तत्त्व भी उभर आये हैं, किन्तु उनसे निपटने के लिए हमारे उपलब्ध कानून बहुत ही सक्षम हैं।

प्रश्न– लगता है कि गांवों में असुरक्षा की भावना कुछ अधिक दिखायी पड़ती है?

ऐसा तो नहीं है। गांव में कभी–कभी यह हो जाता है कि जैसे परिस्थितिवश कोई व्यक्ति डाकू बन जाये और डाका डालना शुरू कर दे। वह आतंक तो कुछ दिनों के लिए पैदा कर ही देता है, लेकिन वह जैसे ही पकड़ा जाता है, शान्ति स्थापित हो जाती है। लेकिन यह कोई असाधारण बात है, ऐसा नहीं है। समाज में अच्छाइयां, बुराइयां दोनों ही हैं। प्रशासन की उपयोगिता इसी में होती है कि बुराइयों को दबाया जाये और अच्छाईयों को पनपाया जाये।

प्रश्न– प्रशासनिक सुधार के लिए गृहमंत्री बनने के बाद आपने कुछ महत्त्वपूर्ण कदम उठाये हैं, उन पर कुछ प्रकाश डालें?

सबसे बड़ा कदम तो यह है कि कमीशन बैठाये हैं। उन कमीशनों की फाइंडिंग आने पर आगे कार्यवाही की जायेगी। देवराज अर्स के खिलाफ फाइंडिंग आ गयी है और दूसरे कमीशनों का काम चल रहा है।

फिर हमने एक अखिल भारतीय पुलिस आयोग बैठाया है। सन् १९०२ के बाद, ७५ वर्ष के बाद, ऐसा कमीशन बैठा है, जिसमें पुलिस की समस्याओं पर विचार होगा। छोटी–मोटी तो बहुत सी चीजें की हैं प्रशासन

में। जैसे आई० ए० एस० और पी० सी० एस० में एक चौथायी ही प्रोमोशन पर ऊपर जाते थे, हमने एक तिहायी कर दिया है।

शाह–कमीशन क्यों?

प्रश्न – आप यह बतलायें कि जांच के लिए शाह–कमीशन को ही क्यों उपयुक्त समझा गया? युद्ध–अपराधियों की जांच जैसी पद्धति क्यों नहीं अपनायी गयी?

हमारे संविधान में उसके लिए कोई कानून नहीं था। वह तो लड़ाई में जोते हुए लोग अपना निजी एक मार्शल लॉ की तरह कानून बना लेते हैं, किन्तु प्रजा–तान्त्रिक प्रणाली में संविधान ही सबसे बड़ा होता है, उसी के मुताबिक चलना था। हमारे संविधान में इस तरह का कोई प्राविधान नहीं है। दूसरी बात यह है कि "सबवर्शन आफ कान्स्टीट्यूशन इज नाट एन ऑफेन्स" संविधान में तोड़–मरोड़ स्वयम् अपराध की गिनती में नहीं आता। हां, ऐसा कुछ देशों में माना जाता है और एक देश ऐसा भी है, जहां इस तरह का मुकदमा चलाकर प्रधानमन्त्री को फांसी की सजा भी दी जा चुकी है। हमारे देश के संविधान में ऐसा नहीं है और न हम उस रास्ते पर जा सकते हैं।

प्रश्न– लोगों की धारणा है कि गृह मन्त्रालय की असावधानी के कारण श्रीमती गांधी को साफ छूट निकलने का मौका मिला है?

लोग ऐसा कह सकते हैं। गृहमन्त्री होने के नाते जिम्मेदारी भी मेरी ही ठहरायी जा सकती है। लेकिन मैं पूछता हूं कि क्या उन्हें गिरफ्तार करना गलत था? क्या सारा देश यह नहीं चाहता था कि अपराधी को सजा दी जाये? लेकिन गलती तो हमसे यह हुई कि वे छोड़ दी गयीं। सिर्फ एक यही गलती मेरे नाम के साथ जोड़ी जायेगी। शायद फौजदारी कानून के इतिहास में यह एक अनोखी घटना थी, जिस ढंग से श्रीमती गांधी को रिहा किया गया।

प्रश्न– आप सफल नहीं हो पाये, एक ऐसा अवसर आप चूक गये, जिसमें श्रीमती गांधी के राजनीतिक जीवन का पटाक्षेप हो सकता था?

सवाल श्रीमती गांधी के राजनीतिक जीवन को समाप्त करने का नहीं था– बल्कि एक ऐसी परिपाटी डालने का था, जिसके अनुसार सभी को सबक मिल सके कि सार्वजनिक जीवन में पद और सत्ता का दुरुपयोग करना एक अपराध है और चाहे जितनी बड़ी हस्ती हो, उसे भी अपराध

की सजा दी जा सकती है। श्रीमती गांधी के खिलाफ ठोस सबूत थे। ये प्रमाण अकाट्य हैं। सी० बी० आई० ने जांच करके उन्हें। गिरफ्तार किया, लेकिन मजिस्ट्रेट ने छोड़ दिया।

प्रश्न– अच्छा तो अब आपका क्या कहना है? श्रीमती गांधी एक हीरो बनकर सारे देश में घूम रही हैं। उनके राजनीतिक भविष्य के बारे में आपका क्या ख्याल है?

श्रीमती गांधी उसी जगह हैं, जहां वे पिछले वर्ष चुनाव के समय थीं। उनके बारे में जनता की मानसिक धारणा में कोई फर्क नहीं आया। गिरफ्तारी और रिहाई के बाद मैं दिल्ली से ट्रेन द्वारा लखनऊ गया था। हर स्टेशन पर हजारों लोग इकट्ठा होकर यही नारे लगा रहे थे कि "क्यों रिहा किया गया उन्हें?" साधारण लोग यही कहते पाये गये– "उसे गिरफ्तार करने के लिए दिलेरी चाहिए। कानून उससे दुबारा निपटेगा, मगर यही शख्स उसे दुबारा पकड़ेगा।"

प्रश्न– अब तो इन्दिरा जी आपके और आपकी पार्टी के खिलाफ धुआंधार प्रचार कर रही हैं?

बस यही तो हमारी सभ्यता और संस्कृति में औरत होने का अनुचित लाभ है। हम पुरुष इस मामले में अधिक सहनशील हैं। वे तो ड्रामा करने की आदी हैं। मैं उनसे दो ही मामलों में हार खा जाता हूं–एक तो उनकी ड्रामा कला से य आंसू बहाने से, चिल्लाने से कि "चरण सिंह तो मेरे खून का प्यासा है" और दूसरी यह कि वे कभी सच नहीं बोलती। मैं पहले भी यह कहा करता था कि "किसी दूसरे देश का प्रधानमंत्री कभी झूठ नहीं बोलता और हमारी प्रधानमंत्री कभी सच नहीं बोलती।" आखिर हिटलर का बोलबाला इसी आधार पर ही तो था। एक झूठ को सैकड़ों बार जोर–जोर से बोलते रहने पर वह एक दिन सच मान लिया जाता है। लेकिन मुझे अपने देश की जनता पर पूरा यकीन है। आखिर जनता ने ही तो इतनी बड़ी क्रान्ति अभी की है य वह उन्हें कभी माफ नहीं करेगी, न कभी बर्दाश्त ही करेगी।

प्रश्न– क्या इन्दिरा गांधी पर संविधान की हत्या करने के अभियोग पर 'ओपन इम्पीचमेन्ट' की कार्यवाही भी नहीं की जा सकती थी?

जी नहीं, प्रधानमन्त्री का 'ओपन इम्पीचमेन्ट' कैसे हो सकता है? उसे तो संसद जब चाहे निकाल सकती है। इम्पीचमेन्ट होता है राष्ट्रपति का, सुप्रीमकोर्ट के जजों का। अमरीकी संविधान में जैसे राष्ट्रपति का 'इम्पीचमेन्ट' हो सकता है। लेकिन यहां तो भूतपूर्व प्रधानमंत्री ने जो

कुछ उल्टा सीधा किया, उसको संसद से पास करा लिया और मोहर लगवा ली।

प्रश्न– पद और ख्याति का घृणित दुरुपयोग करके संजय गांधी को आगे बढ़ाकर क्या इन्दिरा जी ने देश के साथ विश्वासघात नहीं किया?

किया तो है, लेकिन यह सिद्ध करने के लिए कि यह अपराध हुआ है, कोई संवैधानिक प्रक्रिया तो अपनानी ही पड़ेगी। जैसे शाह – कमीशन एक स्वतन्त्र कमीशन है और संजय गांधी के मामले में 'किस्सा कुर्सी–का' और मारुति के मामले में जांच का काम हो ही रहा है। इन जांच आयोगों का काम जैसे ही समाप्त होगा, वैसे ही उनकी रिपोर्टों पर सरकार विचार करेगी और आगे की कार्यवाही भी उसी पर निर्भर होगी। हमारे यहां के कानून का आधार यह है कि चाहे सौ गुनहगार छूट जायें, मगर किसी बेगुनाह को सजा न मिले।

भ्रष्टाचार

प्रश्न– देश में व्याप्त भ्रष्टाचार के विषय में आपके क्या विचार हैं?

मेरा पक्का विश्वास है कि बिना भ्रष्टाचार मिटे कोई भी शासन सफल नहीं हो सकता है और न कोई मुल्क ही ऊंचा उठ सकता है। भ्रष्टाचार हमेशा नीचे की ओर फैलता है। इसे नेस्तनाबूद करने के लिए मूलरूप से वहीं आघात करना पड़ेगा, जहां से यह शुरू होता है। तप, बलिदान और जनसेवा के संस्कार हमारे देश में ऊपर से ही चलकर फिर नीचे सारे समाज में फैलते आये हैं। ठीक यही बात भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में लागू होती है। यदि समाज के नेता, सरकार के बड़े अफसर भ्रष्टाचारी आचरण छोड़ दें या जब पकड़े जायें तो कड़ी से कड़ी सजा मिले, तो उसका प्रभाव सारे देश और समाज पर पड़ेगा। अजीब हालत हो गयी है–यहां ईमानदार आदमियों को उंगली पर गिनाया जाता है– कहा जाता है कि ये ईमानदार हैं, जबकि विदेशों में भ्रष्टाचारी पर उंगली उठायी जाती है कि यह कैसे भ्रष्टाचारी हो गया।

प्रश्न– भ्रष्टाचार का जब जिक्र चला है, तो एक सवाल यह भी पूछना चाहूंगा कि जनता पार्टी के सन्दर्भ में पहले की और आज की देश में व्याप्त भ्रष्टाचार की स्थिति के बारे में आपका क्या ख्याल है?

मुझे तो स्थिति पहले से कुछ बेहतर ही लगती है। कम से कम कोशिश तो इस ओर शुरू हो गयी है।

प्रश्न– क्या आपके विचार से इस देश की स्थिति आगे चलकर ऐसी भी हो सकती है, जब जनता समझे कि देश से भ्रष्टाचार जड़मूल से उखाड़ फेंका जा चुका है? क्यों नहीं हो सकती? इसमें असम्भव नाम की चीज मैं नहीं देखता किन्तु इसके लिए सत्ता और जनता दोनों को ही मिलजुल कर पूरी ईमानदारी से कोशिश करनी होगी।

प्रश्न– क्या इसके लिए आप लोगों ने कुछ कार्य प्रारम्भ किया है?

हमने कुछ कार्य तो शुरू किया ही है। जांच आयोग का गठन, सी० बी० आई० द्वारा छानबीन और लोकपालों की नियुक्ति आदि। हमारा देश घनी जनसंख्या वाला देश है और भ्रष्टाचार कैंसर का रूप ले चुका है। ऐसी स्थिति में बिना निराश हुए लगातार योजनावद्ध रूप में कार्य करने से ही सफलता मिल सकती है।

प्रश्न– क्या आप ऐसा कुछ अनुभव करते हैं कि भ्रष्टाचार में किसी खास वर्ग का ज्यादा हाथ है या उसकी जिम्मेदारी ज्यादा आती है?

इसकी सारी जिम्मेदारी है 'पोलिटिकल लीडरशिप' पर। दरअसल जड़ तो यही है।

प्रश्न– अगर यह जिम्मेदारी आपके शब्दों में "पोलिटिकल लीडरशिप" पर है, तो इन्हीं लोगों का कर्त्तव्य भी इस मामले में सबसे अधिक होना चाहिए?

कर्त्तव्य इन लोगों का नहीं तो और किसका है? "महाजनो येन गतः स पन्थाः।" दरअसल, गलती तो नेहरू के जमाने से हुई है। जहां तक भ्रष्टाचार का सवाल है, नेहरू जी अत्यन्त शुद्ध और पवित्र थे। लेकिन उनके सहयोगी दूसरे लोग जो भ्रष्टाचार करते थे, उन पर उन्होंने कभी गुस्सा नहीं किया। लिहाजा भ्रष्टाचारी लोगों को एक तरह से 'शाह' मिलती गयी, नतीजा सामने है।

प्रश्न– क्या चरित्र के आम–संकट से भी भ्रष्टाचार पर असर पड़ता है? क्यों नहीं, असर तो हर चीज से पड़ता है, सरकार के हर कानून से, हर फैसले से य लेकिन दूसरे तत्त्वों का भी बहुत असर पड़ता है।

राष्ट्रीय चरित्र

प्रश्न– देश के कोने–कोने से खास तौर से ग्रामीण अंचलों से आप से भेंट करने वालों का तांता लगा रहता है। आप इन लोगों के बीच स्वयं को कैसा अनुभव करते हैं?

मैं जानता हूं कि खास तौर से गांव वाले भाई बड़ी दूर–दूर से काफी उम्मीदें लेकर मेरे पास आते हैं। उन्हें यकीन है कि चलो, चरण सिंह अपना आदमी है, उसके पास चलो। मगर आप यकीन मानिये, काफी वक्त उनकी फरियादें सुनने में लग जाता है। एक बार तो पिछले दिनों साढ़े तीन घंटे तो महज उनकी परेशानियां सुनने में लग गये। अब इस दरमियान मैं कुछ ऐसा काम करूं, जिससे लोग कहें, अच्छा काम करने वाला है। समय का देश के लिये सदुपयोग करूं या डाकखाने का ही काम करता रहूं। यह एक बड़ी दिक्कत है। बस उन्हें तो यह है कि चरण सिंह हमारा आदमी है, चलो हर बात उसे सुना दें।

प्रश्न– बस यही आस्था है उनकी, जिसकी वजह से वे आप के पास दौड़े चले आते हैं?

सो तो ठीक हैं, पर सबके मन की बात कैसे पूरी हो? काश मैं उनके दर्द को बांट सकता।

प्रश्न– आपके दिल में देश के लिए इतना दर्द इतनी तड़प है, तो पूरी भी होगी। प्रशासन चुस्त हो तो ...

असल में प्रशासन ठीक होना चाहिये। प्रशासन ठीक करने के लिए सबसे बड़ा कारण 'पोलिटिकल लीडरशिप' ही है। अफसरों के चरित्र साफ–सुथरे होने चाहिए। चरित्र तो अफसरों का, जजों का, मुन्सिफों का, लेखपाल का गांव पंचायत के पंचों का, सभी का ठीक होना चाहिए। आम नागरिक का चरित्र भी ठीक रहना चाहिए।

हमारे देश में एक कहावत है– "यथा राजा तथा प्रजा।" मगर यह कहावत राजशाही के जमाने की है, लोकशाही जमाने की नहीं। इसलिए हमारे नेताओं को पहले खुद मिसाल पेश करनी चाहिए। जनता का चरित्र इतना ऊंचा होना चाहिए कि नेता बेईमानी करें, तो सामान्य जनता पर उसका असर ही न पड़े य तब कहीं जाकर जनतंत्र की सच्ची कामयाबी हासिल होगी। होना तो यह चाहिए कि यदि प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री या अन्य कोई मंत्री बेईमानी करे, तो जनता खुद इसके खिलाफ एकजुट होकर उसका पर्दाफाश करे, बजाय इसके कि मंत्री बेईमानी करे तो जनता भी उसका अनुकरण करने लगे। फिर भला चरित्र ऊंचा कैसे होगा?

जापान का उदाहरण

मैं आपको मिसाल दूं जापान की। मेरे दोस्त चौधरी अवतार सिंह तीन

महीने जापान में रह आये हैं। गजब का राष्ट्रीय चरित्र है जापानियों का। सबसे प्रमुख चीज तो वे पुरुषार्थी हैं। दूसरे, अव्वल दर्जे के देशभक्त हैं। तीसरे, सबसे ज्यादा किफायतसार हैं। चौथे, उनका राष्ट्रीय चरित्र बहुत ऊंचा है। चौधरी अवतार सिंह ने मुझे वहां का एक वाकिया बतलाया कि एक लड़की सड़क पर जा रही थी, तो उसे रास्ते में एक छोटा सिक्का जैसे अपने यहां की अठन्नी हो, मिली। उसने वह सिक्का सिपाही को उठाकर दे दिया। सिपाही बोला कि चूंकि यह सिक्का तुमने पड़ा पाया है, इसलिए तुम्हारा है। लड़की ने कहा नहीं, मेरा नहीं है। जब लड़की ने अठन्नी नहीं ली तो उसे सिपाही ने एक सिगरेट ले आने को कहा। सिगरेट आई छः आने की, फिर भी बाकी दो आने बचे। जिससे सिपाही बचे हुए दो आने भी लड़की को देने लगा। पर उस लड़की ने लेने से इन्कार कर दिया। जब सिपाही ने उसे समझाया कि दो आने वह उसे सिगरेट लाने की एवज में बतौर इनाम दे रहा है। लड़की ने फिर इन्कार कर दिया। जब यह खबर उच्च अधिकारियों तक पहुंची, तो उस सिपाही को नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया और उस ईमानदार लड़की की फोटो उक्त घटना के विवरण के साथ टोकियो के प्रमुख समाचार–पत्रों के मुख–पृष्ठ पर छापी गयी। ऐसा ही विकास होना चाहिए हमारे देश में राष्ट्रीय चरित्र का। ऐसा ही ठोस और चुस्त शासन भी होना चाहिए। जब तक यह नहीं होगा, तब तक भला नहीं होगा। एक और मिसाल दूं आपको जापान की। एक हिन्दुस्तानी सज्जन यहां से जापान गये और वहां एक होटल में ठहरे। वहां से किसी दफ्तर में उनको किसी से मिलने जाना था। रास्ता करीब तीन मील का था। टैक्सी वाले से तय हो गया कि अमुक दूरी तक जाना है और इतने पैसे लगेंगे। वे साहब जब टैक्सी में सवार होकर कुछ दूर चले तो टैक्सी वाला रास्ता भूल गया और काफी चक्कर लगाने के बाद गन्तव्य स्थान तक पहुंचा। उक्त हिन्दुस्तानी सज्जन ने मीटर के हिसाब से टैक्सी का किराया अदा करना चाहा। उस जापानी को बुरा लगा और उसने उतनी राशि लेने से इन्कार कर दिया। ड्राइवर कह रहा था कि जितना तय किया है, उतना ही लूंगा, ज्यादा नहीं। इधर हिन्दुस्तानी महाशय मीटर के हिसाब से भरपूर किराया देना चाहते थे। हिन्दुस्तानी समझ रहा था कि शायद यह और ज्यादा पैसे मांग रहा है। वह जापानी न अंग्रेजी जानता था न हिन्दी और ये महाशय जापानी समझ नहीं पा रहे थे। बड़ी देर बाद कोई दुभाषिया आ गया और उसने समझाया कि ड्राइवर कह रहा है कि दरअसल रास्ता तीन ही मील का था, गलती उसकी थी कि वह बड़ा चक्कर लगाकर पहुंचा। उसे वही किराया चाहिए, जो तय हुआ था। अधिक नहीं लेगा वह।

जापान के राष्ट्रीय चरित्र के बारे में यह घटना कितना जबरदस्त उदाहरण पेश करती है। हमारे देश में तो जानबूझ कर चक्कर लगाकर पहुंचाने की कोशिश की जाती है और अधिक पैसा लेना होशियारी मानी जाती है।

मेरे सपनों का भारत

प्रश्न– आपके सपनों का भारत कैसा है?

मेरे सपनों के भारत पर तो कई किताबें लिखी जा सकती हैं। कहां तक बतलाऊं? महात्मा जी ने एक दफे कहा था– मेरे सपनों का भारत तो वह होगा, जहां हर एक को जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं सुलभ होंगी। मैं भी वही बात दुहरा रहा हूं कि प्राथमिक आवश्यकताएं सबकी पूरी हों, ऐशो–आराम की चीजें नहीं। दूसरे, सबको रोजगार मुहैया हो। तीसरे, अमीरों और गरीबों में अन्तर कम से कम होता जाय। चौथे, यह कि हर आदमी ईमानदार हो अर्थात् देश में भ्रष्टाचार न हो और हर आदमी रोटी कमाने के काम में स्वतंत्र रहे य अपने कर्त्तव्य का ईमानदारी से पालन करता रहे। पांचवे, यह कि हर आदमी अपने मुल्क को तरक्की की बुलन्दियों तक पहुंचाने का स्वप्न देखे और एक यह कि भारत में ऊंच–नीच का भेदभाव बिल्कुल न रहे।

यदि गांधी जी प्रधानमंत्री होते

प्रश्न– क्या आपके विचार में समाज का नेतृत्व राजनीतिज्ञों के ही हाथ में रहना चाहिए?

मेरे विचार से समाज का नेतृत्व अलग–अलग होना चाहिए। राजनीति का क्षेत्र तो राजनेताओं के हाथ में ही रहेगा। मेरे ख्याल से इस सवाल की तह में आपके मन में शायद एक शंका यह है कि राजनीति एक ऐसा क्षेत्र है, जो भले लोगों के लिए नहीं है। मेरे भी मन में कभी–कभी यह सवाल उठता है कि मैं कहां आकर फंस गया। लेकिन आप ही जरा सोचिये, ऐसी भावना रखनी क्या देश के लिए हितकर है? राजनीति तो हमेशा रहेगी ही, कोई न कोई किसी न किसी रूप में राजसूत्र तो संभालेगा ही। भले लोग नहीं चलायेंगे, तो बुरे लोग चलायेंगे, तब तो आखिर देश बिगड़ेगा ही। अगर गांधी जी आज हमारे पहले प्रधानमंत्री हो जाते, तो यह समस्याएं, जो आज हमारे सम्मुख खड़ी हैं, इस तरह से खड़ी ही न हो पाती। भारत का स्वरूप ही कुछ और होता।

प्रश्न– आपका यह महत्त्वपूर्ण विचार शायद देश के सामने पहली बार आया है। आज तक किसी ने यह बात नहीं कही। हां, तो गांधी जी शुरू में यदि प्रधानमंत्री होते, तो क्या–क्या मर्यादाएं निर्धारित करते?

देखिए, नेहरू जी पैदा तो भारत में ही हुए, मगर भारत की जमीन से पैदा नहीं हुए। महात्मा जी सन् १९१९ में ही देश के राजनीतिक मंच पर आ गये थे। उस समय हमारे सामने दो प्रकार के आदर्श थे। एक तो सम्पूर्ण जीवन के विषय में जैसे स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द जी, ये तीनों संन्यासी थे। दूसरे, लोकमान्य तिलक, गोखले, क्रान्तिकारी खुदी राम बोस। महात्मा जी दोनों आदर्शों से प्रभावित हुए। सबके मन में उस जमाने में एक ऊंची भावना थी अपने गुलाम देश को किसी तरह आजाद कराने की। उस जमाने में लोग मोटा कपड़ा पहनते थे, गर्म कपड़ा पट्टू पहना जाता था और अब इस जमाने में कोट, पतलून, टाई और न जानें क्या–क्या पहनते हैं। आज के जमाने में किसका आदर्श है? हमारे बच्चों की जो मौजूदा पीढ़ी है, उनके सामने कौन सा आदर्श है? अब किसका अनुसरण करें वह? सबसे बड़ी समस्या तो यही हो गयी है। आज कोई भी बच्चा देश के लिए कोई स्वप्न देखता ही नहीं। क्यों नहीं देखता? इसलिए नहीं देखता कि कोई आदर्श नहीं है उसके सामने। भटकाव की स्थिति में ही उसकी आधी उम्र बीत जाती है।

अनुशासनहीनता क्यों?

प्रश्न– आजकल खासतौर से शिक्षकों और विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता क्यों बढ़ रही है? इसके कारण क्या हैं?

देखिए, अनुशासनहीनता का सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारे घरों में जो मान्यताएं थीं, जो परम्परायें थीं, जो जीवन था, उसके पैमाने बिल्कुल बदल गये हैं। पहले घरों की मान्यताएं थीं, सबसे पहले मां के पैर छुओ, फिर ताई के, दादी के मतलब यह कि बड़ों का आदर करो। बड़ों में गुरु भी आ जाते हैं, संन्यासी भी। माता–पिता, गुरु और संन्यासी सब पूज्य माने जाते थे। समाज में आदर की भावना होगी, तो अनुशासनहीनता कहीं नहीं होगी, न शिक्षकों में, न विद्यार्थियों आदि में ही। पर अब सब समाप्त हो गया। सब जगह अनुशासनहीनता दिखाई देती है। अंग्रेजों के जमाने में जो लोग रिश्वत नहीं लेते थे, वे हमारे सामने लेने लगे। देश की नैतिकता तो पूरी तरह से चौपट हो गयी है। कुल मिलाकर देश पीछे गया है। शहर की सभ्यता बदली और लोग बदले, तो गांवों पर भी इसका

बुरा असर पड़ रहा है और अब थोड़ी बहुत जो सभ्यता गांवों में बची है, वह भी सब चौपट होती जा रही है।

आशा की किरण

प्रश्न– चौधरी साहब, इस अंधेरे की स्थिति में क्या आपको कहीं कोई प्रकाश की किरण (सिलवर लाइनिंग) नजर आती है?

बेशक, वह यह कि "कुछ बात है हस्ती मिटती नहीं हमारी।" इतिहास में कितनी सभ्यताएं उठीं और मिट गयीं, मगर हमारी सभ्यता आज तक कायम है। आखिर कोई बात है, तभी तो यह चमत्कार है। कुछ सनातन जीवन मूल्य हैं हमारे, और हमारे देश भारत के। अपनी सभ्यता और संस्कृति से ही वह महान् है। बहुत सी चोटें झेली हैं इसने इस चोट को भी बर्दाश्त करेगा। हमारी सभ्यता शाश्वत है, वह कभी नहीं मिटेगी।

बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक

प्रश्न– चौधरी साहब, समाज को बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक में बांटने की जरूरत थी?

यह चालाकी अंग्रेजों ने की थी और अब इसे स्वार्थ परक लोग कर रहे हैं, जिनके सामने केवल अपना स्वार्थ है, देश का स्वार्थ नहीं है। अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिए बांटा, जिसका कुफल आज तक हम भोग रहे हैं। हद है कि सिख तक अलग कर दिये गये। "हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई" – सुनने में तो कितना कर्णप्रिय लगता है, मगर यह अलगाव क्यों? अब हिन्दू और हरिजन की भी बात होती है, इस बेवकूफी की भी कोई सीमा है? असल में हिन्दू और कोई नहीं। मैं आपसे कहता हूं कि हिन्दू होने का कोई अभिमान नहीं करता, यह बदकिस्मती है, इस देश की!

जनता पार्टी के निर्माण की भूमिका

प्रश्न– जनता पार्टी के निर्माण में आपकी बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका है, विशेष रूप से उस समय जब आपने "देश बड़ा है और व्यक्ति उसके बाद आता है" यह स्वीकार किया और अपने को प्रस्तुत किया। इस सम्बन्ध में बतायें कि कैसे यह विचार आया, कैसे यह भूमिका बनी?

यह विचार सबसे पहले आया उस समय जब हमने यह महसूस किया कि

कई पार्टियां यदि प्रतिपक्ष में रहेंगी, तो संविद सरकार बनेगी और संविद सरकार चल नहीं सकेगी। दो या तीन पार्टियां होती, तो शायद कुछ तालमेल होना सम्भव होता— किन्तु उसकी शक्ति में फिर भी कुछ न कुछ कमी बनी ही रहेगी। इंग्लैण्ड में प्रतिपक्ष की अनेक पार्टियां है। १८वीं और २०वीं दो शताब्दियों तक संयुक्त सरकारें रहीं, लेकिन लोकतंत्रीय ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। संयुक्त सरकारें भी लोकतंत्र में होती हैं।

इसलिए हमारे यहां विचार आया कि एक पार्टी होनी चाहिए — डेमोक्रेटिक अपोजीशन। उसी ख्याल से बनाया था— भारतीय क्रान्ति दल। उसमें ज्यादातर कांग्रेसी ही थे दरअसल। जब सन् ६८ में इस्तीफा हुआ था, तब कोशिश की थी हमने। क्रान्ति दल तो पहले ही बन गया था। वह शायद ११ नवम्बर सन् १९६७ को बना था इन्दौर में। भारतीय क्रान्तिदल बनने के बाद जनवरी या फरवरी सन् १९६८ में राजा जी से भी हमारी बातचीत हुई थी। राजा जी भी चाहते थे कि इस प्रकार की पार्टी बने, लेकिन बन नहीं पायी और फिर बात टल गयी और उन्होंने कहा कि चुनाव के बाद देखेंगे। फिर सन् १९६९ के चुनाव के बाद मई में हम लोग इकट्ठा हुए, जनसंघ के नेता और स्वतंत्र पार्टी, प्रजा समाजवादी और हम तीनों एक हो जायें। लेकिन पी० एस० पी० वाले बोले कि स्वतन्त्र पार्टी को नहीं लेना चाहिए, यह तो राजा—महाराजाओं की पार्टी है या रिटायर्ड आई० सी० एस० वालों की है। हमने कहा जो हमारे उसूलों से सहमत होगा वह आ जायेगाय तुम क्यों पाबन्दी लगाते हो, चाहे राजा—महाराजा हो या कोई हो। लेकिन उनकी समझ में नहीं आया। इसलिए उस समय एक पार्टी नहीं बन पायी। हमने भी केवल स्वतंत्र पार्टी के लिए अपने अस्तित्व को मिटाना मुनासिब नहीं समझा। बात इस तरह फेल हो गयी सन् १९६९ में। फिर जुलाई, सन् १९७३ में नये सिरे से कोशिश हुई बहुत गम्भीर, उसमें भी कोई नहीं चाहते थे। हम और बीजू पटनायक ही चाहते थे। चुनाव आ रहा था सन् १९७४ में विधान सभाओं का। तो मोरारजी भाई बोले, "आधी सीट उनकी होनी चाहिए।" हम चाह रहे थे कि सब मिलकर लड़ लें, तभी ये एस० एस० पी० वाले आ गये। एस० एस० पी० के दो हिस्से हो चुके थे। बड़ा ग्रुप तो राजनारायण जी का ही था, जो हमारे साथ आ गया। मुस्लिम मजलिस के लोग भी हमारे प्रोग्राम पर हमारे निशान पर चुनाव लड़े। इसलिए उस समय १०७ सीटें लाये हम।

उस समय सारा हमला हम पर ही था। बी० बी० सी० ने कहा था कि २०० कांग्रेस की सीटें आयेगी, हमने कहा कि १०० मुश्किल से आयेंगी। लेकिन क्या करिश्मा हुआ, कैसे हुआ, उस चीज को मैं अभी तक नहीं भूल पा रहा हूं। हद हो गयी, डेमोक्रेसी कैसे चलेगी? इलेक्शन के बाद हमने फिर कोशिश की। उसमें एस० एस० पी० तो पहले से ही थी, स्वतंत्र पार्टी

भी आ गयी थी, बीजू पटनायक की उत्कल कांग्रेस और एक छोटा सा ग्रुप मधोक का। एक छोटी सी पार्टी चांदराम ने बना रखी थी हरियाणा में, वह कम्युनिस्टों में जाने की सोच रहा था। जब हमारा कुछ बनता देखा तो हमारे साथ आ गया। इस तरह ५–६ ग्रुप्स अप्रैल में इकट्ठे हुए, सन् १९७४ में। फिर २९ अगस्त, १९७४ को बी० एल० डी० बन गयी, भारतीय क्रान्ति दल की जगह। उस समय भी यह तीन ग्रुप अलग ही रह गये। जनसंघ, कांग्रेस और एक छोटा सा सोशलिस्ट ग्रुप, जो राजी नहीं था। इनकी बुद्धि में ही नहीं आया। मैंने जयप्रकाश नारायण जी से भी कहा था कि आप कहिए इनको, ये तो आपके नाम के पीछे चल रहे हैं, आप इन्हें समझाइयेय फिर नहीं राजी हुए। इमरजेंसी में जाकर राजी हुए।

संविद और जनता का अन्तर

प्रश्न– जैसा संविद में आपको जो अनुभव हुआ था, क्या वही अनुभव आज जब कई पार्टियों से मिलकर सरकार चल रही है, आपको हुआ है अथवा उससे कुछ भिन्न स्थिति है?

नहीं उससे तो अच्छा है। जब अलग–अलग पार्टियां कायम थीं, अपने निर्णयों के लिए, वे अलग बैठती थीं, अलग निर्णय लेती थीं। अब स्थिति यह है कि चाहे अन्दर कुछ भी फीलिंग हो, लेकिन पार्टियां न अलग बैठती हैं, न अलग फैसले ही कर सकती हैं। अलग कोई संगठन नहीं रहा, वह अलगाव मिट चुका है। हम पुरानी स्थिति से कहीं अधिक अच्छी स्थिति में हैं। हां वैचारिक एकता में कभी–कभी कुछ कमी महसूस होती है। वह भी जैसी होनी चाहिये थी, वैसी नहीं। हम आसानी से निर्णयात्मक स्थिति तक पहुंच जाते हैं। अपनी पार्टी में बैठ कर अपने स्वतन्त्र मत प्रकट करना फिर एक स्वर से एक निर्णय लेना ही तो प्रजातन्त्र की सार्थकता है।

राष्ट्रभाषा और उर्दू

प्रश्न– जनता पार्टी आने के बाद राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर यद्यपि आप स्वयं हमेशा से हिन्दी के पक्षधर रहे हैं, क्या पहले की सरकार या पूर्व परिस्थितियों और आज में कुछ अन्तर है?

दरअसल, यह झगड़ा शब्दों का नहीं है, झगड़ा लिपि का है। यों तो फारसी अरबी के शब्द हमारी लिपि में बहुत इस्तेमाल हो रहे हैं। आजकल तो इसका चलन और बढ़ता जा रहा है। उठाइए कोई हिन्दी की पत्रिका,

देखिए हिन्दी और उर्दू में अलगाव नहीं है। प्रश्न सारा है लिपि का। अब मैंने यही कह दिया कि लिपि बाहर से आई है, तो इसी पर सब नाराज हो रहे हैं। पागलों जैसी गलतफहमी है उन्हें अगर उस वक्त राज न होता पठानों का और मुगलों का, तो देवनागरी लिपि ही चलती। अंग्रेज आये, अंग्रेजों ने अपनी अंग्रेजी लाद दी। निजाम ने उर्दू वहां लाद दी, तेलगू पर। आजकल तो नहीं लादी जा सकती। लोकतन्त्र है, लोग चाहेंगे, जिसको, वही होगी। अगर लिपि का झगड़ा नहीं होता, तो दो लिपि रहती इस वक्त हिन्दुस्तान में। गांधी 1। जी कह रहे थे हिन्दुस्तानी करो। पार्टीशन के और भी कारण थे, लेकिन यह उर्दू का मामला भी एक बड़ा कारण था। अब याद कीजिए आपको याद ही होगा।

यह सरकारी भाषा का झगड़ा है। वैसे तो उर्दू में बहुत सी खूबी हैं। उर्दू बहुत अच्छी भाषा है, इसमें कोई शक नहीं है। मैं जो कुछ बोलता हूं या लिखता हूं, वह अधिकतर उर्दू ही है? लेकिन सारे भारत में बोली जाने वाली अनेकों भाषाएं संस्कृत से निकली होने के कारण हिन्दी से बहुत नजदीक है। इसलिए हिन्दी ज्यादा लोगों की समझ में आ सकती है। और यदि दो लिपियां हो गई तो सरकारी काम में बड़ी दिक्कत आएगी। सच तो यह है कि साम्प्रदायिक तत्वों ने राजनीतिक कारणों से उत्तर–भारत में हिन्दी और उर्दू का झगड़ा खड़ा कर दिया है और दक्षिण भारत में, खास तौर से तमिलनाडु में, हिन्दी और तमिल के बीच। हिन्दी फिल्मों का बहिष्कार भी ऐसे ही झगड़े का एक ढंग था।

तमिलनाडु में वे तमिल चाहते हैं, बंगाल में बंगला चाहते हैं। मेरे विचार से इसका धर्म से कोई वास्ता नहीं है। अगर धर्म से वास्ता होता तो बंगला देश अलग नहीं होता पाकिस्तान से। उर्दू अगर मजहब की भाषा होती तो पश्चिमी पाकिस्तान और बंगलादेश क्यों बंटते? क्या बंगला देश के मुसलमान, मुसलमान नहीं हैं? मैं यह बात फिर से दोहराता हूं कि हिन्दी उर्दू के बीच लिपि को छोड़कर कोई अन्तर नहीं है।

प्रश्न– सुना है आप उर्दू भाषा के उत्थान के लिए विशेष प्रयास कर रहे हैं?

मैं हिन्दी की बात केवल इसलिए कहता हूं क्योंकि सारे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने के लिए एक भाषा चाहिए। मैं उर्दू की शिक्षा के हर तरह से पक्ष में हूं। जहां चालीस लड़के–लड़कियां उर्दू सीखना चाहते हैं, वहां उर्दू शिक्षक की व्यवस्था की गई है।

हम तैयार थे कि त्रिभाषा फार्मूले पर सख्ती से अमल हो। जो हिन्दी भाषी क्षेत्र हैं, उनमें आधुनिक भारतीय भाषाओं–बंगला, तमिल, तेलगू आदि

के साथ उर्दू को भी शामिल किया जाये। जो उर्दू सीखना चाहें, शौक से सीखें। उर्दू को पूरा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। यदि उर्दू को प्रश्रय न दिया गया, तो हमारे साहित्य का एक बहुमूल्य अंश हम से अलग हो जाएगा। उर्दू भाषा की लज्जत और नजाकत की अपनी शान है उसे हर हाल में बरकरार रहना ही चाहिए।

समाजवाद का प्रश्न

प्रश्न– समाजवाद को लेकर आपके विचारों की बड़ी चर्चा हो रही है। इसमें कोई शक नहीं कि समाजवाद सचमुच एक मन को लुभाने वाला विचार है।

यही है न कि अर्थव्यवस्था एक व्यक्ति के लाभ के लिए न हो, बल्कि सारी जनता के लाभ के लिए हो। यह बहुत अच्छा है। लेकिन उसके लिए जरूरी है कि सारी जनता या स्टेट उसकी मालिक हो। उत्पादन का ढांचा भी ऐसा हो जिससे स्टेट जमीन की, फैक्टरियों की मालिक हो और मकान की मालिक हो तथा तिजारत भी करे। यह इस देश की संस्कृति और परम्पराओं के अनुसार सम्भव नहीं है। इसलिए हम चाहते हैं कि गांधी जी वाली बात हो, छोटी यूनिट हों, काम करने में स्वतन्त्र हों, इससे लोकतंत्र मजबूत होता है, उत्पादन बढ़ता है, चाहे वह कृषि के क्षेत्र में हो, चाहे उद्योग के क्षेत्र में हो और व्यक्ति का विकास भी समाज के विकास के साथ–साथ होता है।

जवाहर लाल और इन्दिरा

प्रश्न– नेहरू परिवार को लेकर आपके विचारों की बड़ी चर्चा हुई है?

दरअसल नेहरू की आलोचना करना उद्देश्य नहीं है और न उनकी कमजोरियां ढूंढने का। अभी कामथ की लिखी एक छोटी सी पुस्तक निकली है– 'लास्ट डेज आफ नेहरू।' उन्होंने कहा कि हमने हजार बार कहा कि चीन के खिलाफ तैयारी करो। अनर्गल स्पीच देते रहे। उनके उद्धरण भी दिये हैं। जब आक्रमण हो गया, तो बस हम देखते रह गये। चीन के मुकाबले में हम बहुत कमजोर साबित हुऐ। वे यथार्थवादी व्यक्ति नहीं थे। उन पर पाश्चात्य सभ्यता का पूरा असर था और इसलिए उनकी नीतियां भारतीय जमीन पर अधिक कारगर नहीं हो पायीं।

प्रश्न– नेहरू और इंदिरा के विचारों में आप कोई अन्तर पाते हैं या एक जैसा ही मानते हैं?

नेहरू जी के कुछ तो स्तर थे, इनका तो कुछ भी नहीं है। वे। मूलभूत प्रजातंत्रीय प्रणाली पर विश्वास करते थे, ये तो प्रजातन्त्र को समाप्त कर एकतन्त्र कहिए या परिवारवाद कहिये या अधिनायकवाद कहिये, कायम करना चाहती थीं।

प्रश्न– इंदिरा – शासन के ग्यारह वर्षों की कोई उपलब्धि मानी जा सकती है?

उपलब्धि कुछ नहीं, केवल हानि ही हानि हुई है और संवैधानिक परम्पराओं को ऐसी ठेस लगी है, जिन्हें सही दिशा देने में बड़ा समय और परिश्रम लगेगा।

कुछ संस्थाएं

प्रश्न– आनन्द–मार्ग के विषय में आजकल काफी बातें प्रकाश में आ रही हैं। क्या उस पर प्रतिबन्ध लगाने की कोई बात है?

वैसे कोई इरादा नहीं है। आनन्द मार्गियों ने जो कुछ किया है, अभी हाल में वह देश के बाहर किया है। अभी उसे अवैध करार देने की बात विचाराधीन नहीं है। लेकिन चाहे जो गुट या संस्था हो, अगर हिंसा को अपनाती है, तो सख्ती से पेश आया जायेगा।

प्रश्न– लेकिन क्या यह निश्चित हो गया है कि विदेशों में आनन्द – मार्गियों ने ही विध्वंसक कार्यवाहियां की हैं?

बाहर तो आनन्द–मार्गी ही ऐसा दावा कर रहे हैं, ब्रिटेन में आस्ट्रेलिया में। वैसे यह भी कह रहे हैं कि हमसे सम्बन्ध नहीं है, लेकिन जो पकड़े गये हैं, वे कहते हैं कि हम आनन्द मार्गी हैं।

प्रश्न– आर० एस० एस० वाले अलग संस्था के रूप में रहना चाहते हैं और उसका अलग अस्तित्व रखना चाहते हैं। क्या आप इससे सहमत हैं?

मेरी सहमति का क्या है? उनकी बातों का यकीन करना पड़ेगा।

केन्द्र-राज्य सम्बन्ध

प्रश्न– आपके विचार से राज्यों को अधिक स्वायत्तता प्रदान करनी चाहिए या नहीं? क्या ऐसा करना देश के लिए हितकर है?

इसमें कोई हर्ज नहीं है। केन्द्र की शक्ति को कोई हानि नहीं पहुंचनी चाहिए। इतने बड़े देश की एकता और शक्ति के लिए केन्द्र का मजबूत रहना बहुत आवश्यक है। लेकिन प्रान्तों के पास ऐसी शक्ति होनी चाहिये, जो उसका विकास करने में सहायक हो।

प्रश्न– क्या आप कोई विशेष विचार देना चाहते हैं?

क्या दें? अभी कल ही कुछ लोग पूछ रहे थे, राज्यों की शक्ति ज्यादा बढ़ जायेगी, तो केन्द्र कमजोर हो जायेगा। मैंने कहा कमजोर नहीं होता है। राज्य तो केन्द्र को मजबूत करने के लिए हैं। केन्द्र मजबूत होगा, तो राष्ट्रीय एकता बढ़ेगी।

भारत का व्यक्तित्व

प्रश्न– भारत का अपना व्यक्तित्व कैसा हो, मौलिक व्यक्तित्व किस प्रकार का हो? क्या भारत एक महान् राष्ट्र बनेगा?

मेरा सपना तो यही है, परन्तु इस देश में मौलिकता का अभिमान नहीं रह गया है। बच्चे, औरतें सब पश्चिमी सभ्यता की नकल करते हैं, अंग्रेजी बोलने में शान समझते हैं। नक्काल भला किसी को क्या दे सकते हैं?

समाजघाती फिल्में

प्रश्न– राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में फिल्मों की क्या भूमिका होनी चाहिए?
अच्छा प्रश्न किया। मैंने सोचा एक हिटलर था, जिसने फिल्मों के माध्यम से राष्ट्र को मजबूत बनाया, राष्ट्र का निर्माण किया और कहां हमारे देश की यह फिल्में !

कल ही मैंने अपने घर में किसान के नाम पर एक फिल्म देखी। पहले तो उसमें महल दिखाया, फिर एक खूबसूरत लड़की दिखलायी गयी। लड़की का बाप महल में उसे खोज रहा था। इतने में महल का मालिक आ गया, जिसने आते ही लड़की को बांहों में भर लिया। उसकी इज्जत लूटी। लड़की मर गयी तो उसे गंगा में डलवा दिया। इसके साथ ही दो और प्रेम के किस्से चल पड़े। उफ ऐसा बेहूदापन, हमने फौरन फिल्म बन्द कर दी। यह सिनेमा तो हमारे देश को चौपट कर देगा।

रूखा व्यवहार

प्रश्न– आपके बारे में लोगों का ऐसा विचार है कि आपका व्यवहार बड़ा सख्त और रूखा होता है?

मैं इसका क्या उत्तर दूँ? मैं बेईमान और भ्रष्टाचारी लोगों को सजा देना चाहता हूं, क्या इसीलिए मेरे बारे में इस तरह का आरोप है और क्या इसीलिए भी कि मैं सिफारिशें नहीं मानता और मैं पूंजीपतियों से दूर रहता हूं?

प्रश्न– शायद आपसे लोग इसलिए दूर रहते हैं, क्योंकि आपको किसी प्रकार भ्रष्टाचार में शामिल नहीं किया जा सकता?

यह ठीक है कि मैं लोगों की गलतियों के लिए उनको डांटता हूं या समझाता हूं, फिर भी लोग बड़ी संख्या में मेरे पास आते हैं। मैं जानता हूं कि मेरे बारे में बहुत सी बातें लोग क्यों कहते हैं।

प्रश्न– विचित्र बात है कि आप जमींदारी विरोधी आन्दोलन में अग्रणी रहे हैं, फिर भी आपको लोग हरिजन–विरोधी कहते हैं।

कुछ भ्रष्टाचारी राजनीतिज्ञ मुझसे डरते हैं, इसीलिए मेरे बारे में भ्रान्तियां फैलाते हैं, मेरे लिए हरिजन विरोधी होने का आरोप तो बहुत ही हास्यास्पद है। सन् १९३२ में मेरा खाना बनाने वाला लड़का हरिजन था। बाद में भी लखनऊ में मेरा रसोइया हरिजन ही था। मैं तो जाति–पांति का विरोधी हूं और मैंने हमेशा इसके लिए संघर्ष किया है। जन्मना जात–पांत तभी टूट सकती है, जब लोग अन्तर्जातीय विवाह करें। मैंने तो सन् १९५४ में नेहरू जी को एक पत्र लिखा था, उसमें सलाह दी थी कि संविधान में इस आशय का संशोधन होना चाहिये कि कुछ समय के बाद केवल उन युवकों को गजेटेड सेवा में लिया जायेगा अथवा विधान मण्डलों में प्रवेश दिया जाएगा, जो दूसरी जातियों में शादी के लिए तैयार होंगे। नेहरू जी इससे सहमत नहीं हुए। सन् १९६७ में जब मैं उत्तर प्रदेश की संविद सरकार का मुख्यमंत्री बना, तब भी मैं इस प्रकार का कानून बनाना चाहता था। लेकिन मेरे मंत्रिमंडल के साथियों ने ही इसका विरोध किया। फिर भी एक निर्णय मैंने यह लिया कि शिक्षा संस्थाओं के ऐसे नाम समाप्त कर दिये जायें, जो कि जाति के आधार पर हों। सन् १९६७ में मैंने प्रदेश लोक सेवा आयोग में एक हरिजन को सदस्य बनाया। भारतीय क्रांति दल के घोषणा–पत्र में तो एक ऐसी धारा रखी गयी थी, जिसमें कहा गया था कि निजी और सार्वजनिक उद्योगों या कारखानों में बीस प्रतिशत मजदूरों के स्थान अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षित रहें।

प्रश्न– मुसलमानों के बारे में आपके क्या विचार हैं?

आजकल मुसलमानों के लिए जो कुछ विपक्ष द्वारा कहा जा रहा है, वह राजनीतिक उद्देश्य को लेकर ही है। सन् १९६७ में जब भारतीय क्रांतिदल बना और दो

साल के बाद जब उत्तर प्रदेश में मध्यावधि चुनाव हुए, तो हमारे विजयी ९९ सदस्यों में से ११ मुसलमान थे और कांग्रेस के २१० विजयी सदस्यों में केवल १३ मुसलमान थे। सन् १९७७ में जो मुसलमान संसद सदस्य उत्तर प्रदेश से जीते, वे सभी पुराने लोक दल के ही थे।

प्रश्न– शुरू में कांग्रेस छोड़ने वाले इनेगिने व्यक्तियों में आप भी हैं। इसका क्या कारण है?

मैं उत्तर प्रदेश का राजस्व मंत्री था और यह बड़ा महत्त्वपूर्ण विभाग था। पंडित नेहरू सहकारी खेती शुरू करवाना चाहते थे। मैं उनसे सहमत नहीं था। इस पर वे मुझसे नाराज हुए। इसी कारण कुछ ही वर्षों में उत्तर प्रदेश की राजनीति में व्यापक परिवर्तन आया। उन्होंने एक ऐसे व्यक्ति को मुख्यमंत्री बना दिया जो दो बार चुनाव हार गया था, क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि मैं मुख्यमंत्री बनूं। तभी से मुझ पर अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी और प्रतिक्रियावादी होने का आरोप लगाया गया। मेरी भी महत्त्वाकांक्षाएं हो सकती हैं, किन्तु ऐसी व्यवस्था और प्रशासन में कुछ बनने की जहां सभी लोग सुख और शान्ति से रह सकें।

प्रश्न– देश की उद्योग नीति के बारे में कुछ बताइए।

मैं पहले ही कह चुका हूं कि देश में जितना जरूरी हो उतने ही बड़े उद्योग होने चाहिए और उनमें ऐसी वस्तुएं बनाई जायें जो लघु अथवा कुटीर उद्योगों में न बनाई जा सकती हों। इस आशय का प्रस्ताव जनता पार्टी की कार्य समिति में पारित भी हो चुका है।

बड़े कारखानों के कारण न तो कीमत सस्ती हो रही है और न सही अर्थों में औद्योगीकरण हो रहा है। और फिर जनाब, इन कारखानों में मैनेजर हैं, डिप्टी मैनेजर हैं, जनरल मैनेजर, डायरेक्टर हैं, डिप्टी डायरेक्टर हैं, ओवरसियर हैं, इंजीनियर हैं, इस तरह जाने कितने–कितने टेकनीशियन और अफसर हैं। तो यह एक नयी क्लास है, जो बड़े कारखानों से पैदा हुई है और मालिक के मुनाफे का अधिकांश हिस्सा यही लोग ले जाते हैं। इन लोगों की क्या जरूरत है? यदि बड़े कारखानों से देश मालदार होता तो बिहार कभी का मालदार हो गया होता। खेती की पैदावार बढ़ने से ही देश मालदार होता है। हमारी असल समस्या फी

आदमी पैदावार बढ़ाने की नहीं है, हमारी समस्या फी इकाई पूंजी यानी फी रुपया और फी एकड़ जमीन की पैदावार बढ़ाने की है।

प्रश्न— जिन क्षेत्रों का राष्ट्रीयकरण हो गया है, उनके बारे में आपकी क्या नीति होगी?

अब जिनका राष्ट्रीयकरण हो गया है तो हो गया है। जापान में भी यही हुआ था। लेकिन बाद में वहां की दूसरी सरकार ने वहां के कारखाने निजी क्षेत्र के लोगों को बेच दिये। फल यह हुआ कि जापान में उत्पादन एकदम बढ़ गया।

प्रश्न— सार्वजनिक क्षेत्र की अपेक्षा निजी क्षेत्र को बहुत ज्यादा बढ़ावा दिये जाने पर फिर उनमें हड़तालें होंगी, असन्तोष बढ़ेगा और उत्पादन कम होगा। इससे एक विरोधाभास की स्थिति पैदा होगी।

मेरे नक्शे में तो हड़ताल का काम ही नहीं है, भैया! जब छोटी इकाइयां होंगी तो हड़तालें कहां से होंगी? जितने कारखाने आज बढ़ रहे हैं, वे भी कम हो जायेंगे और आधे तो उसमें बन्द ही हो जायेंगे। और यदि चलते रहेंगे तो बाहर माल बेचेंगे, इससे फॉरेन एक्सचेंज कमायेंगे।

प्रश्न— आपके विचार को सुनने के बाद हमें लगा कि उद्योग के क्षेत्र में बहुत बड़ी क्रान्ति होने जा रही है।

हां, अगर मेरी चल गयी तो जरूर क्रान्ति होगी और आप सारा नक्शा बदला पायेंगे।

प्रश्न— विदेशी संबंधों के बारे में आपके क्या विचार हैं? रूस और अमेरिका आदि से आप कैसे सम्बन्ध रखना चाहते हैं?

हम सभी देशों से सम्बन्ध रखना चाहते हैं, परन्तु वहां की व्यवस्था से नहीं। रूस से हमारी मित्रता है, किन्तु वहां की साम्यवादी व्यवस्था से नहीं। हम अमेरिका से भी अच्छे सम्बन्ध रखना चाहते हैं। इस दृष्टि से हमारे सभी मित्र समान हैं। किसी देश से कोई विशेष या अतिरिक्त सम्बन्धों की आवश्यकता नहीं है। ऐसे संबंध तो हमारे अपने देश से ही हो सकते हैं। विदेशी सम्बन्धों में राष्ट्रहित का विचार सर्वोपरि होना चाहिए।

प्रश्न— दक्षिण में जनता पार्टी की हार और इन्दिरा कांग्रेस की जीत के बारे में आपको क्या कहना है?

लोगों की किसी कमी के कारण ऐसा नहीं हुआ, बल्कि इसकी जिम्मेदारी जनता पार्टी के संगठन पर है। वहां कोई संगठन ही नहीं था। चुनाव से

कुछ ही दिन पूर्व वहां राज्य स्तर पर कुछ संगठन बना था, किन्तु जिला स्तर पर नहीं। इसलिए हम मतदाताओं के निकट पहुंच ही नहीं सकते थे। यही कारण है कि उन्होंने हमारी नीतियों को समझा ही नहीं। यह असफलता पार्टी के असंगठित स्वरूप के कारण हुई। फिर जनता पार्टी के बहुत से उम्मीदवार ऐसे थे, जो पहले कांग्रेसी रह चुके थे और इमरजेंसी के दौरान उनकी बदनामी थी और उस समय जो कुछ अत्याचार अनाचार हुआ उसमें वे सहयोगी थे। जनता पार्टी का जन्म ही इमरजेंसी की इन ज्यादतियों के विरुद्ध हुआ, अतएव इस पार्टी के ऐसे लोग कैसे जीत सकते थे, जिनका सम्बन्ध उन दिनों के अन्याय और अत्याचार से रहा हो। आश्चर्य की बात है कि आन्ध्र में जनता पार्टी के २६० उम्मीदवारों में १२० भूतपूर्व कांग्रेसी थेय जिनमें केवल आठ ही जीत सके।

प्रश्न– क्या इस सम्बन्ध में आप श्रीमती इन्दिरा गांधी की लोकप्रियता को भी महत्त्व देते हैं?

महाराष्ट्र की अनेक सभाओं में श्रीमती गांधी ने रोना रोया और देर से पहुंचने का कारण यह बताती थीं कि जनता सरकार उनके आने–जाने में तरह–तरह की बाधाएं उपस्थित करती है। कई जगह उन्होंने अपने कथित अभावों का भी रोना रोया। किन्तु दक्षिण में कुछ आंशिक सफलता के बावजूद मैं नहीं समझता कि इन्दिरा गांधी अब कोई राजनीतिक शक्ति रह गई हैं। वे भले ही इधर–उधर जाती हैं, तो लोग उनके पास लोकप्रियता के कारण नहीं, बल्कि उत्सुकता के कारण आते हैं। वे फिर से कभी सत्ता में नहीं आ सकती और यदि सत्ता में आने के प्रयास में वे या उनकी पार्टी कोई अनुचित कार्यवाही करेगी तो हम उसका हर स्तर पर मुकाबला करेंगे। अगर यह कानून और व्यवस्था का सवाल हुआ तो उससे भी सख्ती से निपटेंगे। लेकिन मेरी सख्ती का मतलब यह नहीं कि जो अत्याचार उनके समय में हुए, उसकी पुनरावृत्ति हो। हमारे सामान्य कानून सभी परिस्थितियों का सामना करने के लिए समर्थ हैं।

प्रश्न– कुछ लोग तीसरी राजनीतिक शक्ति की बात करते हैं।

यह तथाकथित शक्ति तब तक नहीं उभर सकती, जब तक जनता पार्टी नहीं टूटती और मैं नहीं समझता कि जनता पार्टी टूटेगी। फिर भी अगर कुछ लोग इसे तोड़ने की कोशिश करते हैं, तो वे स्वयं समाप्त हो जाएंगे।

चरण सिंह लखनऊ–२

मई २२, १९५४

प्रिय पंडित जी!

एक लम्बे अन्तराल और हार्दिक ऊहापोह के बाद मैं यह पत्र आपको लिख रहा हूं।

जैसा कि आपने अपने भाषणों में कई बार जोर देकर कहा है भारत विदेशी आक्रमण के सामने केवल अपनी सामाजिक दुर्बलताओं के कारण पराजित होकर गुलाम बना। किसी भी विदेशी शक्ति की बहादुरी, संख्या, ऊंची सभ्यता या संस्कृति के कारण ऐसा कदापि नहीं हुआ। एक अंग्रेज इतिहासकार ने भी अपनी पुस्तक "इंग्लैंड का विस्तार" में इसे स्वीकार किया है। उक्त सत्य आम लोगों पर उजागर हो या नहीं, उन लोगों को जो सार्वजनिक महत्त्व का काम करते हैं इस तथ्य का प्रतिदिन एहसास होता है। हमारी सभी दुर्बलताओं में जो धार्मिक तथा भाषाजनित विषमताओं एवम् हमारी जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था पर आधारित हैं मेरी राय में हमारी राजनैतिक पराधीनता और पतन की जिम्मेदारी अन्तिम दुर्बलता, वर्ण व्यवस्था पर, सबसे अधिक है। यह सबसे अधिक खतरनाक साबित हुई है। इसी से हमारे देश का विभाजन भी सम्भव हुआ। जब उच्च वर्ग के हिन्दू अपने सम धर्मावलम्बियों से समानता और आदर का व्यवहार नहीं कर पाते तब मुसलमानों के इस भय को उचित मानना पड़ेगा कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद उन्हें हिन्दुओं के विराट् बहुमत से सद्व्यवहार और सद्भाव नहीं मिलेगा। अब यह सब अतीत की बातें हैं।

दुःख तो इसका है कि हमने इस सबसे कुछ भी सीखा नहीं। जाति की भावना कम होने के बदले बढ़ती ही गयी। ऐसा प्रजातंत्र की आकांक्षाओं तथा नौकरी और रोजगार पाने के लिए अधिक हो रहा है। इसका प्रकोप सार्वजनिक जीवन की उच्चतम शिराओं तक ही सीमित नहीं। इसका प्रशासकीय सेवाओं पर भी काफी असर है। इससे पक्षपात और अन्याय को ही प्रश्रय नहीं मिला है बल्कि व्यक्ति का मस्तिष्क और हृदय भी संकुचित बन कर दोषारोपण–प्रत्यारोपण, सामाजिक अविश्वास और संदेहों के घेरे में जा फंसता है। सम्प्रति यह राजनैतिक द्वेष का शस्त्र बन गया है।

सवाल यह है कि इसका अन्त कैसे किया जाय ? धर्मवेत्ताओं तथा महिलाओं ने गौतमबुद्ध के समय से इस विषय में प्रयत्न किया है मगर उसका कोई सफल हल नहीं मिल पाया है।

मैं साहसपूर्वक (इस विषय में) एक सुझाव प्रस्तुत करना चाहता हूं। उसे पिछले छः वर्षों से अपने कार्य के विविध क्षेत्रों में कमोवेश अपनाया है। व्यक्ति के जीवन में विवाह के अवसर पर जाति–पांति का बखेड़ा आ खड़ा होता है। अतः अगर इस बुराई का निराकरण करना है तो ऐसे कदम उठाने पड़ेंगे जिससे विवाह के लिए जाति का महत्त्व न रहे। अर्थात् बुराई की जड़ पर कुठाराघात करना है। हमने विभिन्न सेवाओं में अभ्यर्थियों के चयन के लिए कितने मापदंड निर्धारित कर रखे हैं, जिसके अनुपालन से कार्य विशेष के लिए सक्षम और उपयुक्त व्यक्ति मिले। अब तक इन मापदंडों का लक्ष्य व्यक्ति का मस्तिष्क और शरीर ही रहा है। उसके हृदय को आंकने के लिए कोई योग्यता निर्धारित नहीं की गयी है जिससे उसकी अभिरुचि, सहन शीलता और संवेदनाओं को सही–सही जाना जा सके कि वह अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के साथ सहानुभूति का सद्व्यवहार करने में निपुण होगा या नहीं।

मेरी राय में हमारे देश के संदर्भ में उपरोक्त योग्यता बहुत समीचीन होगी अगर हम शुरू में कम से कम राजपत्रित अधिकारियों के लिए अन्तर्जातीय विवाह की शर्त आवश्यकीय कर दें। उक्त शर्त का आशय इच्छा के विपरीत किसी विवाह करना नहीं होगा। हम किसी का स्नातक होना आवश्यकीय नहीं कर सकते यद्यपि सरकारी पदों के लिए वह निर्धारित योग्यता है। ऐसे युवकों को पर्याप्त संख्या में पाना मुश्किल भी नहीं होगा। आज कालेजों की शिक्षा पाये हुए युवक युवती इसके लिए तैयार हैं। मेरी राय में अन्तर्जातीय विवाह की शर्त किसी एक निश्चित तारीख जैसे १ जनवरी १९५५ से लगायी जा सकती है। अविवाहित युवक को भी सेवा में अथवा विधान सभा में प्रवेश करने का पूरा अधिकार होगा। मगर बाद में (विवाह के समय) अगर वह अन्तर्जातीय विवाह न करे तो उसे त्यागपत्र दे देना पड़ेगा। भारतीय संघ की सेवाओं के लिए हम यह भी निर्धारित कर सकते हैं कि अन्तर्जातीय विवाह करने वालों को सेवाओं में विशेष सुविधाएं दी जायेंगी। चूंकि भाषावार राज्य स्थापित होने वाले हैं इसलिए उपरोक्त शर्त बहुत श्लाध्य होगी। कट्टर व्यक्तियों को भी इस पद्धति से कोई विरोध नहीं होना चाहिए क्योंकि हमारे शास्त्रों में अनुलोम विवाहों का प्राविधान है। तो यह होगा कि इस तरह जातियां गोत्र बन जायेंगी जहां पिता के सगोत्र में विवाह वर्जित है।

अगर संविधान में इस आशय की एक धारा जोड़ दी जाय तो हिन्दुस्तान की वह बुराई जो राजा जी के शब्दों में भारत की दुश्मन नम्बर एक है दस वर्षों में मिट सकती है। यह देश, जब तक जाति–पांति का समूल नाश न कर दिया जाय, शक्तिशाली नहीं बन सकता। और शासन

के सक्रिय रूप में उक्त बुराई के मूल पर प्रहार किए बिना उसे सुधारा नहीं जा सकता। ऐसा यदि नहीं किया गया जो जाति प्रथा के कारण व्याप्त आपसी संदेह और घृणा देश को जला कर राख कर देगा। यह उतना ही सत्य है जितना दिन के बाद रात का आना।

आशा है कि आपको मेरे ये सुझाव अतिरंजित नहीं लगेंगे। मेरे जैसे व्यक्ति का अनुभव है कि ऊंची कही या मानी जाने वाली जातियों से इतर वर्ण में जन्म लेने का क्या असर होता है। उनके प्रति जो अपमानजनक व्यवहार किया जाता है या समाज में जो उन्हें कठोर भर्त्सना मिलती है उससे वे प्रायः सामूहिक रूप में दूसरे धर्मों को ग्रहण कर लेते हैं। यह केवल निम्नतम वर्ग के लिए सच नहीं है यह उच्च लोगों पर भी लागू होता है। उदाहरणार्थ सन् १८९७ से १९३१ के बीच में हिन्दू जाट अपने को हीन माने जाने के कारण अपने पूर्वजों के धर्म छोड़कर उससे बाहर चले गये।

प्रस्तावित संशोधन का कड़ा विरोध होना अवश्यम्भावी है। मगर उतनी ही कड़ाई से अगर आप उसे लागू कर सकेंगे तो विरोध क्रमशः (मोम सा) गल जायेगा। मेरी राय में शिक्षित हिन्दू वर्गों में प्रस्ताव का हिन्दू कोड बिल की कतिपय (लोकप्रिय) धाराओं से कहीं अधिक स्वागत होगा।

अगर उक्त संशोधन के मार्ग में (संवैधानिक) रुकावटों को पार कर संशोधन स्वीकृत हो जाय तो वह देश की स्वराज प्राप्ति की तरह ही महत्त्वपूर्ण सेवा होगी। और तभी हमारे देश के शक्तिशाली अस्तित्व की नींव पड़ सकेगी, अन्यथा नहीं।

शुभ कामनाओं सहित,
आपका,

चरण सिंह

पंडित जवाहर लाल नेहरू
भारत के प्रधान मंत्री
नई दिल्ली

चरण सिंह

विधान सभा
लखनऊ
मार्च १३, १९५९.

प्रिय पंडित जी,

मैं यह पत्र आपको निराशा भरे हृदय से लिख रहा हूं। उस दिन यद्यपि आपने मुझसे बात करने के लिए घंटे भर से अधिक समय दिया तथापि जो सच्चाई मैं व्यक्त करना चाहता था वह अपूर्ण रही।

पहला तथ्य यह है कि डाक्टर सम्पूर्णानंद का प्रशासन के विषय में ज्ञान शून्य की चरम सीमा का है। उन्हें यह भी नहीं मालूम कि कौन–कौन विषय किस विभाग के अन्तर्गत आते हैं। वास्तविकता तो यह है कि वह विभिन्न विभागों की कार्य प्रणाली से सर्वथा अपरिचित हैं। उनकी विशेषता यह है कि ग्राम स्तर पर शासकीय कार्यकर्त्ताओं की कार्य पद्धति को वे बिलकुल नहीं जानते। सन् १९५७ के आम चुनावों के बाद आपके पत्र के उत्तर में बिना मुआवजा दिए किसानों की जमीन का सिंचाई विभाग द्वारा अधिग्रहण करने का उनका सुझाव कई उदाहरणों में से एक ज्वलंत उदाहरण है। ग्रामीण क्षेत्रों और वहां के हालात से परिचित कोई भी मंत्री या मुख्यमंत्री उन कारणों और आधारों पर विश्वास ही नहीं करता जिन पर उनका उत्तर आधारित था।

दूसरे उदाहरण के रूप में मैं उनके विधान सभा में दिए गये दिनांक १२ अगस्त १९५७ के बयान की ओर ध्यान दिलाऊंगा जिसमें उन्होंने यह कहा है कि जिलाधिकारी के पद को रखने या न रखने के बारे में सरकार विचार कर रही है। वास्तविकता यह थी कि जिला बोर्ड या काउन्सिल बोर्ड की बिल पर मंत्रिमंडल विचार कर रहा था जिसमें जिलाधिकारियों का पद तोड़ने के विचार की बात ही नहीं थी। उक्त पद को तोड़ना हमारे देश में कम–से–कम आगामी पच्चीस वर्षों तक सार्वजनिक हित में है ही नहीं।

वे सन् १९३८ से मंत्रिमंडल के सदस्य रहे हैं और सन् १९५४ से मुख्यमंत्री। उन्हें यह भी नहीं मालूम कि बाढ़ की सहायता देना राजस्व विभाग का काम है न कि सिंचाई विभाग का। उसी तरह मालगुजारी में छूट माल विभाग का काम है न कि कृषि विभाग का। तथा गन्ना कर उद्योग विभाग के अन्तर्गत आता है न कि कृषि विभाग के। उन्हें यह भी नहीं मालूम कि अस्सी लाख लागत की पीलीभीत व लखीमपुर खीरी

कालोनी की परियोजना जिस पर १९५५ से काम हो रहा है माल विभाग की नहीं प्रत्युत कृषि विभाग की जिम्मेदारी है।

इन परिस्थितियों में इस तथ्य कि कल्पना ही की जा सकती है कि वे विभापज अधिकारियों का कितना पथप्रदर्शन कर सकते हैं और उनसे क्या सम्मान पा सकते हैं।

इन सबका विशेष प्रभाव नहीं पड़ता अगर उनमें जानकारी प्राप्त करने की और तथ्यों को समझने की इच्छा होती। वह मुख्य सचिव द्वारा प्रेषित प्रस्तावों तथा दूसरे अधिकारियों के सुझावों पर ध्यान ही नहीं देते। जिलाधिकारियों से जब वे उनसे मिलने आते हैं या जब वे उनके जिलों में जाते हैं, कोई सवाल ही नहीं पूछते। विधान सभा में हो रहे महत्त्वपूर्ण विषयों पर बहस की बैठकों में वे उपस्थित ही नहीं होते। अविश्वास के प्रस्ताव तथा फौरी स्थगन की बहसों में उन्हें एक से अधिक बार कोई पुस्तक पढ़ते पाया गया है। अपने आफिस में भी वह यदा–कदा ही आते हैं जबकि विधान सभा का सत्र चालू रहता है। दोपहर के बाद तो वह विधान सभा का सत्र होते हुए भी आफिस नहीं लौटते।

जून १९५८ से खाद्य स्थिति बिगड़नी शुरू हो गयी थी। मध्य जुलाई तक वह स्थिति खतरनाक हो गयी थी। लेकिन दो बार जुटी मंत्रिमंडल की बैठकों में, दिनांक २६ जून और १८ जुलाई को, उसकी कोई चर्चा नहीं हुई। मेरे आग्रह पर २१ जुलाई को (खाद्य स्थिति का) सवाल मंत्रि परिषद् में विचार के लिए रखा गया। अगस्त के अन्तिम सप्ताह में मेरे कहने पर वह दुबारा मंत्रिपरिषद् के समक्ष रखा गया यद्यपि खाद्य विभाग मेरा चार्ज नहीं था। खाना मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इसलिए किसी भी सरकार के लिए यह सर्वोपरि महत्त्व का विचारणीय विषय है। लेकिन जीवन के यथार्थं से सर्वथा अपरिचित तथा अलौकिक विषयों के छिद्रान्वेषण में संलग्न हमारे मुख्यमंत्री को इस बात की किंचित् मात्र भी चिन्ता नहीं थी।

मैंने मई १९५७ से अब तक कई बार यह अनुरोध किया है कि वह विशेषज्ञों और सम्बन्धित अधिकारियों से कृषि की उपज बढ़ाने के बारे में सांगोपांग विचार विमर्श करें, लेकिन इसके लिए उन्होंने कोई समय नहीं निकाला। बहुत बार निवेदन करने पर भी उन्हें किसी तहसील का, जहां चकबन्दी योजना का काम चल रहा है, दौरा करने का समय नहीं मिला।

सच्चाई तो यह है कि उनकी दिलचस्पी कहीं और है तथा उन्हें शासन अथवा राज्य के आर्थिक विकास से कुछ भी सरोकार नहीं। विभिन्न अखबारों तथा पत्रिकाओं में पिछले बीस महीने में ज्योतिष, क्षितिज में

आकाश यात्रा, उड़न तश्तरियों और बद्रीनाथ पर प्रकाशित उनके लेख मेरे वक्तव्य के साक्षी हैं।

आम जनता से उनका कोई सम्पर्क नहीं है। वह न उनकी मानसिकता से परिचित हैं न ही वे उनकी आवश्यकताओं को समझना चाहते हैं। मुझे याद नहीं कि ग्रामीण अंचलों में उन्होंने सर्वसाधारण की एक भी सभा को आधे घंटे तक भी संबोधित किया हो। मार्च १९५७ से हमारे राज्य में ग्यारह उपचुनाव हो चुके हैं। वे इन क्षेत्रों में एक बार भी किसी सार्वजनिक सभा में भाषण करने नहीं गये। उन्होंने कभी यह भी जानने की कोशिश नहीं कि किस कांग्रेसी उम्मीदवार के विरुद्ध क्या ताकतें काम कर रही थीं। यही नहीं, किसी को इस बात पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि उनकी अक्षमता को जानते हुए हमारे कार्यकर्ताओं ने भी उन्हें बुलाने को महत्त्व नहीं दिया। इस तरह कांग्रेसी उम्मीदवार की विजय या हार से उन्हें कोई सरोकार नहीं। उनका मुख्यमंत्रित्व आगामी तीन सालों के लिए, उनके विचार से, सुरक्षित है। पंडित जी, आप मुझे क्षमा करेंगे अगर मैं यह कहूं कि वे और चाहे जो कुछ हों उनमें नेतृत्व की क्षमता नहीं।

उनकी आम जनता में विश्वास की कमी के कारण ही वाराणसी क्षेत्र का एक उपनिर्वाचन जो श्रीमती सज्जन देवी की मृत्यु के कारण जनवरी में जाना चाहिए था अब आगामी नवम्बर के लिए स्थगित किया जा रहा है। और उसके सही कारण को अप्रकट रखने के लिए एक या दो दूसरे उपनिर्वाचन भी स्थगित किए जा रहे हैं। लेकिन इस प्रकार उत्तर प्रदेश में कांग्रेस की दिक्कतों को बहुत दिनों तक टाला नहीं जा सकता।

उनमें पार्टी का प्रदेश कांग्रेस कमेटी में सामना करने का साहस नहीं। जुलाई १९५७ में जब सरकारी कर्मचारियों की सेवा निवृत्ति की उम्र पर प्रदेश कांग्रेस की बैठक में सरकार के निर्णय के बारे में कुछ आलोचनात्मक सवाल पूछे गये तो उन्होंने कोई जवाब ही नहीं दिया। वे मौन रहे क्योंकि प्रदेश कांग्रेस को वह निर्णय के न्यायोचित होने का विश्वास दिलाने में अपने को असमर्थ अनुभव कर रहे थे। दुबारा दिनांक ३ नवम्बर की प्रदेश कांग्रेस कमेटी की बैठक में उन्होंने ५८ सदस्यों के इस प्रस्ताव पर कि जिला काउन्सिल बनने तक जिला बोर्ड को जिलाधिकारी की अध्यक्षता में कोई "एडहाक" कमेटी बनाकर समाप्त न कर दिया जाय उन्होंने दो बार जोरदार शब्दों में यह घोषित किया कि सरकार ने उक्त अस्थायी कमेटी पर अभी कोई निर्णय नहीं लिया है। अत्यन्त संकोच के साथ मैं यही कह सकता हूं कि यह अस्तव्य घोषणा थी और दिनांक ६ अक्तूबर को मंत्रि–परिषद् द्वारा किये गये निर्णय के प्रतिकूल थी। उन्होंने उक्त बयान स्पष्ट ही इसलिए दिया कि

उन्हें विश्वास नहीं था कि वह प्रदेश कांग्रेस कमेटी का सहयोग प्राप्त कर सकेंगे।

इस आत्म–विश्वास की कमी के कारण वे कांग्रेसी विधायकों के खिलाफ कोई कार्यवाही करते ही नहीं, चाहे वह अनुशासनहीनता अथवा भ्रष्ट आचरण के दोषी हों। उनके ध्यान में कई उदाहरण लाये गये हैं। उन सब पर उन्होंने आंखें बन्द कर लीं।

वह सच्चे अर्थों में पलायनवादी हैं। विधान सभा के सत्र को किसी भी बहाने से स्थगित कर देते हैं जिससे कि असुविधा उत्पन्न करने वाले विरोधी सदस्यों की उपस्थिति यथासम्भव होने ही न पाये। कांग्रेस पार्टी की बैठक तो अब असाधारण बात हो गयी है।

आम जनता से सम्पर्क के अभाव में उत्पन्न आत्म–विश्वास की कमी से वह विरोधी दलों से समीचीन व्यवहार करने में संकोच का अनुभव करते हैं। उन्होंने जून १९५७ में समाजवादी सत्याग्रहियों को गिरफ्तारी से मुक्त कराने का आदेश दिया। तब तक उनका प्रस्तर मूर्तियों को हटाने तथा हिन्दी का व्यवहार सम्बन्धी आन्दोलन निष्प्राण हो चुका था। बाद में, दिसम्बर १९५७ में उन्होंने डाक्टर राम मनोहर लोहिया को मुक्त कर दिया जब हाई कोर्ट द्वारा उनकी गिरफ्तारी वैधानिक करार दी गयी थी और उन्होंने सुप्रीम कोर्ट में उसकी अपील की थी। सुप्रीम कोर्ट ने राज्य सरकार के विरुद्ध इस विषय में भर्त्सनात्मक टिप्पणी दी।

एक बार प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के विधायक श्री गेंदा सिंह ने यह चुनौती दी कि अगर उनकी कतिपय मांगें नहीं स्वीकार की गयीं तो वे अनिश्चितकालीन (मृत्यु पर्यन्त नहीं) भूख हड़ताल करेंगे। मुख्यमंत्री मांगों को तत्परता से अस्वीकार कर दिया। जब भूख हड़ताल एक सप्ताह तक चली तब उन्हीं मांगों को स्वीकार कर लिया।

हाल के एक उदाहरण में उन्होंने विरोधी दल के नेताओं से खाद्य समस्या पर बातचीत करने से इन्कार कर दिया (किसी भी मुख्यमंत्री को बात करना स्वीकार कर लेना चाहिए था) और किसी भी सत्याग्रह आन्दोलन को कुचलने की घोषणा की। लेकिन सत्याग्रह अभी एक सप्ताह तक भी नहीं चल पाया था कि उन्होंने विरोधी दल के नेता भी त्रिलोकी सिंह से समझौता वार्ता शुरू की और उनकी मुख्य मांग खाद्य कमेटियों के गठन को मान लिया। इसका यह अर्थ निकला कि एक दो दिन समझौता वार्ता किए बिना ही एक अर्ध–शासकीय कमेटी गठित कर दी गयी। फलस्वरूप ९,००० (सत्याग्रह में) जेल गये विरोधियों को विरोधीदल को विजयी कार्यकर्ताओं के रूप में भेंट कर दिया गया। राजनैतिक हलचलों

और जनता की मानसिकता का उनका मूल्यांकन बहुत कम ही सत्य साबित होता है।

वह विरोधी दलों से तालमेल बैठाने की हर कोशिश करते हैं। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी दल में एक मजाक प्रचलित है कि उनके नेता श्री त्रिलोकी सिंह डाक्टर सम्पूर्णानन्द के अधिक निकट हैं बनिस्बत उनके कई सहयोगियों के। वह कितनी दूर तक विरोधी दलों से सामंजस्स स्थापित करने के लिए जा सकते हैं उसका एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। गोंडा के एक विधायक श्री बलदेव सिंह कत्ल के अपराधी थे। उन्हें एक महीने तक गिरफ्तार नहीं किया गया। कांग्रेस के अध्यक्ष श्री धेबर ने जब जून १९५७ में सम्बन्धित जिले का दौरा किया। तब उनको वस्तुस्थिति बतायी गयी। श्री धेबर ने गृहमंत्री को इस विषय में कहा। तब श्री बलदेव सिंह गिरफ्तार किये गये। नीचे की अदालतों से उनकी जमानत नहीं हुई। हाई कोर्ट ने भी पहले जमानत अस्वीकृत कर दी। लेकिन उसी दिन दोपहर बाद सरकारी वकील ने उच्च न्यायालय को सूचित किया कि राज्य सरकार से उन्हें जमानत का विरोध न करने की सूचना मिली है। उच्च न्यायालय ने तब अभियुक्त को मुक्त करने का आदेश देते हुए राज्य सरकार के प्रति भर्त्सनात्मक टिप्पणी की। सरकारी वकील को उक्त सलाह मुख्यमंत्री के स्पष्ट आदेश पर दी गयी थी।

जन समूह के आर्थिक उत्थान के लिए कड़ा परिश्रम और सेवा की समर्पित भावना में जो किसी भी मुख्यमंत्री से अपेक्षित है डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने ऐसे प्रचारात्मक कदम उठाये जो समस्याओं का कोई गम्भीर निराकरण नहीं। उसके कई उदाहरण हैं। समाज कल्याण विभाग और वृद्ध जनों को पेन्शन की योजना दो ऐसे उदाहरण हैं। लखनऊ में राज्य सरकार के खर्च पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन आम बात हो गयी है। इसके बारे में जितना कम कहा जाय उतना ही अच्छा है। हमारे मुख्यमंत्री के ये भावनात्मक लगाव हैं। उनके इसी दृष्टिकोण के कारण कार्यालय में काम करने के समय में आधा घंटा कम कर दिया गया है।

उनके लिए केन्द्रीय सरकार राज्य सरकार की हर अक्षमता और अभाव की ढाल है। शायद जब से वे मुख्यमंत्री बने हैं उन्होंने एक भी भाषण ऐसा नहीं दिया है। जिसमें केन्द्र सरकार पर उन्होंने सीधे या परोक्ष से आक्रमण नहीं किया है।

मुख्यमंत्री को प्रशासन में दिलचस्पी हो या नहीं शासकीय मशीन को चालू हालत में तो रखना ही है। अतः सरकारी कर्मचारियों के हाथ में निदेशन का काम आ अटका है। किसी भी कांग्रेसी विधायक से अगर

आप यह जिज्ञासा करें तो वह निस्संकोच उत्तर प्रदेश में पिछले चार वर्षों से व्याप्त इस स्थिति का निस्संकोच उल्लेख करेगा। एक वर्ष ही पहले जब श्री ए० एन० झा मुख्य सचिव थे प्रदेश का हर अधिकारी ही नहीं सार्वजनिक कार्यकर्त्ता भी समस्याओं के निर्णय के लिए उन्हीं का मुंह जोहते थे। सरकारी कर्मचारियों के प्रति उनके दृष्टिकोण का एक उदाहरण विचित्र है। विधान परिषद् के एक सदस्य ने उक्त अधिकारी के विरुद्ध एक बहस में कई आरोप लगाये। डाक्टर सम्पूर्णानन्द जो विधान परिषद् की बैठक में अपवाद स्वरूप ही जाते थे परिषद् में गये और वहां उन्होंने श्री झा से बड़ी विनम्रता से क्षमा की प्रार्थना की यद्यपि आरोप निराधार नहीं थे और कतिपय आरोपों को सम्बन्धित अधिकारी भी अस्वीकार नहीं करता।

उन्होंने इस तरह नौकरशाही की शक्ति और विशेषाधिकारों को बढ़ावा ही नहीं दिया है बल्कि भ्रष्टाचार के मामलों में भी सम्यक् जांच करने का साहस नहीं दिखाया है। गृह निर्माण के 'स्कैन्डल' में अफसरों ने नगर महापालिका नियमानुसार प्लॅन स्वीकृत कराये बिना ही मकानों का निर्माण नहीं कराया, उसकी जमीन की खरीद में भी भ्रष्टाचार किया और उसी तरह सीमेंट, लोहा आदि को प्राप्त करने में अनियमितताएं कीं। उच्चतम अधिकारियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के मामले उनके (मुख्यमंत्री के) नोटिस में लाये गये। वे या तो बिलकुल आरोप मुक्त कर दिये गये या उन्हें हल्की सजा के साथ दोषमुक्त कर दिया गया। शायद इन मामलों में उनका दृष्टिकोण नैतिकता की कमी के कारण है या वे स्वयं अपने में नैतिक साहस जुटा नहीं पाते।

पक्षपात के मामलों की लिस्ट लम्बी है। तथ्य इतने ज्वलंत हैं कि वे हर व्यक्ति की दृष्टि में आ जाते हैं अथवा उन्हें अनायास आकर्षित कर लेते हैं। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। एक भूतपूर्व विधायक श्री रामेश्वर सहाय प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में विशेष अधिकारी, उनके द्वारा, जब सन् १९४६–५१ में वह शिक्षा मंत्री थे, नियुक्त किये गये थे। उनके कार्य क्षेत्र में पाठ्यपुस्तकें भी थी। इस सम्बन्ध में उनके खिलाफ भ्रष्टाचार के गम्भीर आरोप लगे जिससे उन्हें पद से हटा दिया गया और १९५२ में विधान सभा के लिए चुनाव लड़ने का उन्हें कांग्रेस का टिकट भी नहीं दिया गया। वही श्री सहाय डाक्टर सम्पूर्णानन्द के मुख्यमंत्री बनते ही राजनैतिक पेंशनों के विशेष कार्याधिकारी नियुक्त किए गए। प्रशासन का स्तर उक्त नियुक्ति के दिन ही गजों नीचे गिर गया। मैं दूसरे उदाहरण इसलिए प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं कि उनमें नामों का उल्लेख होगा जो सर्वथा शिष्ट बात नहीं मानी जायेगी।

जांति–पांति पर उनके दृष्टिकोण अत्यन्त पुराने हैं यद्यपि जाति–पांति हमारे राष्ट्रीय और सार्वजनिक जीवन का सबसे बड़ा कलंक रहा है। एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा। सन् १९५४ में जब पंत जी मुख्यमंत्री थे कांग्रेस पार्टी की कई उपनिर्वाचनों में लगातार हार हुई थी। मंत्रियों की एक बैठक उनके कारणों के विश्लेषण के लिए की गयी। डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने एक नोट प्रस्तुत किया जिसमें उनके विचार उल्लिखित थे। उस नोट में सामाजिक और आर्थिक समस्याओं पर ऐसे विचार और दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गये थे जो किसी भी सार्वजनिक कार्यकर्त्ता के लिए प्रतिष्ठा जनक नहीं थे। मार्च १९५७ में जाति का उपयोग उनके अपने चुनाव में किस प्रकार किया गया वह वाराणसी के लोगों को अभी भी याद होगा।

मुख्यमंत्री अपने सहयोगियों से भी उचित व्यवहार करना नहीं जानते। वह अपवाद रूप में कभी कदा ही सलाह मशविरा करते हैं और हमेशा उन्हें गलत ताड़ना देते हैं। उनके सहयोगियों और उनके बीच सद्भावना या सौहार्द्र का वातावरण है ही नहीं। वह न उन्हें प्रेम से या सार्वजनिक महत्त्व के प्रश्नों पर अपनी जानकारी से आकृष्ट कर पाते हैं। वह न उन्हें कड़ा परिश्रम करने की प्रेरणा दे पाते हैं न ही साधारण कार्यकर्त्ताओं को उत्साहित कर पाते हैं।

वह क्या चाहते हैं इसे स्वयं नहीं जान पाते हैं और अपने निर्णय से भी मुकर जाते हैं। मंत्रिमंडल के निर्णय भी इसी तरह बिना उनकी सहमति के उलट दिए जाते हैं। कई उदाहरण ऐसे हैं जिनमें बिना सहयोगियों से राय लिए ही उन्होंने फैसले कर लिए। सोशलिस्ट सत्याग्रहियों को छोड़ना, श्री गेंदा सिंह की मांगों को स्वीकार कर लेना तथा डाक्टर लोहिया की रिहायी में उन्होंने किसी से भी सलाह नहीं की। खाद्य कमेटियों के गठन के बारे में उन्होंने पार्टी को आश्वस्त किया था कि उक्त विषय पर कोई समझौता वार्ता नहीं हो रही है और न विचार हो रहा है। फिर भी समझौता वार्ता हुई और एक खाद्य कमेटी का गठन किया गया। प्रान्तीय रक्षा दल को तोड़ देने के मंत्रिमंडल के निर्णय को, जो समाचार पत्रों द्वारा घोषित भी कर दिया गया था, उन्होंने विधान सभा में अपने एक बयान से पलट दिया। विधान सभा की बैठकों की तारीखें बिना मंत्रि–परिषद् की सहमति के अनेक बार बदल दी गयीं। पंत जी के समय मंत्रिमंडल द्वारा पंचायत सेक्रेटरी और लेखपाल के संबंध में नवम्बर १९५३ में लिये गये एक निर्णय को अब तक अमल में नहीं लाया गया है। पंत जी के समय में उसे इसलिए नहीं कार्यान्वित किया गया था कि पंचायतों के चुनाव नहीं हुए थे। वह ग्रामस्तर पर इससे उत्पन्न भ्रम तथा वितन्डा को समझ ही नहीं पाते।

हाल ही में ९ फरवरी को वह बिना किसी नोट या प्रस्ताव के मंत्रिमंडल से मौखिक रूप से बिरला की अलम्यूनियम फैक्टरी को रिहांड से ५१,००० किलोवाट बिजली देने की स्वीकृति चाहते थे। यह बैठक की विषय सूची में भी नहीं था। मैं बिजली का मंत्री हूं मगर मुझसे भी परामर्श नहीं किया गया था। रिहांड दाम की लागत ६८ करोड़ रुपये होगी। यह कुल १,०३,००० किलोवाट बिजली का उत्पादन करेगा। इस तरह लगभग २३ करोड़ रुपये का उपहार एक व्यक्ति को मुख्यमंत्री अपनी ओर से मंत्रिपरिषद् की मौखिक स्वीकृति पर देना चाहते थे। इस बारे में यह जानना जरूरी है कि ४०,००० किलोवाट रेलवे के लिए और १०,३०० किलोवाट मध्य प्रदेश के लिए पहले से ही स्वीकृत था। इस तरह कुल १,५०० किलोवाट बिजली ही सर्व साधारण के इस्तेमाल के लिए वाकी रहती। (यह स्थिति कम से कम तीन साल रहती जब १५,००० किलोवाट रेलवे से वापिस मिलता)। ऐसी स्थिति तब उत्पन्न की गयी जबकि मुख्यमंत्री ने रिहांड डैम को योजना आयोग और केन्द्र से सर्वसाधारण की के लिए एक विशेष वाद बिन्दु बनाया था।

राज्य की वित्तीय स्थिति प्रायः दिवालिया है। बिना काम के पदों का इतना सृजन हो रहा है कि नौकरशाही की संख्या अचानक बेहद बढ़ गयी है। मेरा मन्तव्य इससे साफ हो जाएगा कि सन् १९५९–६० के लिए १२१ करोड़ रुपये के बजट प्राविधान में से पिछले अनुभवों से इसमें ११८ करोड़ से अधिक खर्च होने की सम्भावना नहीं– ४६.८० करोड़ रुपया वेतन और भत्ता आदि में व्यय होगा। २.४३ करोड़ पेन्शन में, १९.१९ करोड़ ऋण श्चार्जेजश में खपेगा। कन्टेन्सी का २.७० करोड़ कार्यालय भवनों और उनके रखरखाव तथा फर्नीचर आदि पर बढ़ते हुए सरकारी कर्मचारियों के कारण व्यय होगा। इस तरह (११८ – ७१) ४७ करोड़ अथवा कुल धन का ४० प्रतिशत राज्य के विकास कार्यों पर खर्च किया जा सकेगा।

नौकरशाही की संख्या में वृद्धि और अनुमानित खर्च की यह स्थिति इसलिए सम्भव हुई है कि मुख्यमंत्री सरकारी धन को लुटाने की मानसिकता में पड़ गये हैं। वित्तीय विभाग के सुझावों पर ध्यान नहीं दिया जाता है और उसे अधिकतर 'बाई पास' किया जाता है। वित्तीय साधनों पर मुख्यमंत्री की दिलचस्पी का इससे अन्दाजा लग जायेगा कि खर्च में मितव्ययिता के तरीकों की जांच की एक कमेटी ने, जो सन् १९५४ में श्री हाफिज मुहम्मद इब्राहीम की अध्यक्षता में गठित की गयी थी, अपनी रिपोर्ट नहीं प्रस्तुत की। मेरे इस विषय में सवाल करने पर सन् १९५७ में वह रिपोर्ट आयी। न मुख्यमंत्री, न ही वित्त मंत्री को इस अनावश्यक देरी की कोई चिन्ता थी। राज्य तथा प्रशासन और कांग्रेस की प्रतिष्ठा, मुख्य कार्यकारी

सभासद तथा नेता के वक्तव्यों पर जनता का जो विश्वास होता है, उस पर आधारित रहती है। लेकिन यह कहने के लिए मुझे माफ किया जाय कि डाक्टर सम्पूर्णानन्द की कार्यपद्धति से वह प्रतिष्ठा दिनों–दिन गिरती जा रही है। डिस्ट्रिक्ट काउन्सिल के एक उदाहरण का पहले उल्लेख किया जा चुका है। वस्तुतः यही मेरे सन् १९५७ में दिए गये त्यागपत्र का तात्कालिक कारण था।

फिर जिस प्रकार श्री अलगू राय जी शास्त्री को विधान परिषद् का चेयरमैन होने के मामले का निस्तारण किया वह विचित्र था। शास्त्री जी को अपने पूरे समर्थन का उन्होंने विश्वास दिलाया था, कार्यकारी चेयरमैन के लिए उनका नाम भी राज्यपाल को भेज दिया था। शास्त्री जी उनके शब्दों और व्यवहार से आश्वस्त हो गए थे। उसके बाद जिस प्रकार उन्होंने इस मामले को निपटाया वह शायद शास्त्री जी आपको बता ही चुके हैं। एक साधारण राहगीर भी अपने किसी दोस्त को उस प्रकार नीचा नहीं दिखाता जैसा डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने शास्त्री जी के साथ व्यवहार किया।

सवाल उठता है कि श्री एस० पी० जैन के लिए इतनी सदाशयता किस तरह उत्पन्न हुई। भिन्न–भिन्न प्रकार की बातें कही जा रही हैं, उनसे मेरा कोई सरोकार नहीं। उसी प्रकार मैं दूसरे लोगों के बारे में कही जा रही बातों का भी जिक्र नहीं करूंगा। वह बातें हर एक की जीभ पर हैं और ऐसी हैं कि हर कांग्रेसमैन को गर्दन नीचे कर लेनी पड़ती है।

मैंने मुख्यमंत्री के दृष्टिकोण, दिलचस्पी और योग्यताओं का ही जिक्र किया है। मैंने उस दशा को नहीं अंकित किया है जिसमें प्रशासन की भयंकर अधोगति हो गयी है। लेकिन केवल पुलिस विभाग के संदर्भ से सब स्पष्ट हो जाएगा। शान्ति और सुव्यवस्था इतनी खराब कभी नहीं थी। पिछले चार पांच वर्षों में चार विधायकों का कत्ल हो चुका है। आज की अपेक्षा अंग्रेजों के दिनों में सुरक्षा कहीं अधिक थी। उसके कारण बिलकुल साफ हैं। ऐसा डाक्टर सम्पूर्णानन्द के कारण हुआ जो १९५१ से १९६१ तक गृह मंत्री रहे। उसके बाद उन्होंने यह चार्ज पंडित कमलापति त्रिपाठी को सौंपा। एक कनिष्ठ अधिकारी श्री एम० एम० माथुर को छः डी० आई० जी० के ऊपर आई० जी० बनाया गया। एक ऐसे अधिकारी को भी डी० आई० जी० बनाया गया जिन्हें पहले उस पद के लिए आयोग्य ठहरा कर उनके नीचे वालों को ऊपर किया जा चुका था। इन परिस्थितियों में कड़ी मेहनत और ईमानदारी की बाबत अपील पर पुलिस कर्मचारी कोई ध्यान ही नहीं देते।

मैंने आपको ये पंक्तियां बहुत भावनात्मक उद्वेग से लिखी हैं। लेकिन मेरे द्वारा लिखे गये हर बयान की पुष्टि उदाहरण सहित आप जब चाहेंगे आपके समक्ष प्रस्तुत की जायेगी।

उत्तर प्रदेश की दशा आज यही है। सम्भव है कि मेरे एकाध उदाहरण अक्षरशः सत्य न साबित हों, यह भी हो सकता है कि मैंने उन पर अनावश्यक जोर दिया है। लेकिन आम तौर पर सही स्थिति यही है। कांग्रेस और उसकी सरकार की शोहरत आज उत्तर प्रदेश में मिट्टी में मिल गयी है। आंख मूंद लेने से इनका सुधार सम्भव नहीं होगा। राज्य में (कुशल) नेतृत्व की नितान्त कमी है। मैं आप पर जिस पर पूरे देश के शासन और कांग्रेस की पूरी जिम्मेदारी है – यह छोड़ता हूं कि जो भी आप समीचीन और सार्वजनिक हित में समझें, वह करें।

दो बातें और। उस दिन आपने संयमित स्वर से यह कहा था कि आपको हर मंत्री के विरुद्ध शिकायतें मिली हैं। शिकायत झूठ भी हो सकती है और सच भी। वह निर्णय की असावधानी से भी हो सकती है अथवा सार्वजनिक आचरण के उचित स्तर से बहुत नीचे की हो सकती है। मैं केवल यह कह सकता हूं कि व्यक्ति विशेष को (आरोपों के खिलाफ) अपने बचाव का निर्णय के पहले, अवसर देना समीचीन होगा। राजनीति में प्रशासन की तरह हर सुधार की चेष्टा को सत्ता हथियाने का संघर्ष बताया जा सकता है। मैं यह ही कह सकता हूं कि जब १९५७ में मैंने त्यागपत्र दिया तब मेरे मन में व्यक्तिगत लाभ हानि का ध्यान ही नहीं था। (मैंने अपना त्यागपत्र वापस नहीं लिया थाय केवल डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने उसके अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया था।) मैंने किसी से न कोई पैक्ट किया है न ही किसी से कोई हमारी साजिश (डील) है। परिस्थितियों से विवश होकर कुछ लोग हमारे मत के पक्षपाती हो गये हैं। इस मत को मैं डाक्टर सम्पूर्णानन्द के मुख्यमंत्री बनने के पहले से मानता आया हूं फिर भी अगर कांग्रेस का यह हित हो अथवा आपकी यह इच्छा हो तब मैं विधान सभा की सदस्यता भी त्यागने को तैयार हूं। एक बार भी मुझे यह विश्वास हो जाय कि हम आजादी के पहले जैसा महल बनाना चाहते थे वैसा उत्तर प्रदेश में नहीं बना सकते और आजादी के पहले जिन सपनों को पालते थे उन्हें सच नहीं कर सकते तो सार्वजनिक जीवन के लिए मेरे मन में कोई उत्साह नहीं रह जाएगा और मैं उससे शीघ्रातिशीघ्र अलग हो जाऊंगा।

शुभकामनाओं सहित,
मैं हूं आपका,
चरण सिंह

पं0 जवाहर लाल नेहरू,
प्रधानमंत्री भारत सरकार,
नई दिल्ली।

चरण सिंह

कैम्प यू० पी० निवास
नई दिल्ली
८–१–१९७७

प्रिय इन्दिरा जी,

यह पत्र ३० दिसम्बर को लिखा गया था किन्तु आपके पास इसे आठ (८) जनवरी को भेज रहा हूं क्योंकि मुझे इस बात में संदेह था कि आपके पास इसे भेजना लाभकारी साबित हो सकेगा।

'समाचार' एजेन्सी की एक रिपोर्ट के अनुसार आपने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा संचालित राष्ट्रीय तथा सामाजिक शोध संस्थान के प्रशिक्षण शिविर में विगत २३ दिसम्बर को अपने भाषण में निम्नलिखित दो बातों का उल्लेख किया ––

'कांग्रेस में स्वेच्छाचारी नेताओं की एकतंत्रीय कार्यप्रणाली से कई बार विभाजन हो चुका है। प्रायः हर राज्य में एक ऐसा नेता रहा है।

कतिपय राज्यों में किसी आदर्श के लिए नहीं प्रत्युत व्यक्तिगत दुराकांक्षाओं से उत्पन्न पार्टीबन्दी के कारण विभाजन हुआ है।" इस बारे में आप ने उत्तर प्रदेश का नाम लिया जहाँ, आपके मुताबिक, मैंने बिलकुल व्यक्तिगत कारणों से (कि मैं मुख्यमंत्री बना) भारतीय क्रांति दल को बनाया।

उपरोक्त कदापि सच नहीं और मुझे लगता है कि आपने जानबूझ कर मेरे साथ ज्यादती की है। सच तो यह है कि आपने पहले भी किसी विदेशी पत्रकार से (मेरे पास अभी उसका संदर्भ नहीं है) भेंट में कहा था कि मैं तथा पश्चिमी बंगाल के श्री अजय मुखर्जी सच्चे कांग्रेसी होते हुए भी कांग्रेस से इसलिए अलग हुए कि हमारे राज्यों में कांग्रेस के कर्णधार हमें काम नहीं करने दे रहे थे। कोई नहीं जानता कि आप अपनी दोनों उक्तियों में किसको सच मानती हैं लेकिन घटनाक्रम के उल्लेख से यह प्रमाणित हो जाएगा कि मैंने मुख्यमंत्री बनने के लिए कांग्रेस नहीं छोड़ी बल्कि इसलिए छोड़ी कि मेरे साथ विश्वासघात किया गया।

सन् ६७ के यू० पी० विधान सभा के लिए आम चुनाव में कांग्रेस को कुल १९८ सीटें मिलीं जब कि विरोधी दलों को कुल मिला कर २२७ सीटें मिलीं। विरोधी दलों ने अपने बीच किसी एक को नेता बनाने पर सहमति न होने के कारण मुझसे उस उत्तरदायित्व को संभालने के लिए आग्रह

किया। मेरे सहयोग से विरोधी दलों की संख्या २७५ हो जाती। लेकिन मैंने उनका अनुरोध अस्वीकार कर दिया और उन्हें साफ बता दिया कि मेरा इरादा कांग्रेस छोड़ने का नहीं।

कुछ दिनों के बाद जब कांग्रेस विधायक दल के नेता पद के चुनाव की बैठक बुलायी गयी तब श्री सी० बी० गुप्ता के विरुद्ध मैंने भी प्रत्याशी होने की घोषणा की।

आपने अपने दो विश्वस्त सहयोगियों श्री उमाशंकर दीक्षित और श्री दिनेश सिंह को, मुझे समझा—बुझा कर नेता पद का चुनाव न लड़ने को मनाने के लिए लखनऊ भेजा। जिससे श्री गुप्त निर्विरोध नेता चुने जांय। इसका कारण बिलकुल साफ था। उनके बहुत आग्रह करने पर मैंने नेता पद के प्रत्याशी के रूप में अपना नाम ही नहीं वापिस ले लिया मैंने श्री गुप्त के नाम को प्रस्तावित करना भी स्वीकार किया। मेरी केवल एक शर्त थी जिसे उक्त दोनों संदेशवाहकों ने कितने कांग्रेस जनों के समक्ष स्वीकार कर लिया। वह शर्त यह थी कि पिछले मंत्रिमंडल के कम से कम दो व्यक्तियों को जिनकी ख्याति अच्छी नहीं थी मंत्री नहीं बनाया जाय और उनके स्थान पर दो नये यशस्वी लोग लिए जांय। मार्च ८ को श्री सी० बी० गुप्ता का चुनाव निर्विरोध हो गया। उत्तर प्रदेश के, जहां के संसद में सर्वाधिक संख्या में सदस्य होने के नाते श्री गुप्त ने आपके और मोरारजी भाई देसाई के बीच (प्रधानमंत्री पद के लिए) समझौता कराने में सफलता प्राप्त की। १३ मार्च को आपका मंत्रिमंडल बन गया। उसके दूसरे दिन श्री गुप्त ने अपनी मंत्रिपरिषद् के सदस्यों के नाम राज्यपाल को भेजे। उनमें मेरा नाम था। लेकिन मैंने मंत्रिपरिषद् की सदस्यता इसलिए अस्वीकार कर दी कि उसमें सर्वश्री दीक्षित और दिनेश सिंह से समझौते के विपरीत दो पुराने कुख्यात लोगों का भी नाम था तथा वायदे के अनुसार उनके स्थान पर नये लोग नहीं लिए गये थे। श्री गुप्त का कहना था कि समझौते में वे भागीदार नहीं थे।

१७ मार्च श्री दीक्षित लखनऊ में मुझसे मिले और बोले कि श्री गुप्त से बात कर वे मुझे बतायेंगे। वह दुबारा नहीं आये। श्री दिनेश सिंह ने टेलीफोन पर सूचित किया कि वह ३१ मार्च को लखनऊ पहुंचेंगे। उन्होंने विश्वास दिलाया कि उनका वायदा पूरा होगा। मैंने उन्हें बताया कि विधान सभा की बैठक १ अप्रैल से स्थगित हो जायेगी। अतः वे हर हालत में पहुंचे जरूर। मगर श्री दीक्षित की तरह वे भी वादा करके नहीं आये। उसी दिन ११.३० बजे रात को उनसे सम्पर्क स्थापित किया गया जब उन्होंने बताया कि वे लखनऊ इसलिए नहीं आये कि दूसरे पक्ष को उनका बीच में पड़ना पसन्द नहीं था। उन्होंने कहा कि मैं जो चाहूं करूं। मैंने इसलिए विधान सभा में दूसरे दिन घोषित किया कि मैं कांग्रेस छोड़ रहा हूं।

जब आपको या आपके विश्वस्तों को मेरे कांग्रेस को छोड़ने के परिणाम का आभास हुआ तब नेशनल हेराल्ड में जिसके श्री दीक्षित प्रबन्धक थे, उनके एक सह– योगी और प्रतापगढ़ के, जहां के श्री दिनेश सिंह निवासी हैं, एक प्रमुख कांग्रेसी मुझसे उसी शाम मेरे निवास पर अलग–अलग मिले। उन्होंने मुझे सुझाव दिया कि मैं कांग्रेस पार्टी का मुख्यमंत्री बनूं और कांग्रेस में लौट आऊं। मैंने उनसे कहा कि जो हो चुका है उसमें मेरे लिए उनके प्रस्ताव को स्वीकार करना सम्भव नहीं।

अगर मनुष्य के व्यवहार से सत्य का एकदम लोप नहीं हो गया तो श्री दीक्षित और श्री दिनेश सिंह अपने रोल के बारे में मेरा समर्थन करेंगे।

यद्यपि इतने विश्वासपूर्वक दिये गये आश्वासन को पूरा न करना कांग्रेस से मेरे सम्बन्धों का तात्कालिक अति शिथिल बन्धन साबित हुआ तथापि मेरे और कांग्रेस के कर्णधारों के बीच सन् १९५९ की जनवरी में हुए नागपुर सेशन से ही सैद्धांतिक गंभीर मतभेद होने लगे थे। मैंने सहकारी खेती और राज्य द्वारा खाद्यान्नों के व्यापार के प्रस्तावों का जोरदार विरोध किया था। इससे पंडित नेहरू बहुत नाराज हुए जिससे उत्तर प्रदेश की राजनीति में कुछ ऐसे निर्णय लिये जाये जो अन्यथा नहीं लिए जाते।

उन सिद्धान्तों के विषय में मैंने १९६० में देश की आर्थिक समस्याओं और नीति पर एक पुस्तक लिखी थी। उसका पुनरीक्षित संस्करण १९६२ में दूसरी पुस्तक के नाम से प्रकाशित हुआ। अध्यक्ष कांग्रेस होने के नाते आपके पास मैंने उसकी एक प्रति भेजी थी। उसमें बड़े फार्मों के स्थान पर छोटी–छोटी फार्म इकाइयों की वकालत की थी जो सेवा सहकारिता से जुड़े हों। वही हमारी परिस्थितियों के अनुकूल और लाभकारी होंगे। यह ठीक है कि कृष्योत्तर विकास हमारे जीवन स्तर को ऊंचा बनाने के लिए आवश्यक हैं लेकिन जीवन स्तर को ऊंचा करना तब तक सम्भव नहीं हो पायेगा जब तक कृष्योत्तर विकासों के साथ–साथ, अगर उससे पहले नहीं, कृषि का भी सम्यक् विकास हो। इस ध्येय की पूर्ति के लिए उद्योगों में भी, चंद अपवादों को छोड़कर, घरेलू और कुटीर उद्योगों को प्राथमिकता देनी होगी। अगर जनसंख्या की वृद्धि नहीं रोकी गयी तो आर्थिक विकास के यह सभी प्रयत्न असफल हो जायेंगे। साथ ही देश की तब तक कोई उन्नति संभव नहीं जब तक हमारे सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण में गांधीवादी सिद्धान्तों और प्रक्रिया को नहीं अपनाया जाता। भारतीय क्रान्ति दल के चुनाव घोषणा पत्र में इन सबको सन्निहित किया गया है।

मुझे इस बात से उत्साहवर्धक संतोष मिला है कि हमारे बहुत कार्यक्रमों और विचारों को दूसरे राजनैतिक दलों और नेताओं ने अपने लिए स्वीकार किया है। यहां यह उल्लेख भी असंगत नहीं होगा कि मैंने सन् १९४७ से

ही लगातार कांग्रेसी नेताओं द्वारा राजनीतिक तथा प्रशासनिक भ्रष्टाचारों पर रोक न लगा पाने पर क्षोभ व्यक्त किया है। मेरे लिखे अनेकानेक नोट और पत्र इसके साक्षी हैं। मेरे प्रयत्नों को किन्तु बहुत कम सफलता मिली। इसीलिए हमारे घोषणापत्र में भ्रष्टाचार के उन्मूलन और स्वच्छ प्रशासन को सर्वोपरि प्राथमिकता दी गयी है।

क्या उपरोक्त से यह प्रकट नहीं होता कि भारतीय क्रान्ति की स्थापना व्यक्तिगत नहीं सैद्धान्तिक कारणों से हुई। मुझे अगर मुख्य मंत्री बनने के लिए ही कांग्रेस छोड़नी थी तब मैं अपने सहयोगियों समेत, बिना कोई खतरा उठाये महीना भर पहले ही कांग्रेस से बाहर चला गया होता।

अगर मेरे कदम सार्वजनिक हित में नहीं उठाये गये होते और अगर भारतीय क्रान्ति दल सिद्धान्तों के बल पर खड़ा नहीं हुआ होता तो साधनों के अभाव में विशेष कर चुनाव में तथा चुनाव के बाद दल बदल कराने में जो अपरिहार्य बन गये हैं तथा सन् १९७० से कांग्रेस जिसे संगठित रूप में करती चली आई है हमारा दल जीवित नहीं रहा होता।

मेरे आचरण का मूल्यांकन जो आप साधारण जनता को प्रस्तुत करना चाहती हैं वह अपूर्ण होगा अगर एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य को ध्यान में न रखा जाय। आपको याद होगा कि आप जनवरी ३, १९६८ को वाराणसी में इंडियन साइन्स कांग्रेस के वार्षिक सम्मेलन की अध्यक्षता करने वाली थीं। संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की स्थानीय शाखा ने जो तब एक शक्तिशाली संगठन था, आपको गिरफ्तारी में लेकर जनता की अदालत के समक्ष मुकदमे की कार्यवाही करने का निश्चय किया। उन्होंने एक सार्वजनिक सभा करके तथा समाचार पत्रों में विज्ञापित करके अपने मन्तव्य की घोषणा की। संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी तब मेरी सरकार में शामिल एक घटक थी जिसके विधान सभा में ४५ सदस्य थे। फिर भी गैर कांग्रेसी सरकार का अध्यक्ष होते हुए भी मैंने आपके उक्त दौरे में व्यक्तिगत दिलचस्पी ली और आपके साथ वाराणसी गया। मेरे हुक्म से श्री राजनारायण एम० पी० तथा दूसरे प्रमुख कार्यकर्ता और एस० एस० पी० के विधायक गिरफ्तार कर लिये गये तथा आपको पण्डाल तक न जाने देने पर आमादा विराट् प्रदर्शनकारी भीड़ को पुलिस ने लाठी चार्ज करके तितर–बितर किया। आपके दल के उत्तर प्रदेश के अध्यक्ष ने, जो वाराणसी के निवासी हैं और आपकी सरकार के अब सदस्य हैं, इतना नैतिक साहस भी नहीं दिखाया कि वे एस० एस० पी० की भर्त्सना प्रेस या सार्वजनिक सभा द्वारा करते।

एस० एस० पी० क्रोध से उबल पड़ी। मुझे अपनी कार्यवाही के नतीजे का शुरू से ही अन्दाजा था। मैंने विधान सभा का सत्र शुरू होने से एक दिन पहले ही १७ फरवरी को अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। मैंने

प्रजातांत्रिक भारत के प्रधान मंत्री की प्रतिष्ठा सुरक्षित रखने के लिए जैसा उचित समझा वैसा किया।

कांग्रेस से मैंने इसलिए त्यागपत्र दिया कि आपने सही काम न किया न ही कराया, मुख्यमंत्री पद से मैंने इसलिए इस्तीफा दिया कि मैंने सही और उचित कार्य किया।

अगर मुख्यमंत्री पद को मैंने इतना ऊंचा समझा होता कि उसके लिए मैंने जिस कांग्रेस की छाया में काम किया उसे छोड़ दिया तो मैंने वह खतरा नहीं मोल लिया होता जिसे मैंने उठाया। मैं इसके विपरीत, येन केन प्रकारेण उससे चिपका रहता। मैंने दो बार पहले अगस्त १९६७ और दिसम्बर १९६७ में भी त्यागपत्र देने को स्वीकार नहीं किया होता जब कि मुझे लगा था कि मेरे सहयोगियों ने सार्वजनिक हित के विरुद्ध काम किया। जो उच्च राजनैतिक पद को सेवा का माध्यम नहीं बल्कि स्वयं में लक्ष्य मानते हैं तथा उसे सभी सिद्धान्तों से ऊपर रखते हैं उनके आचरण निस्संदेह भिन्न प्रकार के होते हैं।

सारांश यह है कि उन दो पैराज का जिन पर मैंने उपर्युक्त टिप्पणी की है प्रेस में व्यापक प्रचार हुआ है। वह उसी प्रकार का चरित्र हनन है जैसा श्री अशोक मेहता को सम्बोधित अपने पत्र दिनांक २३ दिसम्बर में आपने किया है। सच्चाई से अन– जान लोग बिलकुल गलत धारणाओं को पाल बैठते हैं। लेकिन मुझे मालूम है कि मेरे लिए कोई तरीका सुलभ नहीं क्योंकि प्रेस आपके वक्तव्य के प्रतिरोध में कुछ भी छापना नहीं चाहेगा। मैंने आपको केवल रिकार्ड दुरुस्त रखने के लिए लिखा है।

शुभ कामनाओं सहित,
आपका,
चरण सिंह

श्रीमती इंदिरा गांधी,
प्रधान मंत्री,
भारत सरकार,
नई दिल्ली।

लोकदल की राष्ट्रीय परिषद् में चौधरी चरण सिंह का अध्यक्षीय भाषण

१९८४

प्रिय साथियो

हमारी राष्ट्रीय परिषद् (नेशनल काउन्सिल) का अधिवेशन करीब साढ़े तीन साल के बाद हो रहा है। हमें इसका खेद है कि कम से कम हर साल हम इसकी बैठक नहीं बुला सके। इसमें आप सम्मानित प्रतिनिधियों का व्यक्तिगत रूप से उतना नुकसान नहीं हुआ है जितना कि आपके राजनैतिक दल का हुआ है। यह कोई रस्मी बात नहीं कि आप जो कई तरह के अभाव तथा कठिन परिस्थितियों में काम करने वाले हैं उनसे विचार–विनियम करके ही संस्था प्राणवान एवं सजग रह सकती है।

हम जिन कारणों–वश अपने कर्तव्य पालन में असमर्थ रहे हैं उनको आप अच्छी तरह जानते ही नहीं, उन्हें आपने भी हमारे साथ–साथ भुगता है। इसकी कहानी पुरानी हो गई, उसे दुहराने की कोई जरूरत नहीं है।

आपको याद है कि जब पिछली बार हम इकट्ठे हुए थे तो पृष्ठभूमि (बैक–ग्राउण्ड) उससे पहले हुए १९८० के आम चुनावों की थी। आज हम उस समय मिल रहे हैं जब कि आगामी संसदीय चुनावों की आहट सुनायी देने लगी है। कुछ लोगों का अनुमान है कि ये चुनाव २–३ महीने के बाद ही अगले मई–जून में होंगे परन्तु अधिकतर लोग यह समझते हैं कि निर्धारित समय पर यानी १९८५ की जनवरी के पहले पखवाड़े में ही होंगे। चाहे जो भी हो, दोनों अनुमानों में फर्क केवल ६–७ महीने का है और हमें यह मान कर काम करना है कि चुनाव अब दरवाजे पर दस्तक दे रहें हैं और हमें उनकी आगवानी के लिए अभी से बिलकुल तैयार रहना है। इस अधिवेशन की सबसे बड़ी भूमिका यही होगी कि हमारे साथी यहां से इस उत्साह एवं संकल्प को लेकर जायें जिससे हमारी संस्था लोगों की आशाओं के अनुरूप चुनावों में अपना कर्तव्य निभा सके। यह हमारी ही धारणा नहीं बल्कि अन्य लोगों की भी है कि हमारा जनाधार काफी सबल एवं व्यापक है। हमें जहां इस बात पर स्वाभाविक गर्व है वहीं हमें इसका भी कम अफसोस नहीं है कि हमारा संगठन कई जगहों में जैसा

मजबूत तथा जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप होना चाहिए, वैसा नहीं है। निस्संदेह अगर ठोस परिणाम प्राप्त करने में हम असफल रहे हैं तो उसका कारण ज्यादातर हमारी संगठनात्मक कमजोरियां ही रही हैं, न कि जनता का कोई दोष। इसलिए हमें इस अधिवेशन में अपने विधान में कुछ बुनियादी तथा दूरगामी संशोधन के बारे में भी विचार करना पड़ेगा जिससे संस्था का आकार – प्रकार बदले और हमारे सदस्य नाममात्र के सदस्य न रह कर ठोस व क्रियाशील कार्यकर्त्ता के रूप में नजर आयें। इस बीच मेम्बरसाजी (सदस्यता अभियान) में शिथिलता के पीछे सदस्यता के आधार के सम्बन्ध में हमारा असमंजस रहा है। यह मामला दरअसल इतना पेचीदा है कि कई पहलुओं से बहुत गहराई में जा कर हमें इस पर निर्णय लेने पड़ेंगे। इसलिए इस पर विचार करने के बाद आप संभवतः यह चाहेंगे कि इस मामले को एक कमेटी के सुपुर्द किया जाय जो इस पर एक महीने में अपनी सिफारिशें पेश करे।

पिछली बैठक पर चुनाव में विपरीत परिणाम की कुछ काली छाया थी, जो अनिवार्य थी, किन्तु इस बैठक का वातावरण कुछ दूसरा है। हम यह तो नहीं कह सकते कि १९७७ की हवा बहने लगी है और वैसा ही क्रान्तिकारी परिवर्तन अवश्यम्भावी है। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि संभावनायें उससे किसी प्रकार कम नहीं बल्कि अधिक हैं। और अगर उनके विकसित होने में कभी–कभी संदेह होता है तो केवल इसलिए कि विरोध पक्ष का दृष्टिकोण अभी तक १९७७ की तरह नहीं बन पाया है और इसलिए वह पूर्व की भांति संगठित नहीं हो पाया है। एक प्रकार से देखा जाय तो शासक दल के प्रति जनता में असंतोष तथा आक्रोश १९७७ के मुकाबले में अधिक ही नहीं, ज्यादा व्यापक भी है। १९७७ की चुनावी क्रान्ति तो बहुत कुछ विंध्याचल से हिमालय तक ही सीमित रह गई थी। इस बार इसके देशव्यापी होने के बहुत प्रबल आधार हैं। हाल में आन्ध्र प्रदेश एवं कर्नाटक के चुनाव और उनसे पूर्व हरियाणा एवं हिमाचल प्रदेश के चुनावों में इसका पूर्वाभास हमारे सामने आ चुका था। अभी हाल में हुए उप–चुनावों के परिणाम भी इस प्रवृत्ति के पोषक के रूप में सामने आए हैं और जहां उन्होंने सत्तारूढ़ दल के मनोबल को नीचा किया है वहीं पर्याप्त सफलता नहीं मिलने के बावजूद प्रतिपक्ष की आशा–आस्था को कुछ सबल तथा दृढ़ ही किया है।

हम लोगों को इस बात का संतोष है कि लोक दल प्रतिपक्ष की एकता के लिए पूरी तरह समर्पित है और तरह–तरह के लांछन तथा झूठे प्रचारों के बावजूद इस दिशा में हमारे प्रयत्न निरन्तर जारी हैं। इससे भी हमारा उत्साह बढ़ता है कि प्रतिपक्ष में पुराने वैमनस्य बहुत कुछ दूर हुए हैं और

पारस्परिक कटुता बहुत कम हुई है। हम प्रतिपक्ष की एकता के लिए साफ तौर पर कहना चाहते हैं कि हमारा दल अपनी योग्यता– क्षमता से अधिक कोई आशा–आकांक्षा नहीं रखता और यह विश्वास रखता है कि सभी सहयोगी दल इसी तरह अपनी आकांक्षाओं को सीमित रखेंगे और एकता तथा सहयोग का आधार पैदा करेंगे। लोकदल की यह निश्चित राय है कि सभी लोकतांत्रिक (गैर–कम्युनिस्ट) दलों के विलय से ही वह एका पैदा होगा जो आज की ऐतिहासिक मांग है। जनता भी यही चाहती है और उस दिन की प्रतीक्षा में आंखें बिछाये बैठी है कि जब हम एक होकर सत्तारूढ़ दल का मुकाबला करेंगे।

लोक दल ने अगर राष्ट्रीय लोकतांत्रिक मोर्चे के ढांचे को स्वीकार किया है तो केवल इसीलिए कि विलय के उसके सारे प्रयत्न विफल रहे और निराशापूर्ण गतिरोध की स्थिति में कोई उम्मीद की सूरत पैदा करनी थी। यह एक प्रकार से दूसरे दर्जे का सर्वोत्तम मार्ग था और इसकी संभावनाएं भी कम नहीं। लोकतांत्रिक मोर्चे के दोनों दलों ने जिस सहयोग, सौहार्द्र तथा विश्वास की भावना से अभी तक काम किया है उससे यह आशा बंधती है कि वह अंततोगत्वा एक मजबूत शक्ति के रूप में उभरेगा। किन्तु साथ–साथ हम यह भी महसूस करते हैं कि जितना हमने अभी तक किया है वह आवश्यक तो था परन्तु पर्याप्त नहीं है।

हम इस मंच से बता देना चाहते हैं कि हमारा इस दिशा में सर्वाधिक प्रयत्न रहा है और आगे भी रहेगा। जब हमारे विरोधी हमारे खिलाफ प्रचार करते हैं तो उसी से साफ झलकता है कि वे अपनी स्वार्थ–सिद्धि के लिए ऐसा करते हैं।

आज हमें इन आरोपों–प्रत्यारोपों से ऊपर उठना होगा। हमारा एक ही लक्ष्य होना चाहिए कि हम देश और लोकतंत्र को कैसे बचायें। अब पानी नाव के किनारे तक पहुंच गया है। व्यवस्था (सिस्टम) दम तोड़ने पर है। चन्द श्रीमन्त लोग समझ रहे हैं कि व्यवस्था ठीक चल रही है क्योंकि आज जिस बेशर्मी से वह व्यवस्था उनके लिए काम कर रही है वैसा कभी नहीं हुआ था। लेकिन अगर हालात बिगड़ते गये तो वे कहां फेंक दिए जाएंगे इसका उन्हें अभी तक एहसास नहीं हुआ है। बाढ़ का पानी जोरों से आ रहा है, उनका छोटा टापू कैसे बचा रहेगा यह वह नहीं समझ रहे हैं। हम उनके बारे में यही कह सकते हैं "खुदा हाफिज"।

जैसी देश की हालत आज है वैसी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से आज तक कभी नहीं हुई थी। लगता है कि इतिहास के पन्ने दिनों की स्थिति आज समाज व शासन में हो रहा है, देश की एकता खतरे में है, देश हम जाति–पांति में और अधिक फंसते जा रहे हैं, रही है, कहीं खालिस्तान

की आवाज उठ रही है, सीमाएं बदली जा रही हैं जैसे कि केरल में, कहीं पाकिस्तानी नारे लग रहें हैं, कहीं पाकिस्तानी नागरिक को जुर्म में सजा दी जाये तो हिन्दुस्तानी नागरिक हिन्दुस्तान में विरोध स्वरूप "बन्द" का आयोजन कर रहे हैं, कहीं धर्म के नाम पर संगठित होकर एक तरफ वोट करने का आह्वान हो रहा है और इस तरह धर्म के नाम पर समाज को विभाजित किया जा रहा है, कहीं धर्म–स्थानों में असामाजिक तत्वों को प्रश्रय देकर प्रशिक्षित तथा संगठित किया जा रहा है और धर्म–स्थानों से गोलियां चलायी जा रही हैं, और धर्म स्थानों में पूजा करके लौटने वाले की भी धर्म–स्थान के द्वार पर ही हत्या की जा रही है। विदेशी भाषा को अपने पुरखों की भाषा पर तरजीह ही नहीं दी जा रही है बल्कि विदेशी भाषा बोलने वाला अधिक सभ्य व विद्वान समझा जाता है। ऐसा लगता है कि न तो कोई राष्ट्रीय दृष्टिकोण रह गया है और न कोई राष्ट्रीय उद्देश्य ही रह गये हैं। सभी मसले जाति, धर्म, भाषा या क्षेत्र से ही सम्बन्ध रखते हैं। हम या तो जातिवादी हैं या सम्प्रदायवादी, भाषावादी या क्षेत्रवादी, परिवारवादी या व्यक्तिवादी –राष्ट्रवादी कभी नहीं। क्या सपना था हमारा स्वतंत्रता– संग्राम के दिनों में और क्या बना दिया हमने अपने भारतवर्ष को?

दूर क्यों जाइये, राजधानी दिल्ली को ही देखिये। प्रत्येक ३६ घंटे में डकैती हो रही है। एक बार दो दिनों में छः डकैतियां हुईं यानी प्रत्येक आठ घंटे में एक। कोई महिला मामूली गहने के साथ सड़क पर नहीं निकल सकती। न तो लोग घर में सुरक्षित हैं और न बस तथा रेल में। पुलिस कहीं तो निर्दोष लोगों का 'एनकाउण्टर' कर रही है और कहीं खुद हलाक हो रही है। देश की राजधानी में ५००० रु० की रिश्वत दिये बिना कोई कान्सटेबिल नहीं बन सकता। और देश की सेना में कोई जवान नहीं लिया जा सकता जब तक कि वह एक बड़ी रकम अफसरों को भेंट में न दे दे। फिर भी कहते हैं कि सरकार है, प्रशासन है, प्रधान मंत्री है, व्यवस्था है, संसद है, विधान सभायें हैं, वगैरह–वगैरह।

जिस किसी क्षेत्र को देखें, ह्रास, पतन तथा अवनति का आलम है। और सबकी जड़ में हमारा चारित्रिक पतन है। भोग की राजनीति ने समाज के नैतिक पर्यावरण को दूषित कर दिया है और राजनीति जब डूबती है तो अपने साथ बहुत सारी चीजों को डूबो लेती है। आज की गिरावट गिरी हुई राजनीति और गिरे हुए राजनीतिज्ञों का कारनामा है। हम जब तक राजनीति को नहीं उठाते तब तक कहीं कोई सुधार नहीं होने वाला है। हम हाय–हाय करते रहेंगे और हालत बिगड़ती जायेगी। भ्रष्टाचार के नाम पर लोग मर्सिया गाते रहें, इससे क्या होता है? भ्रष्टाचार

बढ़ता ही जायेगा, न रुकेगा, न खत्म होगा। भ्रष्टाचार ऊपर से चलता है और नीचे फैलता जाता है। जब तक हम शिखर पर भ्रष्ट व्यक्तियों को बैठाते रहेंगे तब तक भ्रष्टाचार की बाढ़ से बच नहीं सकते। जब ऊंची जगहों पर रहने वाले असत्य बोलेंगे तो कदाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार से रक्षा कैसे होगी? अन्तुले कांड है, स्वराज पाल कांड हैं, "कूओ" डील है दृ ये क्या बताते हैं? यही तो कि भ्रष्टाचार तथा असत्य से अछूते प्रधान मंत्री तथा मुख्य मंत्री भी नहीं रहे। एक जमाना था जब दीप लेकर ढूंढने से प्रशासन में कभी–कभार कोई चोर – बेईमान मिलता था और आज यह हालत है कि दीप लेकर ढूंढने से भी शायद ही कोई ईमानदार या निष्कलंक मिले। बात यहां तक बढ़ गई है कि हमारी प्रधान मंत्री सिर्फ अपने को तथा अपने बेटे को देख रही हैं, करोड़ों–करोड़ भूखे, नंगों के बेटे–बेटियों को नहीं – जो बेकार होकर, बेघरबार रहकर आजाद हिन्दुस्तान की वेदी पर शहीद हो रहे हैं। कुनबापरस्ती और जनतापरस्ती दोनों एक साथ नहीं चल सकती। जो व्यक्ति केवल अपने बेटे को देखेगा, वह देश के असंख्य वेटे–बेटियों को नहीं देख सकता। यह इतना बड़ा असत्य है जो किसी की आंखों से ओझल नहीं हो सकता। लेकिन लगता है कि हमने अपने लोकतांत्रिक देश की दृष्टि में कोई मोतियाबिन्द पैदा कर दिया है, या मान लिया है कि मोतियाबिन्द हो गया है, प्रधान मंत्री अपने उत्तराधिकारी राजकुमार को राज्य के तंत्र एवं साधनों के सहारे। पर्दे पर बखूबी खड़ा कर रही हैं और लोग उसका विरोध नहीं कर रहे हैं। अभी हाल ही में दिल्ली में उसके हाथों ५०,००० लोगों को १४–१५ करोड़ राशि का कर्ज देना किस बात का द्योतक है? उस अवसर पर रामलीला मैदान जिस प्रकार राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सजाया गया था उस प्रकार शायद ही कभी सजाया गया हो, और इन बैंकों के कर्मचारियों ने जिस प्रकार राजकुमार के स्वागत में व्यवहार किया वैसा प्रधान मंत्री निवास के घरेलू नौकर भी नहीं कर सकते। समाचार–पत्रों के विवरणों से मालूम हुआ कि यह आयोजन कोई सरकारी आयोजन जैसा नहीं, बल्कि कांग्रेस (इ) के आयोजन जैसा ही दीख रहा था और जो मन्त्रिगण, अर्थ मंत्री वगैरह थे, घरेलू नौकर से भी बदतर'दीख रहे थे। अब आप बताइये, यह सब क्या हो रहा है? क्या राष्ट्रीय कृत बैंक के पैसे श्रीमती गांधी के परिवार के पैसे हैं? क्या इस सरकारी अवसर का उपयोग किसी दल के फायदे के लिए होना चाहिए? क्या गरीबों के पैसे का दुरुपयोग इस तरह साज–सज्जा में होना चाहिए और क्या इस तरह का वृहद आयोजन गरीबों की गरीबी का क्रूर उपहास नहीं था? और सबसे विचारणीय बात यह है कि क्या इतनी शान–शौकत से गरीबों को नहीं बताया जा रहा था

कि उन पर प्रधान मंत्री का बेटा बड़ी कृपा कर रहा है? पैसे गरीबों के और उन पर कृपा उन्हीं के पैसे द्वारा – वाह री! स्वतंत्रता और जनतंत्र।

प्रधानमन्त्री जी शायद समझ रही हैं कि उनका बेटा अब चल गया, लोगों ने उसे स्वीकार कर लिया और उनके वंश का राज्य देश ने सहर्ष मान लिया। इसीलिए तो उन्होंने हाल ही में बड़े गर्व के साथ घोषणा की कि उनका परिवार कोई राज–परिवार तो नहीं लेकिन लोग उसे राज–परिवार जैसा ही सम्मान–सत्कार देते हैं। सम्भवतः प्रधान मन्त्री जी को अपनी चतुरता और कार्य – शैली पर कुछ नाज भी होता हो कि उन्होंने अपने परिपक्व, अनुभवहीन, त्याग तपस्या से अछूते, कल के सरकारी सेवक और आज के सांसद बेटे को अपनी संस्था में या गैर–रस्मी तौर पर सरकारी मामलों में भी अपने बाद सबसे महत्त्वपूर्ण बना दिया है, और यह उनका रौब है कि राज्यपाल तथा केन्द्रीय मन्त्री, मुख्यमन्त्री और महत्त्वपूर्ण स्थानों पर रहे ७०–८० साल के बुड्ढे भी उसका तलवा सहला रहे हैं। लेकिन इससे लोकतांत्रिक व्यवस्था को कितना आघात पहुंचा है इसे आम जनता को नहीं भुलना चाहिए, हम लोगों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजा–महाराजाओं के निजाम को खत्म करके जो संसदीय लोकतन्त्र की स्थापना की थी, उसकी परिणति क्या इसी पारिवारिक राज में होनी थी? सरदार पटेल ने सैकड़ों आनुवंशिक राज्यों को समाप्त करके देश को एकता के सूत्र में बांधा था और उन्हें लोकतन्त्र के सांचे में ढाला था। आज एक वंश का राज देश के लोकतन्त्र को बरबाद करने पर तुला हुआ है, और यह वह चुनौती है जिसको विशेष– कर यहां के नौजवानों को स्वीकार करना है।

हमारा दल गरीबों का दल है, चाहे वे गरीब गांव के हों या शहर के, चाहे वे उच्च जाति के हों या पिछड़ी जाति के या अनुसूचित जाति के। हमारा दल किसानों और दस्तकारों का दल है, चाहे वे किसी धर्म या सम्प्रदाय के हों, चाहे वे खेत रखने वाले स्वामी हों या खेत जोतने वाले मजदूर हों। किन्तु चूंकि गरीबों में सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से ज्यादा संख्या पददलित एवं पिछड़ों की है इसलिए हमारे दल को लोग पिछड़ों का दल कहकर अन्य समुदायों या वर्गों को हमसे अलग करना चाहते हैं। कुछ हद तक पिछले दिनों वे इस प्रयासों में सफल भी रहे हैं। गलत ढंग से हमारी नीतियों को रखना ही प्रमुख रूप से इसका कारण रहा है। हमें संतोष है कि इस सम्बन्ध में बहुत कुछ भ्रम दूर हुआ है और दूसरे वर्ग के लोग भी हमारी तरफ आकृष्ट होने लगे हैं। इस प्रक्रिया को हमें बढ़ाना है और शोषक तथा उत्पीड़क को छोड़कर सभी वर्गों, जातियों, धर्मों के लोगों को लोकदल में लाना है और लोकदल की छवि

को संकीर्णता के आरोप से बचाना है जिसे दूसरे विरोधी पानी पी–पीकर लगा रहे हैं।

हम जाति व्यवस्था के खिलाफ हैं और जातियता को समाज का, देश का, लोकतन्त्र का सबसे बड़ा दुश्मन मानते हैं। जातीयता का अर्थ है सर्वनाश – अर्थात चरित्र, योग्यता, क्षमता कोई मायने नहीं रखती। अपनी जाति का जो भी है, जैसा भी है, वह सर्वोत्तम है। जन्मगत जाति–पांति ने हिन्दू धर्म का सत्यानाश किया और आज वह लोकतन्त्र के लिए सबसे बड़ा खतरा बन रही है। हमारे मुसलमान भाइयों में भी शिया–सुन्नी के झगड़े, जो मजहबी क्षेत्र तक ही सीमित थे आज श्रीमती गांधी तथा उनके दल द्वारा राजनीति में लाये जा रहे हैं, जिसका नग्न नृत्य हाल के काश्मीर के चुनाव में देखने को मिला।

हमारे दल पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि हम शहर वालों के शत्रु हैं, खेती के हक में तो हैं लेकिन उद्योग के खिलाफ हैं और अगर उद्योग के हक में हैं भी तो कुटीर उद्योग या छोटे उद्योग के हक में हैं, लेकिन बड़े उद्योगों के विरोधी हैं।

ये सभी प्रचार या तो अज्ञानता में ईमानदारी से किये जाते हैं या क्षुद्र राजनीति से प्रेरित मनोयोगपूर्वक बेईमानी से।

हमने बार–बार कहा है कि हम मूक गरीबों की वाणी बनना चाहते हैं, चाहे वे गांव की झोंपड़ी के गरीब हों या शहरों में झोंपड़पट्टी के या बड़े–बड़े महलों के साये में खुले आसमान के नीचे रात–दिन जाड़ा–गर्मी – बरसात गुजारने वाले हों।

जैसे–जैसे यह वाणी लोकदल द्वारा प्रखर एवं मुखर हो रही थी हमारे विरोधियों ने आतंक में विभाजन की नीति से दुष्प्रचार करना शुरू किया। इसी में शहरों को हमारे कार्यक्षेत्र के दायरे से बाहर बताया जाता है। परन्तु एक अर्थ में गांव एवं शहर के गरीबों का परिवार एक है। गांव के गरीब ही रोजी–रोटी की तलाश में शहर जाते हैं। इसलिए लोक दल उनको दो श्रेणियों या जातियों में विभक्त नहीं करता है। हमारे लिए गरीबी का एक रूप मूलतः एक है– बेकारी तथा कम मजदूरी वाला काम, घोर असमानता जो शोषण के आधार पर बढ़ती है, और कायम है। दरअसल गांव की समस्या का सैलाब शहरों की ओर बढ़ रहा है और वर्तमान नीतियां ही चलती रहीं तो देश को डूबो कर रहेगा।

हमें आश्चर्य होता है कि कोई प्रधान मन्त्री बढ़ती बेकारी के आंकड़ों को नजरअंदाज कर सुख की नींद कैसे सो सकता है या सो सकती है, जहां हमारे बच्चे कुत्तों के मुंह से रोटी छीनकर जिन्दा रहते हों, या रोटी मांगते हुए अपनी मां से तमाचे पाते हों, एशियाड, नेम, चोगम जैसे

आयोजनों में अरबों रुपये लगाकर अपनी छवि का मेकअप किया जाये– क्या वहां की प्रधान मन्त्री व उसके सहयोगी और ऐसे शासन को बर्दाश्त करने वाली कौम मनुष्य और राष्ट्र कहलाने लायक हैं?

हम खेलों के खिलाफ नहीं, खेल के मैदान में ही तो अधिकतर बच्चों के शरीर तथा चरित्र का निर्माण होता है, लेकिन हम खेलों के आयोजनों में साधन के इस प्रकार दुरुपयोग के खिलाफ हैं, जिसको दिल्ली ने आज से डेढ़ साल पहले देखा था। एशियाड पर १५००–२००० करोड़ रूपये का खर्च इस गरीब देश में किया जाए जहां ६६ प्रतिशत जनता गरीबी की रेखा के नीचे रहकर अपना जीवन–यापन करती है, कल्पना के बाहर है। इस राशि से हजारों सिंचाई के नलकूप लग सकते थे, अनेक नहरें बन सकती थीं, हजारों स्कूल और अस्पताल खुल सकते थे लेकिन हमारे दल ने जब सबसे पहले इसके बारे में आवाज उठाई तो कई लोग इसे हमारा पिछड़ापन बताकर आलोचना करने लगे। परन्तु हमको संतोष है कि हमारा समर्थन बाद में दूसरे दलों तथा महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों ने भी किया।

इसी तरह हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के आयोजनों के खिलाफ नहीं लेकिन उन पर फिजूलखर्ची के खिलाफ अवश्य हैं।

निस्संदेह भारत को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है, लेकिन गरिमा या महत्त्व तो शान–शौकत में नहीं, सादगी में है। महात्मा गांधी तो राउण्ड टेबिल कान्फ्रेन्स में एक गरीब के लिबास में गये थे और वायसराय के भवन में खाने के लिए उस बर्तन को ले गये थे जिसमें उनको जेल में खाना दिया जाता था, और वही सादगी और उसके मूल्य हैं जो हमारे मुल्क को वह चरित्र दे सकें जिससे हम स्वतन्त्रता प्राप्त करने में समर्थ हुए। मगर निर्गुट सम्मेलन तथा राष्ट्रमण्डलीय सम्मेलन पर जो दिल्ली विज्ञान भवन की साज–सज्जा हुई या गोआ के प्रवास में जो रुपये खर्च हुए उन पर लोग गहराई में जाकर विचार नहीं करते। एशियाड में कुछ ही महीने पहले तो दिल्ली या विज्ञान भवन पर इतना सारा खर्च हो चुका था, फिर निर्गुट या राष्ट्रमण्डलीय सम्मेलनों पर इतनी राशि खर्चने की क्या जरूरत पड़ी? और गोआ में एक दिन के अवकाश – प्रवास के लिए जो ४५ करोड़ रुपया खर्च किया गया क्या उससे कम मेहमानों को पसन्द नहीं आता? और फिर आज जो देश के ऐश्वर्यवान लोग उन साधनों का उपयोग करके अपनी वासना तृप्ति कर रहे हैं, उससे क्या सांस्कृतिक पर्यावरण दूषित नहीं हो रहा है? और क्या गरीब ऐसे साधनों का उपयोग कर पायेंगे? हम गोआ का भी विकास चाहते हैं, जो हमारे पिछड़े इलाकों से कहीं आगे है। लेकिन यह रास्ता गोआ के स्वस्थ विकास का नहीं है। यही राशि अगर दूसरे प्रकार से लगती तो

गोआ वाले ज्यादा सुखी–सम्पन्न होते। क्या हमारी प्रधानमन्त्री व उनके सहयोगियों का ध्यान कभी हमारी जनता की अवर्णनीय गरीबी की ओर जाता है और इस कारण उनकी नींद हराम होती है?

लेकिन विधि का विडम्बना देखिये कि हमारे ये विचार तथा सिद्धान्त जो प्रशंसा के विषय बनने चाहिए थे, हमारी तीव्र आलोचना के लक्ष्य बन गये हैं। चाहे जो हो, हम अपने इन विचारों को कुछ सुविधा भोगी तत्त्वों के दबाव में आ कर बदल नहीं सकते और न उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार का समझौता ही कर सकते हैं। यह असह्य गरीबी राष्ट्रीय सादगी से जायेगी, शान–शौकत या विलासिता से नहीं, कठोर नियोजन तथा कार्यक्रम से ही जायेगी, चिकनी–चुपड़ी बातों से नहीं, इसलिए हमें अपने विचारों पर कायम रहना है।

अब मैं आता हूं उस आरोप पर कि हम उद्योगों, खास तौर से बड़े उद्योगों के खिलाफ हैं और खेती के पीछे दीवाने हो रहे हैं। मुझे दया आती है उन लोगों पर जो खेती और उद्योग को अलग–अलग दो श्रेणियों में रखते हैं और दोनों के अविच्छिन्न सम्बन्ध को नहीं देखते। हमारे देश में अच्छी खेती के अभाव में किसी प्रकार के भी उद्योग नहीं हो सकते, अपेक्षित औद्योगिक विकास नहीं हो सकता, न तो उद्योगों को कच्चा माल मिल सकता है और न उद्योगों के माल की खरीद ही हो सकती हमारे विगत अनुभव बताते हैं कि जब भी हमारी खेती मारी गई है हमारे उद्योग भी मृतप्राय हो गये हैं। इसलिए खेती पर बल देना विस्तृत औद्योगीकरण के लिए सबल आधार निर्माण करना है जिससे खेती में लगे लोगों की अधिकांश तादाद उद्योगों में लग जाये। बार–बार दोहराने पर भी हमारे आलोचक इसको नजरअंदाज करते हैं कि हम खेती पर जनसंख्या के बोझ को बहुत कम करना चाहते हैं और खेती में लगे लोगों को ज्यादा से ज्यादा संख्या में उद्योग में लगाना चाहते हैं। लेकिन यह तभी सम्भव होगा जब औद्योगीकरण की प्रक्रिया तेज होगी और यह प्रक्रिया तभी तेज होगी जब फी बीघे खेती की पैदावार बढ़ेगी, जिससे उद्योगों के लिए कच्चा माल मिलेगा, उद्योगों में काम करने वालों को भोजन प्राप्त होगा और खेती करने वाले लोगों की जेबों में क्रय–शक्ति अथवा रुपया आयेगा जिससे वह उद्योगों द्वारा पैदा की वस्तुओं और अन्य सेवाओं की खरीद और उपयोग कर सकेंगे।

अगर कुछ गिने–चुने पूंजीपति ही हर प्रकार के उद्योग के वाहक एवं संचालक होंगे तो जन–समुदाय इससे बाहर तथा वंचित रहेगा और गरीबी ज्यादा गहरी, व्यापक और उग्र होती जायेगी। हम औद्योगीकरण की प्रक्रिया को लोकतन्त्रीकरण या विकेन्द्रीकरण करना चाहते हैं ताकि यह

कुछ श्रीमन्त लोगों का दुर्ग बनकर न रह जाये। हम आधुनिकता के दुश्मन नहीं, और न आधुनिकता के किसी की भी अपेक्षा कम हामी हैं। हमारा दावा है कि हमारा दल ही, विचार ही समाज का आधुनिकीकरण कर पायेगा। आज जो आधुनिकीकरण का सिलसिला चल रहा है वह "एलिट" (Elite) अर्थात् समाज के कुछ गिने–चुने लोगों के लिए है जिनके पास राजनीतिक सत्व है, वह इस गरीब देश के जन–समुदाय के लिए नहीं। वही औद्योगीकरण समाज के आधुनिकीकरण का माध्यम बन सकेगा जो जन–समुदाय अथवा व्यक्ति या कारीगर की स्वतन्त्रता पर आधारित हो।

इस सम्बन्ध में हमारे सुनियोजित विचार एवं कार्यक्रम हैं लेकिन उन्हें देखता कौन है, हमारे आलोचकों को तो अपने पूर्वाग्रह पर हमें गालियां देने से मतलब है। हमने साफ तौर पर कहा है कि औद्योगीकरण का स्वरूप ऐसा हो कि जो कार्य कुटीर उद्योग अथवा छोटी मशीन कर सकें उसको बड़े उद्योग न करें। इसमें कहां बड़े उद्योगों के बहिष्कार की बात आती है? इसमें सभी प्रकार के उद्योगों का यथोचित स्थान है, सबों में एक शृंखला तथा सम्बन्ध है, एक–दूसरे के पूरक एवं पोषक हैं, भक्षक नहीं। फिर भी तरह–तरह के कपोल कल्पित अभियोग हम पर लगाए जाते हैं।

हम इसी अधिवेशन में अपने आर्थिक दर्शन की रूपरेखा पर विस्तृत विचार करेंगे, यही हमारा मुख्य विषय होगा। मसविदा जरा बड़ा दिखायी पड़ेगा लेकिन उससे हिचकने की जरूरत नहीं। हमें अपने दिमाग में अपने आर्थिक विचारों के बारे में साफ और दृढ़ होना है इसलिए विवरणों में जाने की जरूरत है। लेकिन चाहे हम जितना भी सिर मारें और अपने विचारों को चाहे जितना भी वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण ढंग से रखें, कुछ लोग हमें गालियां देते ही रहेंगे। किन्तु इसकी चिन्ता हमें नहीं करनी है।

यह एक अजीबोगरीब बात है कि प्रतिपक्ष के अधिकांश लोग बिना वैकल्पिक दर्शन एवं विचार के राष्ट्रीय विकल्प बनाने का सपना देख रहे हैं। राष्ट्रीय विकल्प का सही अर्थ है – सत्तारूढ़ दल के दर्शन, विचार, कार्यक्रम एवं कार्यशैली का विकल्प। जब तक यह नहीं निर्मित होता तब तक हम आत्मा के बिना शरीर की कल्पना में लगे हैं। यह कहना शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी कि लोकतांत्रिक दलों में लोक दल ने वैचारिक विकल्प प्रस्तुत करने की दिशा में सर्वाधिक प्रयत्न किया है।

चाहे हमारी अर्थनीति की कुछ लोग समालोचना भले ही करें, वे उसकी अवहेलना नहीं कर सकते। और न उसकी जगह पर दूसरा विकल्प प्रस्तुत कर सकते हैं। पहलवान की मां की तरह दांव बताना एक बात है, किन्तु अखाड़े पर उतरना दूसरी बात है।

हम यह नहीं कहते कि सत्तारूढ़ दल की सभी नीतियों का हमें

विकल्प तैयार करना है। राष्ट्रीय सर्वानुमति के आधार पर जो नीतियां हैं–दुर्भाग्यवश वे अब नगण्य होती जा रही हैं–उनमें हमारा सहयोग रहेगा। सत्तारूढ़ दल दायें हाथ से खाये तो हम जबरन बायें हाथ से खायें, यह हमारी नीति नहीं।

इसीलिए वैदेशिक मामलों में हम उन्हीं बातों का विरोध करते हैं जो राष्ट्र की स्वीकृत नीतियों के विरुद्ध होती हैं।

मिसाल के तौर पर हम गुट निरपेक्ष नीति में दृढ़ आस्था रखते हैं और उसमें किसी तरह के तोड़–मरोड़ के विरोधी हैं, जो उसमें विकृति पैदा करती है। हम दो सुपरपावर (महाशक्तियों) अमेरिका तथा रूस के साथ सम्बन्धों को गुटनिरपेक्षता तथा राष्ट्रीय हितों की कसौटी पर कसते हैं और किसी का पुंछल्ला बनने के विरोधी हैं। सोवियत रूस ने कई महत्त्वपूर्ण मामलों एवं क्षेत्रों में हमारी सहायता की है और हम उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखने के पक्षधर हैं। किन्तु हम अपने देश के आन्तरिक मामलों में उसके हस्तक्षेप के विरोधी हैं जो यदाकदा यहां की राजनीति एवं राजनीतिक दलों पर टिप्पणियों के रूप में सरकारी स्रोतों में प्रदर्शित होता रहता है, और संभवतः अन्य रूप भी धारण करता है। इसीलिए हमने प्रधान मंत्री जी के उस प्रार्थना–पत्र की तीव्र आलोचना की थी जो उन्होंने रूस के अध्यक्ष स्वर्गीय श्री आंद्रोपोव को कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ठ नेता श्री योगेन्द्र शर्मा के द्वारा भेजा था, और जिसके द्वारा वे यहां के राजनीतिक ध्रुवीकरण को रूस की सहायता से प्रभावित कराना चाहती थीं। यह कदम देशहित तथा प्रधानमंत्री के पद की गरिमा के विरुद्ध था और इससे हमारा सिर अन्तर्राष्ट्रीय जगत में नीचा हुआ।

हमारी अन्तर्राष्ट्रीय नीति की गुटनिरपेक्षता इससे भी प्रमाणित होती है कि जहां हमने रूस के अफगानिस्तान में आक्रमण का विरोध सत्ता में रहते हुए किया वहां हमने सत्ता से बाहर रहकर ग्रेनेडा में अमेरिकी आक्रमण का भी उसी प्रकार डटकर विरोध किया। अमेरिका की पाकिस्तान सम्बन्धी नीति के, जिससे पाकिस्तान की सामरिक तैयारियां बढ़कर हमारे लिए खतरा बन गयी हैं। हम प्रबल विरोधी हैं। उसी तरह डिगो गार्सिया में अमेरिकी सैनिक अड्डे के हम विरोधी हैं जिससे हिन्द महासागर के शान्तिक्षेत्र बनने में बाधा हो रही है और भारत के लिए चिन्ता का विषय बन रहा है। लेकिन साथ–साथ हम इससे भी अवगत व चिन्तित हैं कि रूस तथा अन्य बड़ी शक्तियों की गतिविधियां भी हिन्द महासागर में चल रही हैं जो किसी प्रकार वांछनीय नहीं। निस्संदेह दक्षिण एशिया तथा भारत के लिए यह चिन्ता का विषय है कि दोनों महाशक्तियों की खतरनाक उपस्थिति आज उसके बहुत करीब है।

हम अन्य अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर एक अलग प्रस्ताव पर विचार करेंगे, इस लिए हम इस संदर्भ में इस अवसर पर ज्यादा कहना नहीं चाहते।

अन्त में देश की दो बड़ी समस्याओं के बारे में अपनी चिन्ता व्यक्त करना चाहूंगा जिन्हें सत्तारूढ़ दल अपने क्षुद्र स्वार्थों के कारण हल करना नहीं चाहता। पंजाब की समस्या सत्तारूढ़ दल की ही कारस्तानी है। उसने ही १९८० के चुनावों में आदिवासियों एवं असामाजिक तत्त्वों से सहायता ली थी जो आज पंजाब को बर्बरता का क्षेत्र बनाये हुए हैं। अकाली दल वालों ने यह भी आरोप लगाया है कि खालिस्तान की मांग का सूत्रपात कांग्रेस (इ) के स्थानीय दफ्तर से हुआ था लेकिन आज तक इसका अधिकृत रूप से खण्डन नहीं हुआ है। अभी हाल ही में पंजाब समस्या के समाधान के लिए त्रिपक्षीय वार्ता हुई लेकिन उसी दौरान वहां की स्थिति और खराब हो गयी। हिन्दू सुरक्षा समिति के अध्यक्ष श्री पवन कुमार शर्मा को सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया और उनकी रिहाई की ऐसी शर्तें रखी जिन पर आसानी से विश्वास नहीं किया जा सकता। एक शर्त यह कि वह पटियाला सदैव के लिए छोड़ दें, दूसरी यह कि हिन्दू सुरक्षा समिति भंग कर दी जाये, तीसरी यह कि महाशिवरात्रि २९ जनवरी को न मनायी जाये और चौथी यह कि प्रभात फेरी बन्द हो जाये। इसके बाद "बन्द" का आह्वान हुआ और प्रतिरोध के कारण स्थिति गंभीर हुई और वार्ता स्थगित कर देनी पड़ी। बाद में पुलिस तथा स्वर्ण मंदिर के अन्दर रहने वालों के बीच पांच घंटे तक गोलियां चलीं। अब अकालियों ने कहा है कि स्थगित वार्ता जो चार–पाँच दिनों के बाद, फिर शुरू होने वाली थी, वह नहीं होगी। इसलिए राजनीतिक गतिरोध रहेगा और यही हिंसा एवं बर्बरता का दौर जारी रहेगा जैसा कि पानीपत और हरियाणा के कुछ अन्य स्थानों में हुआ है। हमको हरियाणा में जो कुछ हुआ है उसके पीछे भी पंजाब की तरह से सत्तारूढ़ दल का हाथ दिखाई देता है, पंजाब में राष्ट्रपति शासन और हरियाणा में अपनी ही सरकार होते हुए सत्तारूढ़ दल परिस्थिति पर काबू नहीं पा रहा है और जनता त्राहि–त्राहि कर रही है। हमने इसीलिए केन्द्रीय सरकार से कहा है कि वह या तो सख्ती से शासन करे या इस्तीफा दे। आखिर अराजकता का राज पंजाब में कब तक रहेगा और अतिवादी एवं असामाजिक तत्वों की नरसंहार की लीला कब तक चलेगी! लोगों की आम धारणा है कि वहां कि गड़बड़ियों में सत्तारूढ़ दल का निहित स्वार्थ है और वह साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण पर तुली हुई है।

मैंने शुरू से इन प्रवृत्तियों का विरोध किया और बदले में कड़ी धमकियां पायीं। हम गांधीजी की परम्परा में पले हैं और उन्हीं के सिद्धांतों

पर चलने के लिए संकल्पबद्ध हैं। हमारे मतभेद कितने भी गहरे हों, इस अहिंसा तथा शान्ति के मार्ग को नहीं छोड़ सकते। हममें उन धमकियों के कारण कोई दुर्भाव या कटुता नहीं आयी है और हम शान्तिपूर्वक अपनी बातें कहते ही जायेंगे जो हम पंजाब के समाज के लिए तथा देशहित में ठीक समझते हैं।

असम की स्थिति में भी कोई सुधार नहीं हुआ है और चाहे सरकार की तरफ से जो भी प्रयत्न किये जायें वहां की राज्य सरकार को, जो एक खूनी, बबंर, गैर–कानूनी एवं असंवैधानिक चुनाव की औलाद है, लोग वैध तथा कानूनी नहीं मानेंगे। सरकार किस प्रकार संवैधानिक दायित्वों को सम्पादित करने में अक्षम है यह इसी से जाहिर हो जाता है कि वह १९७१ की मतदाता सूची के आधार पर उसके पुनर्निरीक्षण करने में चुनाव आयोग को योगदान देने में असमर्थ है। ऐसी सरकार के कायम रहने का क्या औचित्य है। इस पर संविधान – वेत्ताओं को गंभीरता से विचार करना चाहिए। हम इस पर भी जोर देना चाहते हैं कि जब तक असम के व्यक्तित्व की रक्षा नहीं होगी, जब तक असमियों को विश्वास नहीं होगा कि उनकी भाषा, संस्कृति एवं परम्परा अक्षुण्ण रहेगी तब तक असम की स्थिति विस्फोटक रहेगी। आज की सतही शान्ति से यह नहीं मान लेना चाहिए कि स्थिति काबू में हो गयी है। बल्कि मेरा अनुमान है कि सरकार की क्षुद्र दलीय भावना के कारण पहले की अपेक्षा आज स्थिति ज्यादा संगीन एवं विस्फोटक हो गई है।

देश की यह तस्वीर अत्यन्त दुखद है। लोकदल तथा राष्ट्रीय लोकतांत्रिक मोर्चे को इसको बदलने के लिए दृढ़ संकल्प करना है। हमारा यह अधिवेशन अपने निर्णयों से इस संकल्प को मूर्तरूप देगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

जय हिन्द !

आर्थिक दर्शन –चौधरी चरण सिंह

१९८४ में प्रकाशित यह जीवनी चौधरी चरण सिंह के व्यक्तित्व, आर्थिक और सामाजिक विचार, पारिवारिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, गावों के प्रारम्भिक पाठशाला से आगरा कॉलेज की उच्च शिक्षा, स्वतंत्रता आंदोलन में संघर्षशील भागेदारी और जेल से भारत के प्रधानमंत्री तक के सामाजिक और राजनीतिक जीवन यात्रा और विभिन्न पदों पर रहते हुए जनहित कार्यों के बारे में अवगत कराती है।

यह जीवनी कई अनसुने और अलिखित पहलुओं को शामिल कर हमको विस्तारपूर्वक और प्रमाणीकृत जानकारी प्रदान करती है। यह श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा १९७५ से १९७७ के बीच असंवैधानिक राष्ट्रीय आपातकाल ('भादों की अमावस्या') लगाने के कारणों और उसमें हुए हुए अन्याय और अत्याचार के बारे में भी जानकारी देती है। साथ में यह जीवनी केंद्र में १९७६ में काँग्रेस के विकल्प के रूप में जनता पार्टी और १९७७ में जनता सरकार बनाने में चौधरी चरण सिंह की आधारभूत भूमिका के बारे में तथा जनता पार्टी के टूटने तथा जनता सरकार के गिरने के विभिन्न कारणों से गंभीरता से प्रकाश डालती है।

पुस्तक के विशिष्ट भाग में विभिन्न महत्वपूर्ण मुद्दों पर चौधरी चरण सिंह की गहरी सोच साँझा की गयी है – राष्ट्रीय चरित्र, राजनीतिक भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता, चौधरी साहब के काँग्रेस पार्टी छोड़ने के कारण, उनके सपनों का भारत, केंद्र–राज्य संबंध, पंजाब और असम की समस्या, समाजवाद के प्रश्न और भारत की अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भूमिका। लेखक ने श्री जवाहर लाल नेहरू और श्रीमती इंदिरा गाँधी के साथ चौधरी चरण सिंह के पत्रव्यवहार, १९७७ में गृह मंत्री के रूप में चौधरी चरण सिंह के एक विस्तृत साक्षात्कार, तथा लोकदल के राष्ट्रीय परिषद में चौधरी चरण सिंह का अध्यक्षीय भाषण को भी शामिल किया है।

लेखक के बारे में

अनिरुद्ध पाण्डेय उत्तर प्रदेश प्रांतीय सिविल सेवा में १९५० में चयनित हुए थे और वह १९७० के दशक में पदोन्नति से भारतीय प्रशासनिक सेवा (आईएएस) में पहुँचे। वह प्रांतीय सेवा में अपना कार्य करते चौधरी चरण सिंह के संपर्क में आए और उनके चरित्र और विचारों से प्रभावित हुए। अवकाश के बाद पाण्डेय जी चौधरी चरण सिंह से १९८१ से १९८३ के बीच कई बार मिले और उनके जीवन और विशेषकर बचपन की यादें उतारी। इसी दौरान उन्होंने माताजी गायत्री देवी से कई महत्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी प्राप्त कीं।

चरण सिंह अभिलेखागार
www.charansingh.org

ISBN 978-81-962625-9-4
9 788196 262594
₹799